RNI : UPHIN/2009/30450 ISSN : 2319-2178 (P) ISSN : 2582-6603 (O)

संरक्षक परिषद

श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. गिरीश्वर मिश्र
प्रो. अशोक सिंह
प्रो. हितेंद्र मिश्र
डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय
डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल

संपादक परिषद

डॉ. बृजेंद्र अग्निहोत्री
(संपादक)
डॉ. अजॉय बत्ता
(सह-संपादक)
श्री पंकज पाण्डेय
(उप-संपादक)
श्रीमती शालिनी सिंह
(उप-संपादक)
डॉ. चुकी भूटिया
(उप-संपादक)

परामर्श-विशेषज्ञ परिषद

डॉ. दमयंती सैनी
डॉ. दीपक त्रिपाठी
श्री मनस्वी तिवारी
श्री जयकेश पाण्डेय
श्री महेशचंद्र त्रिपाठी
श्री मृत्यंजय पाण्डेय
श्री जयेन्द्र वर्मा

आवरण : **बंशीलाल परमार**

संपादक
डॉ. बृजेंद्र अग्निहोत्री
सहायक प्रोफेसर (हिंदी)
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, पंजाब

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण का उपक्रम

जनवरी, 2024
वर्ष : 16, अंक : 01, पूर्णांक : 39

पूर्णतः अव्यावसायिक एवं अवैतनिक प्रकाशन

सहयोग

यह प्रति	: 300 रुपये

व्यक्तियों के लिए

वार्षिक	: 500 रुपये
त्रैवार्षिक	: 1500 रुपये
आजीवन	: 5000 रुपये

संस्थाओं के लिए

वार्षिक	: 1000 रुपये
त्रैवार्षिक	: 3000 रुपये
आजीवन	: 10000 रुपये

विदेशों के लिए (हवाई डाक)

एक अंक	: 12 $
वार्षिक	: 48 $
आजीवन	: 1000 $

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में खाता क्रमांक- **10946443013** (IFS Code-SBIN0000076, MICR Code - 212002002) या 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644508** (IFS Code- SBIN0005396, MICR Code- 212002004) में करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी
बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण का उपक्रम

मधुराक्षर

जनवरी, 2024

संपादक
डॉ. बृजेंद्र अग्निहोत्री

कार्यालय
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212 601

E-Mail :
madhurakshar@gmail.com

Visit us :
www.madhurakshar.com
www.madhurakshar.blogspot.com

www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
+91 9918695656

एक नज़र में...

संपादकीय

अपनी बात — **बृजेंद्र अग्निहोत्री** — 05

कलम को नमन

तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम
फणीश्वरनाथ 'रेणु' — 07

उपन्यास — **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** — 158

अँधेरे का दीपक — **हरिवंशराय बच्चन** — 260

कथा–साहित्य

ग्रीनकार्ड — **डॉ. कृष्णा खत्री** — 39

जैसी करनी वैसी भरनी — **डॉ. विकास कुमार** — 46

दूसरी औरत — **महेश शर्मा** — 52

असली आनंद — **रमेश पोखरियाल 'निशंक'** — 64

सुरक्षा — **डॉ. सुनीता जाजोदिया** — 70

तुमने कहा जो था! — **राम नगीना मौर्य** — 77

औलादों वाली माँ — **श्यामल बिहारी महतो** — 86

कोरोना बनाम शादी — **डॉ. रंजना जायसवाल** — 92

सुंदरी — **अनिल कुमार पाण्डेय** — 108

रजनीगंधा मुरझा गए... — **महेश कुमार केशरी** — 128

अभिनय — **राकेश कुमार तगाला** — 135

चिंदी — **रजनी शर्मा** — 141

स्वाभिमानिनी — **जयश्री बिरमी** — 146

कटी पतंग — **सविता शर्मा 'अक्षजा'** — 153

कथेतर गद्य

एक बेहतर दुनिया के लिए
प्रो. गिरीश्वर मिश्र — 163

वैश्विक समाज और सांस्कृतिक परिवर्तन
अल्पना नागर — 168

किन्नर जीवन : दर्द भरी दास्तान पूजा
सचिन धारगलकर — 173

भारत के निर्माण के आलोक में नई शिक्षा नीति
अमित कुमार पाण्डेय — 182

मृत्युदंड	**सलिल सरोज**	187
भारतीयता की पोषक या विनाशक		
	डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता'	191
हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता और न्यू मीडिया		
	डॉ. शैलेश शुक्ला	198
सत्ता के विकासात्मक आईने में मातृसत्ता का रूप		
	डॉ. अंकित अभिषेक	204
हिंदी साहित्य में स्त्री आत्मकथा लेखन		
	डॉ. अहिल्या मिश्रा	210
साक्षात्कार : हंसादीप	**डॉ. दीपक पाण्डेय**	226
सामाजिक सरोकारों का शायर राहत इन्दौरी		
	दीपक रूहानी	251

काव्य सुरसरि

अशोक सिंह	263
रजत सान्याल	265
अनामिका अनु	266
राहुल कुमार बोयल	268
नरेश अग्रवाल	270
राजेश सिंह	271
सूर्य प्रकाश मिश्र	272
रीता मिश्रा तिवारी	273
सारिका शर्मा	274
घनश्याम शर्मा	276
डॉ. जयप्रकाश तिवारी	277
खेमकरण 'सोमन'	279
रोहित प्रसाद पथिक	281
तान्या सिंह	282
स्नेहलता	284
संगीता पाण्डेय	285
सवि शर्मा	287
देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव	288
नीना सिन्हा	290
विज्ञान व्रत	292
केशव शरण	295
नवीन माथुर पंचोली	297

संपादकीय

अपनी बात

घर जलते समय चुप रहना उचित नहीं है। देश की एकता की बात जब कभी याद आती है तब संपूर्ण देश को एक तार में पिरोने की योग्यता रखने वाली हिंदी को पदच्युत करके गुलामी का संकेत अंग्रेजी को स्थान देने वाली बात दिल पर सुई-सी चुभती है। हम हिंदी-भाषियों में अधिकांश जनों की धारणा यही है कि हिंदी यदि अभी तक राष्ट्रभाषा नहीं हो पाई तो इसका मुख्य कारण अहिंदी भाषियों का अंग्रेजी-प्रेम अथवा हिंदी-विरोध है। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर जो लेख निकलते हैं उनसे यह प्रकट नहीं होता कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का सर्वाधिक उत्तरदायित्व हमारा है, और हम अपने इस दायित्व का निर्वाह नहीं कर पा रहे हैं। हमारे देश में एक पूरा वर्ग है, जो राष्ट्रभाषा के पद पर अंग्रेजी को प्रतिष्ठित रखना चाहता है। यह वर्ग किसी प्रदेश/क्षेत्र विशेष से सीमित नहीं है, अपितु सारे देश में फैला हुआ है। अमरबेल की तरह यह विशाल हिंदी-क्षेत्र में भी फैला है। आये दिन अपने प्रदेश के पढ़े-लिखे लोगों के व्यवहार में हम अंग्रेजी का यह महत्व देख सकते हैं। हिंदी-भाषी क्षेत्र में इस वर्ग के लोग उतने मुखर नहीं है, जितने उनके सहयोगी अन्य प्रदेशों में हैं। फिर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सभी प्रदेशों के अंग्रेजी-प्रेमी एक दूसरे की सहायता करते हैं। हमारा मानना है कि संपूर्ण देश में फैले हिंदी-प्रेमी मिथ्या जातीय अहंकार तजकर हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने का दायित्व सहर्ष स्वीकार करें।

किसी भी बोली या भाषा का उद्‌भव अचानक से नहीं हो जाता, इसकी उत्पत्ति और विकास में युगों की विचारधाराएँ सिमटी रहती हैं। बोली या भाषा पहले लोकभाषा का स्थान लेती है, तत्पश्चात धीरे-धीरे साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण करने लगती है। युगों पूर्व हमारे समाज में वैदिक संस्कृत आर्यों की मान्य भाषा थी, जो साहित्यिक भाषा के रूप में ऋग्वेद में सुरक्षित है। इसका दूसरा रूप लोकभाषा के रूप में अर्द्धशिक्षित तथा अशिक्षित समुदाय में व्यवहृत होता

था, जिसका नाम लोक ने संस्कृत रखा। समय के साथ 'वैदिक संस्कृत' का स्थान 'संस्कृत' ने लेना प्रारंभ कर दिया, और धीरे-धीरे 'वैदिक संस्कृत' विलुप्त होती चली गयी। 'संस्कृत' भाषा में जनसमुदाय के लिए अति दुर्बोध शब्दों के प्रयोग के कारण देशज शब्दों का परिपूर्ण कोश लेकर एक नई भाषा ने अस्तित्व ग्रहण किया, जिसे 'प्राकृत भाषा' की संज्ञा मिली। इसी प्राचीन प्राकृत को 'पालि' कहा गया। सम्राट अशोक को इसी पालि-भाषा में, जो पहले जनभाषा थी, अपने उपदेश देने पड़े। पालि-भाषा में जब व्याकरण का समावेश हुआ, वह साहित्यिक भाषा का स्वरूप ग्रहण करने लगी और लोकभाषा के रूप में 'प्राकृत' अपना विस्तार करने लगी। इस समय प्रादेशिकता के अनुसार पैशाची, शौरसेनी, अर्द्धमागधी आदि अनेक प्राकृत-भाषाओं का उद्भव हुआ। जब प्राकृत-भाषाओं को व्याकरण के नियमों से स्थिर करने की चेष्टा हुई, तब 'अपभ्रंशों' का उद्भव हुआ। क्रमशः परिनिष्ठित अपभ्रंशों में साहित्य रचा जाने लगा, तत्पश्चात हिंदी के उद्भव और विकास की राह सुगम हो गयी।

वर्तमान समय में हिंदी ने जो स्वरूप ग्रहण कर रखा है, उसे ग्रहण करने से पूर्व उसे अनेक दुर्गम पड़ावों को पार करना पड़ा है। विविधताओं से परिपूर्ण विशाल जनसंख्या वाले भारत देश में स्वयं को स्थापित करने के लिए हिंदी को अनेकों विरोधों-अंतर्विरोधों का सामना करना पड़ा। अहिंदीभाषियों से अधिक हिंदीभाषियों ने 'हिंदी' के अस्तित्व और महत्व पर प्रश्नचिह्न लगाने का असफल प्रयास किया। इसी तरह अपनी पंद्रह वर्षों की साहित्यिक-यात्रा में 'मधुराक्षर' को भी अनेक दुरूह परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। इसके बावजूद 'मधुराक्षर' कभी समय से, तो कभी विलंब से आपके सामने प्रस्तुत हुई है। आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि आप सभी का सहयोग और स्नेह मिलता रहेगा!

बृजेंद्र अग्निहोत्री

फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ 'रेणु' (04 मार्च 1921 –11 अप्रैल 1977) हिंदी भाषा के साहित्यकार थे। उनके पहले उपन्यास मैला आंचल लिए उन्हें पद्‌मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उनका जन्म बिहार के अररिया जिले में फॉरबिसगंज के पास औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। इंटरमीडिएट के बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। बाद में 1950 में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में भी हिस्सा लिया। उनकी लेखन–शैली वर्णनात्मक थी। पात्रों का चरित्र–निर्माण काफी तेजी से होता था। उनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को आगे बढाता है। उनकी साहित्यिक कृतियाँ हैं, उपन्यास : मैला आंचल, परती परिकथा, जूलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे, पलटू बाबू रोड, कथा–संग्रह : एक आदिम रात्रि की महक, ठुमरी, अग्निखोर, अच्छे आदमीय रिपोर्ताज : ऋणजल–धनजल, नेपाली क्रांतिकथा, वनतुलसी की गंध, श्रुत अश्रुत पूर्वे।

तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम

फणीश्वरनाथ रेणु

हीरामन गाड़ीवान की पीठ में गुदगुदी लगती है... पिछले बीस साल से गाड़ी हाँकता है हीरामन। बैलगाड़ी। सीमा के उस पार, मोरंग राज नेपाल से धान और लकड़ी ढो चुका है। कंट्रोल के जमाने में चोरबाजारी का माल इस पार से उस पार पहुँचाया है। लेकिन कभी तो ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में!

कंट्रोल का जमाना! हीरामन कभी भूल सकता है उस जमाने को! एक बार चार खेप सीमेंट और कपड़े की गाँठों से भरी गाड़ी, जोगबानी में विराटनगर पहुँचने के बाद हीरामन का कलेजा पोख्ता हो गया था। फारबिसगंज का हर चोर-व्यापारी उसको पक्का गाड़ीवान मानता। उसके बैलों की बड़ाई बड़ी गद्दी के बड़े सेठ जी खुद करते, अपनी भाषा में।

गाड़ी पकड़ी गई पाँचवी बार, सीमा के इस पार तराई में। महाजन का मुनीम उसी की गाड़ी पर गाँठों के बीच चुक्की-मुक्की लगा कर छिपा हुआ था।

दारोगा साहब की डेढ़ हाथ लंबी चोरबत्ती की रोशनी कितनी तेज होती है, हीरामन जानता है। एक घंटे के लिए आदमी अंधा हो जाता है, एक छटक भी पड़ जाए आँखों पर! रोशनी के साथ कड़कती हुई आवाज- 'ऐ-य! गाड़ी रोको! साले, गोली मार देंगे?'

बीसों गाड़ियाँ एक साथ कचकचा कर रुक गईं। हीरामन ने पहले ही कहा था, 'यह बीस विषावेगा!' दारोगा साहब उसकी गाड़ी में दुबके हुए मुनीम जी पर रोशनी डाल कर पिशाची हँसी हँसे- 'हा-हा-हा! मुनीम जी-ई-ई-ई! ही-ही-ही! ऐ-य, साला गाड़ीवान, मुँह क्या देखता है रे-ए-ए! कंबल हटाओ इस बोरे के मुँह पर से!' हाथ की छोटी लाठी से मुनीम जी के पेट में खोंचा मारते हुए कहा था, 'इस बोरे को! स-स्साला!'

बहुत पुरानी अखज-अदावत होगी दारोगा साहब और मुनीम जी में। नहीं तो उतना रूपया कबूलने पर भी पुलिस-दरोगा का मन न डोले भला! चार हजार तो गाड़ी पर बैठा ही दे रहा है। लाठी से दूसरी बार खोंचा मारा दारोगा ने। 'पाँच हजार!' फिर खोंचा- 'उतरो पहले...'

मुनीम को गाड़ी से नीचे उतार कर दारोगा ने उसकी आँखों पर रोशनी डाल दी। फिर दो सिपाहियों के साथ सड़क से बीस-पच्चीस रस्सी दूर झाड़ी के पास ले गए। गाड़ीवान और गाड़ियों पर पाँच-पाँच बंदूकवाले सिपाहियों का पहरा! हीरामन समझ गया, इस बार निस्तार नहीं। जेल ? हीरामन को जेल का डर नहीं। लेकिन उसके बैल ? न जाने कितने दिनों तक बिना चारा-पानी के सरकारी फाटक में पड़े रहेंगे- भूखे-प्यासे। फिर नीलाम हो जाएँगे। भैया और भौजी को वह मुँह नहीं दिखा सकेगा कभी। ...नीलाम की बोली उसके कानों के पास गूँज गई- एक-दो-तीन! दारोगा और मुनीम में बात पट नहीं रही थी शायद।

हीरामन की गाड़ी के पास तैनात सिपाही ने अपनी भाषा में दूसरे सिपाही से धीमी आवाज में पूछा, 'का हो ? मामला गोल होखी का?' फिर खैनी-तंबाकू देने के बहाने उस सिपाही के पास चला गया।

एक-दो-तीन! तीन-चार गाड़ियों की आड़। हीरामन ने फैसला कर लिया। उसने धीरे-से अपने बैलों के गले की रस्सियाँ खोल लीं। गाड़ी पर बैठे-बैठे दोनों को जुड़वाँ बाँध दिया। बैल समझ गए उन्हें क्या करना है। हीरामन उतरा, जुती हुई गाड़ी में बाँस की टिकटी लगा कर बैलों के कंधों को बेलाग किया। दोनों के कानों के पास गुदगुदी लगा दी और मन-ही-मन बोला, 'चलो भैयन, जान बचेगी तो ऐसी-ऐसी सग्गड़ गाड़ी बहुत मिलेगी।' ...एक-दो-तीन! नौ-दो-ग्यारह! ..

गाड़ियों की आड़ में सड़क के किनारे दूर तक घनी झाड़ी फैली हुई थी। दम साध कर तीनों प्राणियों ने झाड़ी को पार किया- बेखटक, बेआहट! फिर एक ले, दो ले- दुलकी चाल! दोनों बैल सीना तान कर फिर तराई के घने जंगलों में घुस गए। राह सूँघते, नदी-नाला पार करते हुए भागे पूँछ उठा कर। पीछे-पीछे हीरामन। रात-भर भागते रहे थे तीनों जन।

घर पहुँच कर दो दिन तक बेसुध पड़ा रहा हीरामन। होश में आते ही उसने कान पकड़ कर कसम खाई थी- अब कभी ऐसी चीजों की लदनी नहीं लादेंगे। चोरबाजारी का माल ? तोबा, तोबा!... पता नहीं मुनीम जी का क्या हुआ! भगवान जाने उसकी सग्गड़ गाड़ी का क्या हुआ! असली इस्पात लोहे की धुरी थी। दोनों पहिए तो नहीं, एक पहिया एकदम नया था। गाड़ी में रंगीन डोरियों के फुँदने बड़े जतन से गूँथे गए थे।

दो कसमें खाई हैं उसने। एक चोरबाजारी का माल नहीं लादेंगे। दूसरी- बाँस। अपने हर भाड़ेदार से वह पहले ही पूछ लेता है- 'चोरी- चमारीवाली चीज तो नहीं? और, बाँस? बाँस लादने के लिए पचास रुपए भी दे कोई, हीरामन की गाड़ी नहीं मिलेगी। दूसरे की गाड़ी देखे।

बाँस लदी हुई गाड़ी! गाड़ी से चार हाथ आगे बाँस का अगुआ निकला रहता है और पीछे की ओर चार हाथ पिछुआ! काबू के बाहर रहती है गाड़ी हमेशा। सो बेकाबूवाली लदनी और खरैहिया। शहरवाली बात! तिस पर बाँस का अगुआ पकड़ कर चलनेवाला भाड़ेदार का महाभकुआ नौकर, लड़की-स्कूल की ओर देखने लगा। बस, मोड़ पर घोड़ागाड़ी से टक्कर हो गई। जब तक हीरामन बैलों की रस्सी खींचे, तब तक घोड़ागाड़ी की छतरी बाँस के अगुआ में फँस गई। घोड़ा-गाड़ीवाले ने तड़ातड़ चाबुक मारते हुए गाली दी थी! बाँस की लदनी ही नहीं, हीरामन ने खरैहिया शहर की लदनी भी छोड़ दी। और जब फारबिसगंज से मोरंग का भाड़ा ढोना शुरू किया तो गाड़ी ही पार! कई वर्षों तक हीरामन ने बैलों को आधीदारी पर जोता। आधा भाड़ा गाड़ीवाले का और आधा बैलवाले का। हिस्स! गाड़ीवानी करो मुफ्त! आधीदारी की कमाई से बैलों के ही पेट नहीं भरते। पिछले साल ही उसने अपनी गाड़ी बनवाई है।

देवी मैया भला करें उस सरकस-कंपनी के बाघ का। पिछले साल इसी मेले में बाघगाड़ी को ढोनेवाले दोनों घोड़े मर गए। चंपानगर से फारबिसगंज मेला आने के समय सरकस-कंपनी के मैनेजर ने गाड़ीवान-पट्टी में ऐलान करके कहा- 'सौ रूपया भाड़ा मिलेगा!' एक-दो गाड़ीवान राजी हुए। लेकिन, उनके बैल बाघगाड़ी से दस हाथ दूर ही डर से डिकरने लगे- बाँ-आँ! रस्सी तुड़ा कर

भागे। हीरामन ने अपने बैलों की पीठ सहलाते हुए कहा, 'देखो भैयन, ऐसा मौका फिर हाथ न आएगा। यही है मौका अपनी गाड़ी बनवाने का। नहीं तो फिर आधेदारी। अरे पिंजड़े में बंद बाघ का क्या डर? मोरंग की तराई में दहाड़ते हुइ बाघों को देख चुके हो। फिर पीठ पर मैं तो हूँ।...'

गाड़ीवानों के दल में तालियाँ पटपटा उठीं थीं एक साथ। सभी की लाज रख ली हीरामन के बैलों ने। हुमक कर आगे बढ़ गए और बाघगाड़ी में जुट गए- एक-एक करके। सिर्फ दाहिने बैल ने जुतने के बाद ढेर-सा पेशाब किया। हीरामन ने दो दिन तक नाक से कपड़े की पट्टी नहीं खोली थी। बड़ी गद्दी के बडे सेठ जी की तरह नकबंधन लगाए बिना बघाइन गंध बरदास्त नहीं कर सकता कोई। बाघगाड़ी की गाड़ीवानी की है हीरामन ने। कभी ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में। आज रह-रह कर उसकी गाड़ी में चंपा का फूल महक उठता है। पीठ में गुदगुदी लगने पर वह अँगोछे से पीठ झाड़ लेता है।

हीरामन को लगता है, दो वर्ष से चंपानगर मेले की भगवती मैया उस पर प्रसन्न है। पिछले साल बाघगाड़ी जुट गई। नकद एक सौ रुपए भाड़े के अलावा बुताद, चाह-बिस्कुट और रास्ते-भर बंदर-भालू और जोकर का तमाशा देखा सो फोकट में! और, इस बार यह जनानी सवारी। औरत है या चंपा का फूल! जब से गाड़ी मह-मह महक रही है।

कच्ची सड़क के एक छोटे-से खड्ड में गाड़ी का दाहिना पहिया बेमौके हिचकोला खा गया। हीरामन की गाड़ी से एक हल्की 'सिस' की आवाज आई। हीरामन ने दाहिने बैल को दुआली से पीटते हुए कहा, 'साला! क्या समझता है, बोरे की लदनी है क्या?'

'अहा! मारो मत!'

अनदेखी औरत की आवाज ने हीरामन को अचरज में डाल दिया। बच्चों की बोली जैसी महीन, फेनूगिलासी बोली!

मथुरामोहन नौटंकी कंपनी में लैला बननेवाली हीराबाई का नाम किसने नहीं सुना होगा भला! लेकिन हीरामन की बात निराली है! उसने सात साल तक लगातार मेलों की लदनी लादी है, कभी नौटंकी-थियेटर या बायस्कोप सिनेमा नहीं देखा। लैला या हीराबाई का नाम भी उसने नहीं सुना कभी। देखने की क्या बात! सो मेला टूटने के पंद्रह दिन पहले आधी रात की बेला में काली ओढ़नी में लिपटी औरत को देख कर उसके मन में खटका अवश्य लगा था। बक्सा ढोनेवाले नौकर से गाड़ी-भाड़ा में मोल-मोलाई करने की कोशिश की तो ओढ़नीवाली ने सिर हिला कर मना कर दिया। हीरामन ने गाड़ी जोतते हुए नौकर से पूछा, 'क्यों

भैया, कोई चोरी चमारी का माल-वाल तो नहीं?' हीरामन को फिर अचरज हुआ। बक्सा ढोनेवाले आदमी ने हाथ के इशारे से गाड़ी हाँकने को कहा और अँधेरे में गायब हो गया। हीरामन को मेले में तंबाकू बेचनेवाली बूढ़ी की काली साड़ी की याद आई थी।

ऐसे में कोई क्या गाड़ी हाँके!

एक तो पीठ में गुदगुदी लग रही है। दूसरे रह-रह कर चंपा का फूल खिल जाता है उसकी गाड़ी में। बैलों को डाँटो तो 'इस-बिस' करने लगती है उसकी सवारी। उसकी सवारी! औरत अकेली, तंबाकू बेचनेवाली बूढ़ी नहीं! आवाज सुनने के बाद वह बार-बार मुड़ कर टप्पर में एक नजर डाल देता है, अँगोछे से पीठ झाड़ता है। ...भगवान जाने क्या लिखा है इस बार उसकी किस्मत में! गाड़ी जब पूरब की ओर मुड़ी, एक टुकड़ा चाँदनी उसकी गाड़ी में समा गई। सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा। हीरामन को सबकुछ रहस्यमय - अजगुत-अजगुत - लग रहा है। सामने चंपानगर से सिंधिया गाँव तक फैला हुआ मैदान... कहीं डाकिन-पिशाचिन तो नहीं ?

हीरामन की सवारी ने करवट ली। चाँदनी पूरे मुखड़े पर पड़ी तो हीरामन चीखते-चीखते रूक गया- 'अरे बाप! ई तो परी है!'

परी की आँखें खुल गईं। हीरामन ने सामने सड़क की ओर मुँह कर लिया और बैलों को टिटकारी दी। वह जीभ को तालू से सटा कर टि-टि-टि-टि आवाज निकालता है। हीरामन की जीभ न जाने कब से सूख कर लकड़ी-जैसी हो गई थी!

'भैया, तुम्हारा नाम क्या है?'

हू-ब-हू फेनूगिलास! ...हीरामन के रोम-रोम बज उठे। मुँह से बोली नहीं निकली। उसके दोनों बैल भी कान खड़े करके इस बोली को परखते हैं।

'मेरा नाम! ...नाम मेरा है हीरामन!'

उसकी सवारी मुस्कराती है। ...मुस्कराहट में खुशबू है।

'तब तो मीता कहूँगी, भैया नहीं। -मेरा नाम भी हीरा है।'

'इस्स! मर्द और औरत के नाम में फर्क होता है।'

'हाँ जी, मेरा नाम भी हीराबाई है।'

कहाँ हीरामन और कहाँ हीराबाई, बहुत फर्क है! हीरामन ने अपने बैलों को झिड़की दी- 'कान चुनिया कर गप सुनने से ही तीस कोस मंजिल कटेगी क्या? इस बाएँ नाटे के पेट में शैतानी भरी है।' हीरामन ने बाएँ बैल को दुआली की हल्की झड़प दी।

'मारो मत, धीरे धीरे चलने दो। जल्दी क्या है!'

हीरामन के सामने सवाल उपस्थित हुआ, वह क्या कहकर 'गप' करे हीराबाई से? 'तोहे' कहे या 'अहाँ' ? उसकी भाषा में बड़ों को 'अहाँ' अर्थात 'आप' कह कर संबोधित किया जाता है, कचराही बोली में दो-चार सवाल-जवाब चल सकता है, दिल-खोल गप तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है किसी से।

आसिन-कातिक के भोर में छा जानेवाले कुहासे से हीरामन को पुरानी चिढ़ है। बहुत बार वह सड़क भूल कर भटक चुका है। किंतु आज के भोर के इस घने कुहासे में भी वह मगन है। नदी के किनारे धन-खेतों से फूले हुए धान के पौधों की पवनिया गंध आती है। पर्व-पावन के दिन गाँव में ऐसी ही सुगंध फैली रहती है। उसकी गाड़ी में फिर चंपा का फूल खिला। उस फूल में एक परी बैठी है। ...जै भगवती।

हीरामन ने आँख की कनखियों से देखा, उसकी सवारी ...मीता ... हीराबाई की आँखें गुजुर-गुजुर उसको हेर रही हैं। हीरामन के मन में कोई अजानी रागिनी बज उठी। सारी देह सिरसिरा रही है। बोला, 'बैल को मारते हैं तो आपको बहुत बुरा लगता है?'

हीराबाई ने परख लिया, हीरामन सचमुच हीरा है। चालीस साल का हट्टा-कट्टा, काला-कलूटा, देहाती नौजवान अपनी गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता। घर में बड़ा भाई है, खेती करता है। बाल-बच्चेवाला आदमी है। हीरामन भाई से बढ़ कर भाभी की इज्जत करता है। भाभी से डरता भी है। हीरामन की भी शादी हुई थी, बचपन में ही गौने के पहले ही दुलहिन मर गई। हीरामन को अपनी दुलहिन का चेहरा याद नहीं। ...दूसरी शादी ? दूसरी शादी न करने के अनेक कारण हैं। भाभी की जिद, कुमारी लड़की से ही हीरामन की शादी करवाएगी। कुमारी का मतलब हुआ पाँच-सात साल की लड़की। कौन मानता है सरधा-कानून? कोई लड़कीवाला दोब्याहू को अपनी लड़की गरज में पड़ने पर ही दे सकता है। भाभी उसकी तीन-सत्त करके बैठी है, सो बैठी है। भाभी के आगे भैया की भी नहीं चलती! ...अब हीरामन ने तय कर लिया है, शादी नहीं करेगा। कौन बलाय मोल लेने जाए! ...ब्याह करके फिर गाड़ीवानी क्या करेगा कोई! और सब कुछ छूट जाए, गाड़ीवानी नहीं छोड़ सकता हीरामन।

हीराबाई ने हीरामन के जैसा निश्छल आदमी बहुत कम देखा है। पूछा, 'आपका घर कौन जिल्ला में पड़ता है?' कानपुर नाम सुनते ही जो उसकी हँसी

छूटी, तो बैल भड़क उठे। हीरामन हँसते समय सिर नीचा कर लेता है। हँसी बंद होने पर उसने कहा, 'वाह रे कानपुर! तब तो नाकपुर भी होगा?' और जब हीराबाई ने कहा कि नाकपुर भी है, तो वह हँसते-हँसते दुहरा हो गया।

'वाह रे दुनिया! क्या-क्या नाम होता है! कानपुर, नाकपुर!' हीरामन ने हीराबाई के कान के फूल को गौर से देखा। नाक की नकछवि के नग देखकर सिहर उठा- लहू की बूँद!

हीरामन ने हीराबई का नाम नहीं सुना कभी। नौटंकी कंपनी की औरत को वह बाईजी नहीं समझता है। ...कंपनी में काम करनेवाली औरतों को वह देख चुका है। सरकस कंपनी की मालकिन, अपनी दोनों जवान बेटियों के साथ बाघगाड़ी के पास आती थी, बाघ को चारा-पानी देती थी, प्यार भी करती थी खूब। हीरामन के बैलों को भी डबलरोटी-बिस्कुट खिलाया था बड़ी बेटी ने।

हीरामन होशियार है। कुहासा छँटते ही अपनी चादर से टप्पर में परदा कर दिया- 'बस दो घंटा! उसके बाद रास्ता चलना मुश्किल है। कातिक की सुबह की धूल आप बर्दास्त न कर सकिएगा। कजरी नदी के किनारे तेगछिया के पास गाड़ी लगा देंगे। दुपहरिया काट कर...।'

सामने से आती हुई गाड़ी को दूर से ही देख कर वह सतर्क हो गया। लीक और बैलों पर ध्यान लगा कर बैठ गया। राह काटते हुए गाड़ीवान ने पूछा, 'मेला टूट रहा है क्या भाई?'

हीरामन ने जवाब दिया, वह मेले की बात नहीं जानता। उसकी गाड़ी पर 'बिदागी' (नैहर या ससुराल जाती हुई लड़की) है। न जाने किस गाँव का नाम बता दिया हीरामन ने।

'छतापुर-पचीरा कहाँ है?'

'कहीं हो, यह ले कर आप क्या करिएगा?' हीरामन अपनी चतुराई पर हँसा। परदा डाल देने पर भी पीठ में गुदगुदी लगती है।

हीरामन परदे के छेद से देखता है। हीराबाई एक दियासलाई की डिब्बी के बराबर आईने में अपने दाँत देख रही है। ...मदनपुर मेले में एक बार बैलों को नन्हीं-चित्ती कौड़ियों की माला खरीद दी थी। हीरामन ने, छोटी-छोटी, नन्हीं-नन्हीं कौड़ियों की पाँत।

तेगछिया के तीनों पेड़ दूर से ही दिखलाई पड़ते हैं। हीरामन ने परदे को जरा सरकाते हुए कहा, 'देखिए, यही है तेगछिया। दो पेड़ जटामासी बड़ है और एक उस फूल का क्या नाम है, आपके कुरते पर जैसा फूल छपा हुआ है,

वैसा ही, खूब महकता है, दो कोस दूर तक गंध जाती है, उस फूल को खमीरा तंबाकू में डाल कर पीते भी हैं लोग।'

'और उस अमराई की आड़ से कई मकान दिखाई पड़ते हैं, वहाँ कोई गाँव है या मंदिर?'

हीरामन ने बीड़ी सुलगाने के पहले पूछा, 'बीड़ी पीएँ? आपको गंध तो नहीं लगेगी? ...वही है नामलगर ड्योढ़ी। जिस राजा के मेले से हम लोग आ रहे हैं, उसी का दियाद-गोतिया है। ...जा रे जमाना!'

हीरामन ने जा रे जमाना कह कर बात को चाशनी में डाल दिया। हीराबाई ने टप्पर के परदे को तिरछे खोंस दिया। हीराबाई की दंतपंक्ति।

'कौन जमाना?' ठुड्डी पर हाथ रख कर साग्रह बोली।

'नामलगर ड्योढ़ी का जमाना! क्या था और क्या-से-क्या हो गया!'

हीरामन गप रसाने का भेद जानता है। हीराबाई बोली, 'तुमने देखा था वह जमाना?'

'देखा नहीं, सुना है। राज कैसे गया, बड़ी हैफवाली कहानी है। सुनते हैं, घर में देवता ने जन्म ले लिया। कहिए भला, देवता आखिर देवता है। है या नहीं? इंदरासन छोड़ कर मिरतूभुवन में जन्म ले ले तो उसका तेज कैसे सम्हाल सकता है कोई! सूरजमुखी फूल की तरह माथे के पास तेज खिला रहता। लेकिन नजर का फेर, किसी ने नहीं पहचाना। एक बार उपलैन में लाट साहब मय लाटनी के, हवागाड़ी से आए थे। लाट ने भी नहीं, पहचाना आखिर लटनी ने। सुरजमुखी तेज देखते ही बोल उठी- ए मैन राजा साहब, सुनो, यह आदमी का बच्चा नहीं है, देवता है।'

हीरामन ने लाटनी की बोली की नकल उतारते समय खूब डैम-फैट-लैट किया। हीराबाई दिल खोल कर हँसी। हँसते समय उसकी सारी देह दुलकती है। हीराबाई ने अपनी ओढ़नी ठीक कर ली। तब हीरामन को लगा कि... लगा कि...

'तब? उसके बाद क्या हुआ मीता?'

'इस्स! कथा सुनने का बड़ा सौक है आपको? ...लेकिन, काला आदमी, राजा क्या महाराजा भी हो जाए, रहेगा काला आदमी ही। साहेब के जैसे अक्किल कहाँ से पाएगा! हँस कर बात उड़ा दी सभी ने। तब रानी को बार-बार सपना देने लगा देवता! सेवा नहीं कर सकते तो जाने दो, नहीं, रहेंगे तुम्हारे यहाँ। इसके बाद देवता का खेल शुरू हुआ। सबसे पहले दोनों दंतार हाथी मरे, फिर घोड़ा, फिर पटपटांग...।'

'पटपटांग क्या है?'

हीरामन का मन पल-पल में बदल रहा है। मन में सतरंगा छाता धीरे-धीरे खिल रहा है, उसको लगता है। ...उसकी गाड़ी पर देवकुल की औरत सवार है। देवता आखिर देवता है!

'पटपटांग! धन-दौलत, माल-मवेसी सब साफ! देवता इंदरासन चला गया।'

हीराबाई ने ओझल होते हुए मंदिर के कँगूरे की ओर देख कर लंबी साँस ली।

'लेकिन देवता ने जाते-जाते कहा, इस राज में कभी एक छोड़ कर दो बेटा नहीं होगा। धन हम अपने साथ ले जा रहे हैं, गुन छोड़ जाते हैं। देवता के साथ सभी देव-देवी चले गए, सिर्फ सरोसती मैया रह गई। उसी का मंदिर है।'

देसी घोड़े पर पाट के बोझ लादे हुए बनियों को आते देख कर हीरामन ने टप्पर के परदे को गिरा दिया। बैलों को ललकार कर बिदेसिया नाच का वंदनागीत गाने लगा -

'जै मैया सरोसती, अरजी करत बानी,
हमरा पर होखू सहाई हे मैया, हमरा पर होखू सहाई!'

घोड़लद्दे बनियों से हीरामन ने हुलस कर पूछा, 'क्या भाव पटुआ खरीदते हैं महाजन?'

लँगड़े घोड़ेवाले बनिए ने बटगमनी जवाब दिया- 'नीचे सताइस-अठाइस, ऊपर तीस। जैसा माल, वैसा भाव।'

जवान बनिये ने पूछा, 'मेले का क्या हालचाल है, भाई? कौन नौटंकी कंपनी का खेल हो रहा है, रौता कंपनी या मथुरामोहन?'

'मेले का हाल मेलावाला जाने?' हीरामन ने फिर छतापुर-पचीरा का नाम लिया।

सूरज दो बाँस ऊपर आ गया था। हीरामन अपने बैलों से बात करने लगा- 'एक कोस जमीन! जरा दम बाँध कर चलो। प्यास की बेला हो गई न! याद है, उस बार तेगछिया के पास सरकस कंपनी के जोकर और बंदर नचानेवाला साहब में झगड़ा हो गया था। जोकरवा ठीक बंदर की तरह दाँत किटकिटा कर किक्रियाने लगा था, न जाने किस-किस देस-मुलुक के आदमी आते हैं!'

हीरामन ने फिर परदे के छेद से देखा, हीराबई एक कागज के टुकड़े पर आँख गड़ा कर बैठी है। हीरामन का मन आज हल्के सुर में बँधा है। उसको तरह-तरह के गीतों की याद आती है। बीस-पच्चीस साल पहले, बिदेसिया,

बलवाही, छोकरा–नाचनेवाले एक–से–एक गजल खेमटा गाते थे। अब तो, भोंपा में भोंपू–भोंपू करके कौन गीत गाते हैं लोग! जा रे जमाना! छोकरा–नाच के गीत की याद आई हीरामन को–

‘सजनवा बैरी हो गय हमारो! सजनवा.....!
अरे, चिठिया हो ते सब कोई बाँचे, चिठिया हो तो....
हाय! करमवा, होय करमवा....।’

गाड़ी की बल्ली पर उँगलियों से ताल दे कर गीत को काट दिया हीरामन ने। छोकरा–नाच के मनुवाँ नटुवा का मुँह हीराबाई–जैसा ही था। ...कहाँ चला गया वह जमाना? हर महीने गाँव में नाचनेवाले आते थे। हीरामन ने छोकरा–नाच के चलते अपनी भाभी की न जाने कितनी बोली–ठोली सुनी थी। भाई ने घर से निकल जाने को कहा था।

आज हीरामन पर माँ सरोसती सहाय हैं, लगता है। हीराबाई बोली, ‘वाह, कितना बढ़िया गाते हो तुम!’

हीरामन का मुँह लाल हो गया। वह सिर नीचा कर के हँसने लगा।

आज तेगछिया पर रहनेवाले महावीर स्वामी भी सहाय हैं हीरामन पर। तेगछिया के नीचे एक भी गाड़ी नहीं। हमेशा गाड़ी और गाड़ीवानों की भीड़ लगी रहती हैं यहाँ। सिर्फ एक साइकिल वाला बैठकर सुस्ता रहा है। महावीर स्वामी को सुमर कर हीरामन ने गाड़ी रोकी। हीराबाई परदा हटाने लगी। हीरामन ने पहली बार आँखों से बात की हीराबाई से– साइकिल वाला इधर ही टकटकी लगा कर देख रहा है।

बैलों को खोलने के पहले बाँस की टिकटी लगा कर गाड़ी को टिका दिया। फिर साइकिल वाले की ओर बार–बार घूरते हुए पूछा, ‘कहाँ जाना है? मेला? कहाँ से आना हो रहा है? बिसनपुर से? बस, इतनी ही दूर में थसथसा कर थक गए? –जा रे जवानी!’

साइकिलवाला दुबला–पतला नौजवान मिनमिनाकर कुछ बोला और बीड़ी सुलगाकर उठ खड़ा हुआ। हीरामन दुनिया–भर की निगाह से बचाकर रखना चाहता है हीराबाई को। उसने चारों ओर नजर दौड़ाकर देख लिया– कहीं कोई गाड़ी या घोड़ा नहीं।

कजरी नदी की दुबली–पतली धारा तेगछिया के पास आकर पूरब की ओर मुड़ गई है। हीराबाई पानी में बैठी हुई भैसों और उनकी पीठ पर बैठे हुए बगुलों को देखती रही।

हीरामन बोला, ‘जाइए, घाट पर मुँह–हाथ धो आइए!’

हीराबाई गाड़ी से नीचे उतरी। हीरामन का कलेजा धड़क उठा। नहीं, …नहीं! पाँव सीधे हैं, टेढ़े नहीं। लेकिन, तलुवा इतना लाल क्यों हैं? हीराबाई घाट की ओर चली गई, गाँव की बहू-बेटी की तरह सिर नीचा कर के धीरे-धीरे। कौन कहेगा कि कंपनी की औरत है! …औरत नहीं, लड़की। शायद कुमारी ही है।

हीरामन टिकटी पर टिकी गाड़ी पर बैठ गया। उसने टप्पर में झाँक कर देखा। एक बार इधर-उधर देख कर हीराबाई के तकिए पर हाथ रख दिया। फिर तकिए पर केहुनी डाल कर झुक गया, झुकता गया। खुशबू उसकी देह में समा गई। तकिए के गिलाफ पर कढ़े फूलों को उँगलियों से छू कर उसने सूँघा, हाय रे हाय! इतनी सुगंध! हीरामन को लगा, एक साथ पाँच चिलम गाँजा फूँक कर वह उठा है। हीराबाई के छोटे आईने में उसने अपना मुँह देखा। आँखें उसकी इतनी लाल क्यों हैं?

हीराबाई लौटकर आई तो उसने हँस कर कहा, 'अब आप गाड़ी का पहरा दीजिए, मैं आता हूँ तुरंत।'

हीरामन ने अपना सफरी झोली से सहेजी हुई गंजी निकाली। गमछा झाड़ कर कंधे पर लिया और हाथ में बालटी लटका कर चला। उसके बैलों ने बारी-बारी से 'हुँक-हुँक' करके कुछ कहा। हीरामन ने जाते-जाते उलटकर कहा, 'हाँ,हाँ, प्यास सभी को लगी है। लौट कर आता हूँ तो घास दूँगा, बदमासी मत करो!'

बैलों ने कान हिलाए।

नहा-धोकर कब लौटा हीरामन, हीराबाई को नहीं मालूम। कजरी की धारा को देखते-देखते उसकी आँखों में रात की उचटी हुई नींद लौट आई थी। हीरामन पास के गाँव से जलपान के लिए दही-चूड़ा-चीनी ले आया है।

'उठिए, नींद तोड़िए! दो मुट्ठी जलपान कर लीजिए!'

हीराबाई आँख खोल कर अचरज में पड़ गई। एक हाथ में मिट्टी के नए बरतन में दही, केले के पत्ते। दूसरे हाथ में बालटी-भर पानी। आँखों में आत्मीयतापूर्ण अनुरोध!

'इतनी चीजें कहाँ से ले आए!'

'इस गाँव का दही नामी है। …चाह तो फारबिसगंज जा कर ही पाइएगा।'

हीरामन की देह की गुदगुदी मिट गई।

हीराबाई ने कहा, 'तुम भी पत्तल बिछाओ। ...क्यों? तुम नहीं खाओगे तो समेटकर रख लो अपनी झोली में। मैं भी नहीं खाऊँगी।'

'इस्स!' हीरामन लजा कर बोला, 'अच्छी बात! आप खा लीजिए पहले!'

'पहले-पीछे क्या? तुम भी बैठो।'

हीरामन का जी जुड़ा गया। हीराबाई ने अपने हाथ से उसका पत्तल बिछा दिया, पानी छींट दिया, चूड़ा निकाल कर दिया। इस्स! धन्न है, धन्न है! हीरामन ने देखा, भगवती मैया भोग लगा रही है। लाल होठों पर गोरस का परस! ...पहाड़ी तोते को दूध-भात खाते देखा है?

दिन ढल गया। टप्पर में सोई हीराबाई और जमीन पर दरी बिछा कर सोए हीरामन की नींद एक ही साथ खुली। ...मेले की ओर जानेवाली गाड़ियाँ तेगछिया के पास रूकी हैं। बच्चे कचर-पचर कर रहे हैं। हीरामन हड़बड़ाकर उठा। टप्पर के अंदर झाँक कर इशारे से कहा- 'दिन ढल गया! गाड़ी में बैलों को जोतते समय उसने गाड़ीवानों के सवालों का कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ी हाँकते हुए बोला, 'सिरपुर बाजार के इसपिताल की डागडरनी हैं। रोगी देखने जा रही हैं। पास ही कुड़मागाम।'

हीराबाई छत्तापुर-पचीरा का नाम भूल गई। गाड़ी जब कुछ दूर आगे बढ़ आई तो उसने हँस कर पूछा, 'पत्तापुर-छपीरा?'

हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाए हीरामन के- 'पत्तापुर-छपीरा! हा-हा। वे लोग छत्तापुर-पचीरा के ही गाड़ीवान थे, उनसे कैसे कहता! ही-ही-ही!'

हीराबाई मुस्कराती हुई गाँव की ओर देखने लगी।

सड़क तेगछिया गाँव के बीच से निकलती है। गाँव के बच्चों ने परदेवाली गाड़ी देखी और तालियाँ बजा-बजा कर रटी हुई पंक्तियाँ दुहराने लगे -

'लाली-लाली डोलिया में
लाली रे दुलहिनिया
पान खाए...!'

हीरामन हँसा। ...दुलहिनिया ...लाली-लाली डोलिया! दुलहिनिया पान खाती है, दुलहा की पगड़ी में मुँह पोंछती है। ओ दुलहिनिया, तेगछिया गाँव के बच्चों को याद रखना। लौटती बेर गुड़ का लड्डू लेती आइयो। लाख बरिस तेरा हुलहा जीए! ...कितने दिनों का हौसला पूरा हुआ है हीरामन का! ऐसे कितने सपने देखे हैं उसने! वह अपनी दुलहिन को लेकर लौट रहा है। हर गाँव के बच्चे तालियाँ बजा कर गा रहे हैं। हर आँगन से झाँककर देख रही हैं औरतें। मर्द लोग पूछते हैं, 'कहाँ की गाड़ी है, कहाँ जाएगी?' उसकी दुलहिन डोली का

परदा थोड़ा सरकाकर देखती है। और भी कितने सपने... गाँव से बाहर निकल कर उसने कनखियों से टप्पर के अंदर देखा, हीराबाई कुछ सोच रही है। हीरामन भी किसी सोच में पड़ गया। थोड़ी देर के बाद वह गुनगुनाने लगा–

'सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है।
न हाथी है, न घोड़ा है,
वहाँ पैदल ही जाना है। सजन रे...।'

हीराबाई ने पूछा, 'क्यों मीता? तुम्हारी अपनी बोली में कोई गीत नहीं क्या?'

हीरामन अब बेखटक हीराबाई की आँखों में आँखें डालकर बात करता है। कंपनी की औरत भी ऐसी होती है? सरकस कंपनी की मालकिन मेम थी। लेकिन हीराबाई! गाँव की बोली में गीत सुनना चाहती है। वह खुल कर मुस्कराया– 'गाँव की बोली आप समझिएगा?'

'हूँ-ऊँ-ऊँ !' हीराबाई ने गर्दन हिलाई। कान के झुमके हिल गए।

हीरामन कुछ देर तक बैलों को हाँकता रहा चुपचाप। फिर बोला, 'गीत जरूर ही सुनिएगा? नहीं मानिएगा? इस्स! इतना सौक गाँव का गीत सुनने का है आपको! तब लीक छोड़ानी होगी। चालू रास्ते में कैसे गीत गा सकता है कोई!'

हीरामन ने बाएँ बैल की रस्सी खींचकर दाहिने को लीक से बाहर किया और बोला, 'हरिपुर होकर नहीं जाएँगे तब।'

चालू लीक को काटते देखकर हीरामन की गाड़ी के पीछे वाले गाड़ीवान ने चिल्लाकर पूछा, 'काहे हो गाड़ीवान, लीक छोड़कर बेलीक कहाँ उधर?'

हीरामन ने हवा में दुआली घुमाते हुए जवाब दिया– 'कहाँ है बेलीकी? वह सड़क ननपुर तो नहीं जाएगी।' फिर अपने-आप बड़बड़ाया, 'इस मुलुक के लोगों की यही आदत बुरी है। राह चलते एक सौ जिरह करेंगे। अरे भाई, तुमको जाना है, जाओ। ...देहाती भुच्च सब!'

ननपुर की सड़क पर गाड़ी ला कर हीरामन ने बैलों की रस्सी ढीली कर दी। बैलों ने दुलकी चाल छोड़ कर कदमचाल पकड़ी।

हीराबाई ने देखा, सचमुच ननपुर की सड़क बड़ी सूनी है। हीरामन उसकी आँखों की बोली समझता है– 'घबराने की बात नहीं। यह सड़क भी फारबिसगंज जाएगी, राह-घाट के लोग बहुत अच्छे हैं। ...एक घड़ी रात तक हम लोग पहुँच जाएँगे।'

हीराबाई को फारबिसगंज पहुँचने की जल्दी नहीं। हीरामन पर उसको इतना भरोसा हो गया कि डर-भय की कोई बात नहीं उठती है मन में। हीरामन

ने पहले जी-भर मुस्करा लिया। कौन गीत गाए वह! हीराबाई को गीत और कथा दोनों का शौक है ...इस्स! महुआ घटवारिन? वह बोला, 'अच्छा, जब आपको इतना सौक है तो सुनिए महुआ घटवारिन का गीत। इसमें गीत भी है, कथा भी है।' ...कितने दिनों के बाद भगवती ने यह हौसला भी पूरा कर दिया। जै भगवती! आज हीरामन अपने मन को खलास कर लेगा। वह हीराबाई की थमी हुई मुस्कुराहट को देखता रहा।

'सुनिए! आज भी परमार नदी में महुआ घटवारिन के कई पुराने घाट हैं। इसी मुलुक की थी महुआ! थी तो घटवारिन, लेकिन सौ सतवंती में एक थी। उसका बाप दारू-ताड़ी पी कर दिन-रात बेहोश पड़ा रहता। उसकी सौतेली माँ साच्छात राकसनी! बहुत बड़ी नजर-चालक। रात में गाँजा-दारू-अफीम चुराकर बेचनेवाले से ले कर तरह-तरह के लोगों से उसकी जान-पहचान थी। सबसे घुट्टा-भर हेल-मेल। महुआ कुमारी थी। लेकिन काम कराते-कराते उसकी हड्डी निकाल दी थी राकसनी ने। जवान हो गई, कहीं शादी-ब्याह की बात भी नहीं चलाई। एक रात की बात सुनिए!'

हीरामन ने धीरे-धीरे गुनगुना कर गला साफ किया -

हे अ-अ-अ- सावना-भादवा के
र- उमड़ल नदिया -गे-में-मैं-यो-ओ-ओ,
मैयो गे रैनि भयावनि-हे-ए-ए-एय
तड़का-तड़के-धड़के करेज-आ-आ मोरा
कि हमहूँ जे बार-नान्ही रे-ए-ए ...।

ओ माँ! सावन-भादों की उमड़ी हुई नदी, भयावनी रात, बिजली कड़कती है, मैं बारी-क्वारी नन्ही बच्ची, मेरा कलेजा धड़कता है। अकेली कैसे जाऊँ घाट पर? सो भी परदेशी राही-बटोही के पैर में तेल लगाने के लिए! सत-माँ ने अपनी बज्जर-किवाड़ी बंद कर ली। आसमान में मेघ हड़बड़ा उठे और हरहरा कर बरसा होने लगी। महुआ रोने लगी, अपनी माँ को याद करके। आज उसकी माँ रहती तो ऐसे दुरदिन में कलेजे से सटा कर रखती अपनी महुआ बेटी को। गे मइया, इसी दिन के लिए, यही दिखाने के लिए तुमने कोख में रखा था? महुआ अपनी माँ पर गुस्साई- क्यों वह अकेली मर गई, जी-भर कर कोसती हुई बोली।'

हीरामन ने लक्ष्य किया, हीराबाई तकिए पर केहुनी गड़ा कर, गीत में मगन एकटक उसकी ओर देख रही है। ...खोई हुई सूरत कैसी भोली लगती है! हीरामन ने गले में कँपकँपी पैदा की-

'हूँ-ऊँ-ऊँ-रे डाइनियाँ मैयो मोरी-ई-ई,

नोनवा चटाई काहे नाहिं मारलि सौरी-घर-अ-अ।
एहि दिनवाँ खातिर छिनरो धिया
तेंहु पोसलि कि नेनू-दूध उगटन दूं।'

हीरामन ने दम लेते हुए पूछा, 'भाखा भी समझती हैं कुछ या खाली गीत ही सुनती हैं?'

हीरा बोली, 'समझती हूँ। उगटन माने उबटन- जो देह में लगाते हैं।'

हीरामन ने विस्मित होकर कहा, 'इस्स! ...सो रोने-धोने से क्या होए! सौदागर ने पूरा दाम चुका दिया था महुआ का। बाल पकड़ कर घसीटता हुआ नांव पर चढ़ा और माँझी को हुकुम दिया, नाव खोलो, पाल बाँधो! पालवाली नांव परवाली चिड़िया की तरह उड़ चली। रात-भर महुआ रोती-छटपटाती रही। सौदागर के नौकरों ने बहुत डराया-धमकाया- चुप रहो, नहीं तो उठाकर पानी में फेंक देंगे। बस, महुआ को बात सूझ गई। भोर का तारा मेघ की आड़ से जरा बाहर आया, फिर छिप गया। इधर महुआ भी छपाक से कूद पड़ी पानी में। ...सौदागर का एक नौकर महुआ को देखते ही मोहित हो गया था। महुआ की पीठ पर वह भी कूदा। उलटी धारा में तैरना खेल नहीं, सो भी भरी भादों की नदी में। महुआ असल घटवारिन की बेटी थी। मछली भी भला थकती है पानी में! सफरी मछली-जैसी फरफराती, पानी चीरती भागी चली जा रही है। और उसके पीछे सौदागर का नौकर पुकार-पुकार कर कहता है- महुआ जरा थमो, तुमको पकड़ने नहीं आ रहा, तुम्हारा साथी हूँ। जिंदगी-भर साथ रहेंगे हम लोग। लेकिन...।'

हीरामन का बहुत प्रिय गीत है यह। महुआ घटवारिन गाते समय उसके सामने सावन-भादों की नदी उमड़ने लगती है, अमावस्या की रात और घने बादलों में रह-रह कर बिजली चमक उठती है। उसी चमक में लहरों से लड़ती हुई बारी-कुमारी महुआ की झलक उसे मिल जाती है। सफरी मछली की चाल और तेज हो जाती है। उसको लगता है, वह खुद सौदागर का नौकर है। महुआ कोई बात नहीं सुनती। परतीत करती नहीं। उलट कर देखती भी नहीं। और वह थक गया है, तैरते-तैरते।

इस बार लगता है महुआ ने अपने को पकड़ा दिया। खुद ही पकड़ में आ गई है। उसने महुआ को छू लिया है, पा लिया है, उसकी थकन दूर हो गई है। पंद्रह-बीस साल तक उमड़ी हुई नदी की उलटी धारा में तैरते हुए उसके मन को किनारा मिल गया है। आनंद के आँसू कोई भी रोक नहीं मानते।

उसने हीराबाई से अपनी गीली आँखें चुराने की कोशिश की। किंतु हीरा तो उसके मन में बैठी न जाने कब-से सब कुछ देख रही थी। हीरामन ने अपनी काँपती हुई बोली को काबू में ला कर बैलों को झिड़की दी- 'इस गीत में न जाने क्या है कि सुनते ही दोनों थसथसा जाते हैं। लगता है, सौ मन बोझ लाद दिया किसी ने।'

हीराबाई लंबी साँस लेती है। हीरामन के अंग-अंग में उमंग समा जाती है।

'तुम तो उस्ताद हो मीता!'

'इस्स!'

आसिन-कातिक का सूरज दो बाँस दिन रहते ही कुम्हला जाता है। सूरज डूबने से पहले ही ननपुर पहुँचना है, हीरामन अपने बैलों को समझा रहा है- 'कदम खोल कर और कलेजा बाँध कर चलो ...ए ...छि ...छि! बढ़के भैयन! ले-ले-ले-ए हे -य!'

ननपुर तक वह अपने बैलों को ललकारता रहा। हर ललकार के पहले वह अपने बैलों को बीती हुई बातों की याद दिलाता- याद नहीं, चौधरी की बेटी की बरात में कितनी गाड़ियाँ थीं, सबको कैसे मात किया था! हाँ, वह कदम निकालो। ले-ले-ले! ननपुर से फारबिसगंज तीन कोस! दो घंटे और!

ननपुर के हाट पर आजकल चाय भी बिकने लगी है। हीरामन अपने लोटे में चाय भर कर ले आया। ...कंपनी की औरत जानता है वह, सारा दिन, घड़ी घड़ी भर में चाय पीती रहती है। चाय है या जान!

हीरा हँसते-हँसते लोट-पोट हो रही है- 'अरे, तुमसे किसने कह दिया कि क्वांरे आदमी को चाय नहीं पीनी चाहिए?'

हीरामन लजा गया। क्या बोले वह? ...लाज की बात। लेकिन वह भोग चुका है एक बार। सरकस कंपनी की मेम के हाथ की चाय पीकर उसने देख लिया है। बडी गर्म तासीर!

'पीजिए गुरू जी!' हीरा हँसी!

'इस्स!'

ननपुर हाट पर ही दीया-बाती जल चुकी थी। हीरामन ने अपना सफरी लालटेन जला कर पिछवा में लटका दिया। आजकल शहर से पाँच कोस दूर के गाँववाले भी अपने को शहरू समझने लगे हैं। बिना रोशनी की गाड़ी को पकड़ कर चालान कर देते हैं। बारह बखेड़ा !

'आप मुझे गुरू जी मत कहिए।'

'तुम मेरे उस्ताद हो। हमारे शास्तर में लिखा हुआ है, एक अच्छर सिखानेवाला भी गुरू और एक राग सिखानेवाला भी उस्ताद!'

'इस्स! सास्तर-पुरान भी जानती हैं!...मैंने क्या सिखाया? मैं क्या...?'

हीरा हँसकर गुनगुनाने लगी- 'हे-अ-अ-अ- सावना-भादवा के-र...!'

हीरामन अचरज के मारे गूँगा हो गया। ...इस्स! इतना तेज जेहन! हू-ब-हू महुआ घटवारिन!

गाड़ी सीताधार की एक सूखी धारा की उतराई पर गड़गड़ा कर नीचे की ओर उतरी। हीराबाई ने हीरामन का कंधा धर लिया एक हाथ से। बहुत देर तक हीरामन के कंधे पर उसकी उँगलियाँ पड़ी रहीं। हीरामन ने नजर फिरा कर कंधे पर केंद्रित करने की कोशिश की, कई बार। गाड़ी चढ़ाई पर पहुँची तो हीरा की ढीली उँगलियाँ फिर तन गईं।

सामने फारबिसगंज शहर की रोशनी झिलमिला रही है। शहर से कुछ दूर हट कर मेले की रोशनी ...टप्पर में लटके लालटेन की रोशनी में छाया नाचती है आसपास।...डबडबाई आँखों से, हर रोशनी सूरजमुखी फूल की तरह दिखाई पड़ती है।

फारबिसगंज तो हीरामन का घर-दुआर है! न जाने कितनी बार वह फारबिसगंज आया है। मेले की लदनी लादी है। किसी औरत के साथ? हाँ, एक बार। उसकी भाभी जिस साल आई थी गौने में। इसी तरह तिरपाल से गाड़ी को चारों ओर से घेर कर बासा बनाया गया था।

हीरामन अपनी गाड़ी को तिरपाल से घेर रहा है, गाड़ीवान-पट्टी में। सुबह होते ही रौता नौटंकी कंपनी के मैनेजर से बात करके भरती हो जाएगी हीराबाई। परसों मेला खुल रहा है। इस बार मेले में पालचट्टी खूब जमी है। ...बस, एक रात। आज रात-भर हीरामन की गाड़ी में रहेगी वह। ...हीरामन की गाड़ी में नहीं, घर में!

'कहाँ की गाड़ी है? ...कौन, हीरामन! किस मेले से? किस चीज की लदनी है?'

गाँव-समाज के गाड़ीवान, एक-दूसरे को खोज कर, आसपास गाड़ी लगा कर बासा डालते हैं। अपने गाँव के लालमोहर, धुन्नीराम और पलटदास वगैरह गाड़ीवानों के दल को देख कर हीरामन अचकचा गया। उधर पलटदास टप्पर में झाँक कर भड़का। मानो बाघ पर नजर पड़ गई। हीरामन ने इशारे से सभी को चुप किया। फिर गाड़ी की ओर कनखी मार कर फुसफुसाया- 'चुप! कंपनी की औरत है, नौटंकी कंपनी की।'

'कंपनी की -ई-ई-ई!'

एक नहीं, अब चार हीरामन! चारों ने अचरज से एक-दूसरे को देखा। कंपनी नाम में कितना असर है! हीरामन ने लक्ष्य किया, तीनों एक साथ सटक-दम हो गए। लालमोहर ने जरा दूर हट कर बतियाने की इच्छा प्रकट की, इशारे से ही। हीरामन ने टप्पर की ओर मुँह करके कहा, 'होटिल तो नहीं खुला होगा कोई, हलवाई के यहाँ से पक्की ले आवें!'

'हीरामन, जरा इधर सुनो। ...मैं कुछ नहीं खाऊँगी अभी। लो, तुम खा आओ।'

'क्या है, पैसा? इस्स!' ...पैसा देकर हीरामन ने कभी फारबिसगंज में कच्ची-पक्की नहीं खाई। उसके गाँव के इतने गाड़ीवान हैं, किस दिन के लिए? वह छू नहीं सकता पैसा। उसने हीराबाई से कहा, 'बेकार, मेला-बाजार में हुज्जत मत कीजिए। पैसा रखिए।'

मौका पा कर लालमोहर भी टप्पर के करीब आ गया। उसने सलाम करते हुए कहा, 'चार आदमी के भात में दो आदमी खुसी से खा सकते हैं। बासा पर भात चढा हुआ है। हें-हें-हें! हम लोग एकहि गाँव के हैं। गौंवाँ-गिरामिन के रहते होटिल और हलवाई के यहाँ खाएगा हीरामन?'

हीरामन ने लालमोहर का हाथ टीप दिया- 'बेसी भचर-भचर मत बको।'

गाड़ी से चार रस्सी दूर जाते-जाते धुन्नीराम ने अपने कुलबुलाते हुए दिल की बात खोल दी- 'इस्स! तुम भी खूब हो हीरामन! उस साल कंपनी का बाघ, इस बार कंपनी की जनानी!'

हीरामन ने दबी आवाज में कहा, 'भाई रे, यह हम लोगों के मुलुक की जनाना नहीं कि लटपट बोली सुनकर भी चुप रह जाए। एक तो पच्छिम की औरत, तिस पर कंपनी की!'

धुन्नीराम ने अपनी शंका प्रकट की- 'लेकिन कंपनी में तो सुनते हैं पतुरिया रहती है।'

'धत्!' सभी ने एक साथ उसको दुरदुरा दिया, 'कैसा आदमी है! पतुरिया रहेगी कंपनी में भला! देखो इसकी बुद्धि। सुना है, देखा तो नहीं है कभी!'

धुन्नीराम ने अपनी गलती मान ली। पलटदास को बात सूझी- 'हीरामन भाई, जनाना जात अकेली रहेगी गाड़ी पर? कुछ भी हो, जनाना आखिर जनाना ही है। कोई जरूरत ही पड़ जाए!'

यह बात सभी को अच्छी लगी। हीरामन ने कहा, 'बात ठीक है। पलट, तुम लौट जाओ, गाड़ी के पास ही रहना। और देखो, गपशप जरा होशियारी से करना। हाँ!'

हीरामन की देह से अतर-गुलाब की खुशबू निकलती है। हीरामन करमसाँड़ है। उस बार महीनों तक उसकी देह से बघाइन गंध नहीं गई। लालमोहर ने हीरामन की गमछी सूँघ ली- 'ए-ह!'

हीरामन चलते-चलते रुक गया- 'क्या करें लालमोहर भाई, जरा कहो तो! बड़ी जिद्द करती है, कहती है, नौटंकी देखना ही होगा।'

'फोकट में ही?'

'और गाँव नहीं पहुँचेगी यह बात?'

हीरामन बोला, 'नहीं जी! एक रात नौटंकी देख कर जिंदगी-भर बोली-ठोली कौन सुने? ...देसी मुर्गी विलायती चाल!'

धुन्नीराम ने पूछा, 'फोकट में देखने पर भी तुम्हारी भौजाई बात सुनाएगी?'

लालमोहर के बासा के बगल में, एक लकड़ी की दुकान लाद कर आए हुए गाड़ीवानों का बासा है। बासा के मीर-गाड़ीवान मियाँजान बूढ़े ने सफरी गुड़गुड़ी पीते हुए पूछा, 'क्यों भाई, मीनाबाजार की लदनी लाद कर कौन आया है?'

मीनाबाजार! मीनाबाजार तो पतुरिया-पट्टी को कहते हैं। ...क्या बोलता है यह बूढ़ा मियाँ? लालमोहर ने हीरामन के कान में फुसफुसाकर कहा, 'तुम्हारी देह मह-मह-महकती है। सच!'

लहसनवाँ लालमोहर का नौकर-गाड़ीवान है। उम्र में सबसे छोटा है। पहली बार आया है तो क्या? बाबू-बबुआइनों के यहाँ बचपन से नौकरी कर चुका है। वह रह-रहकर वातावरण में कुछ सूँघता है, नाक सिकोड़कर। हीरामन ने देखा, लहसनवाँ का चेहरा तमतमा गया है। कौन आ रहा है धड़धड़ाता हुआ? - 'कौन, पलटदास? क्या है?'

पलटदास आकर खड़ा हो गया चुपचाप। उसका मुँह भी तमतमाया हुआ था।

हीरामन ने पूछा, 'क्या हुआ? बोलते क्यों नहीं?'

क्या जवाब दे पलटदास! हीरामन ने उसको चेतावनी दे दी थी, गपशप होशियारी से करना। वह चुपचाप गाड़ी की आसनी पर जाकर बैठ गया, हीरामन की जगह पर।

हीराबाई ने पूछा, 'तुम भी हीरामन के साथ हो?'

पलटदास ने गरदन हिलाकर हामी भरी।

हीराबाई फिर लेट गई। ...चेहरा-मोहरा और बोली-बानी देख-सुन कर, पलटदास का कलेजा काँपने लगा, न जाने क्यों। हाँ! रामलीला में सिया सुकुमारी इसी तरह थकी लेटी हुई थी। जै! सियावर रामचंद्र की जै! ...पलटदास के मन में जै-जैकार होने लगा। वह दास-वैस्नव है, कीर्तनिया है। थकी हुई सीता महारानी के चरण टीपने की इच्छा प्रकट की उसने, हाथ की उँगलियों के इशारे से, मानो हारमोनियम की पटरियों पर नचा रहा हो। हीराबाई तमक कर बैठ गई- 'अरे, पागल है क्या? जाओ, भागो!...'

पलटदास को लगा, गुस्साई हुई कंपनी की औरत की आँखों से चिनगारी निकल रही है- छटक-छटक! वह भागा।

पलटदास क्या जवाब दे! वह मेला से भी भागने का उपाय सोच रहा है। बोला, 'कुछ नहीं। हमको व्यापारी मिल गया। अभी ही टीसन जाकर माल लादना है। भात में तो अभी देर हैं। मैं लौट आता हूँ तब तक।'

खाते समय धुन्नीराम और लहसनवाँ ने पलटदास की टोकरी-भर निंदा की। छोटा आदमी है। कमीना है। पैसे-पैसे का हिसाब जोड़ता है। खाने-पीने के बाद लालमोहर के दल ने अपना बासा तोड़ दिया। धुन्नी और लहसनवाँ गाड़ी जोत कर हीरामन के बासा पर चले, गाड़ी की लीक धर कर। हीरामन ने चलते-चलते रुककर, लालमोहर से कहा, 'जरा मेरे इस कंधे को सूँघो तो। सूँघकर देखो न?'

लालमोहर ने कंधा सूँघकर आँखें मूँद लीं। मुँह से अस्फुट शब्द निकला- 'ए-ह!'

हीरामन ने कहा, 'जरा-सा हाथ रखने पर इतनी खुशबू! ...समझे!'

लालमोहर ने हीरामन का हाथ पकड़ लिया-'कंधे पर हाथ रखा था, सच? ...सुनो हीरामन, नौटंकी देखने का ऐसा मौका फिर कभी हाथ नहीं लगेगा। हाँ!'

'तुम भी देखोगे?' लालमोहर की बत्तीसी चौराहे की रोशनी में झिलमिला उठी।

बासा पर पहुँचकर हीरामन ने देखा, टप्पर के पास खड़ा बतिया रहा है कोई, हीराबाई से। धुन्नी और लहसनवाँ ने एक ही साथ कहा, 'कहाँ रह गए पीछे? बहुत देर से खोज रही है कंपनी...!'

हीरामन ने टप्पर के पास जाकर देखा– अरे, यह तो वही बक्सा ढोनेवाला नौकर, जो चंपानगर मेले में हीराबाई को गाड़ी पर बिठाकर अँधेरे में गायब हो गया था।

‘आ गए हीरामन! अच्छी बात, इधर आओ। ...यह लो अपना भाड़ा और यह लो अपनी दच्छिना! पच्चीस–पच्चीस, पचास।’

हीरामन को लगा, किसी ने आसमान से धकेलकर धरती पर गिरा दिया। किसी ने क्यों, इस बक्सा ढोनेवाले आदमी ने। कहाँ से आ गया? उसकी जीभ पर आई हुई बात जीभ पर ही रह गई ...इस्स! दच्छिना! वह चुपचाप खड़ा रहा।

हीराबाई बोली, ‘लो पकड़ो! और सुनो, कल सुबह रौता कंपनी में आकर मुझसे भेंट करना। पास बनवा दूँगी। ...बोलते क्यों नहीं?’

लालमोहर ने कहा, ‘इलाम–बकसीस दे रही है मालकिन, ले लो हीरामन!’

हीरामन ने कटकर लालमोहर की ओर देखा। ...बोलने का जरा भी ढंग नहीं इस लालमोहरा को।’

धुन्नीराम की स्वगतोक्ति सभी ने सुनी, हीराबाई ने भी– ‘गाड़ी–बैल छोड़कर नौटंकी कैसे देख सकता है कोई गाड़ीवान, मेले में?’

हीरामन ने रुपया लेते हुए कहा, ‘क्या बोलेंगे!’ उसने हँसने की चेष्टा की। कंपनी की औरत कंपनी में जा रही है। हीरामन का क्या! बक्सा ढोनेवाला रास्ता दिखाता हुआ आगे बढ़ा– ‘इधर से।’

हीराबाई जाते–जाते रुक गई। हीरामन के बैलों को संबोधित करके बोली, ‘अच्छा, मैं चली भैयन।’

बैलों ने, भैयन शब्द पर कान हिलाए।

‘? ? ..!’

‘भा–इ–यो, आज रात! दि रौता संगीत कंपनी के स्टेज पर! गुलबदन देखिए, गुलबदन! आपको यह जान कर खुशी होगी कि मथुरामोहन कंपनी की मशहूर एक्ट्रेस मिस हीरादेवी, जिसकी एक–एक अदा पर हजार जान फिदा हैं, इस बार हमारी कंपनी में आ गई हैं। याद रखिए। आज की रात। मिस हीरादेवी गुलबदन...!’

नौटंकीवालों के इस एलान से मेले की हर पट्टी में सरगर्मी फैल रही है। ...हीराबाई? मिस हीरादेवी? लैला, गुलबदन...? फिलिम एक्ट्रेस को मात करती है।

तेरी बाँकी अदा पर मैं खुद हूँ फिदा,

तेरी चाहत को दिलबर बयाँ क्या करूँ!
यही ख्वाहिश है कि इ-इ-इ तू मुझको देखा करे
और दिलोजान मैं तुमको देखा करूँ।

...किर्र-र्र-र्र-र्र ...कडड़ड़ड़डड़र्र-ई-घन-घन-धड़ाम। हर आदमी का दिल नगाड़ा हो गया है।

लालमोहर दौड़ता-हाँफता बासा पर आया- 'ऐ, ऐ हीरामन, यहाँ क्या बैठे हो, चलकर देखो जै-जैकार हो रहा है! मय बाजा-गाजा, छापी-फाहरम के साथ हीराबाई की जै-जै कर रहा है।'

हीरामन हड़बड़ा कर उठा। लहसनवाँ ने कहा, 'धुन्नी काका, तुम बासा पर रहो, मैं भी देख आऊँ।'

धुन्नी की बात कौन सुनता है। तीनों जन नौटंकी कंपनी की एलानिया पार्टी के पीछे-पीछे चलने लगे। हर नुक्कड़ पर रुककर, बाजा बंद कर के एलान किया जाना है। एलान के हर शब्द पर हीरामन पुलक उठता है। हीराबाई का नाम, नाम के साथ अदा-फिदा वगैरह सुनकर उसने लालमोहर की पीठ थपथपा दी- 'धन्न है, धन्न है! है या नहीं?'

लालमोहर ने कहा, 'अब बोलो! अब भी नौटंकी नहीं देखोगे?' सुबह से ही धुन्नीराम और लालमोहर समझा रहे थे, समझा कर हार चुके थे-'कंपनी में जा कर भेंट कर आओ। जाते-जाते पुरसिस कर गई है।'

लेकिन हीरामन की बस एक बात- 'धत्त, कौन भेंट करने जाए! कंपनी की औरत, कंपनी में गई। अब उससे क्या लेना-देना! चीन्हेगी भी नहीं!'

वह मन-ही-मन रूठा हुआ था। एलान सुनने के बाद उसने लालमोहर से कहा, 'जरूर देखना चाहिए, क्यों लालमोहर?'

दोनों आपस में सलाह करके रौता कंपनी की ओर चले। खेमे के पास पहुँच कर हीरामन ने लालमोहर को इशारा किया, पूछताछ करने का भार लालमोहर के सिर। लालमोहर कचराही बोलना जानता है। लालमोहर ने एक काले कोटवाले से कहा, 'बाबू साहेब, जरा सुनिए तो!'

काले कोटवाले ने नाक-भौं चढ़ा कर कहा- 'क्या है? इधर क्यों?'

लालमोहर की कचराही बोली गड़बड़ा गई- तेवर देख कर बोला, 'गुलगुल ..नहीं-नहीं ...बुल-बुल ...नहीं ...।'

हीरामन ने झट-से सम्हाल दिया- 'हीरादेवी किधर रहती है, बता सकते हैं?'

उस आदमी की आँखें हठात लाल हो गई। सामने खड़े नेपाली सिपाही को पुकार कर कहा, 'इन लोगों को क्यों आने दिया इधर?'

'हीरामन!' ...वही फेनूगिलासी आवाज किधर से आई? खेमे के परदे को हटा कर हीराबाई ने बुलाया- 'यहाँ आ जाओ, अंदर! ...देखो, बहादुर! इसको पहचान लो। यह मेरा हीरामन है। समझे?'

नेपाली दरबान हीरामन की ओर देख कर जरा मुस्कराया और चला गया। काले कोटवाले से जा कर कहा, 'हीराबाई का आदमी है। नहीं रोकने बोला!'

लालमोहर पान ले आया नेपाली दरबान के लिए- 'खाया जाए!'

'इस्स! एक नहीं, पाँच पास। चारों अठनिया! बोली कि जब तक मेले में हो, रोज रात में आ कर देखना। सबका खयाल रखती है। बोली कि तुम्हारे और साथी है, सभी के लिए पास ले जाओ। कंपनी की औरतों की बात निराली होती है! है या नहीं?''

लालमोहर ने लाल कागज के टुकड़ों को छू कर देखा- 'पा-स! वाह रे हीरामन भाई! ...लेकिन पाँच पास ले कर क्या होगा? पलटदास तो फिर पलट कर आया ही नहीं है अभी तक।'

हीरामन ने कहा, 'जाने दो अभागे को। तकदीर में लिखा नहीं। ...हाँ, पहले गुरूकसम खानी होगी सभी को, कि गाँव-घर में यह बात एक पंछी भी न जान पाए।'

लालमोहर ने उत्तेजित हो कर कहा, 'कौन साला बोलेगा, गाँव में जा कर? पलटा ने अगर बदनामी की तो दूसरी बार से फिर साथ नहीं लाऊँगा।'

हीरामन ने अपनी थैली आज हीराबाई के जिम्मे रख दी है। मेले का क्या ठिकाना! किस्म-किस्म के पाकिटकाट लोग हर साल आते हैं। अपने साथी-संगियों का भी क्या भरोसा! हीराबाई मान गई। हीरामन के कपड़े की काली थैली को उसने अपने चमड़े के बक्स में बंद कर दिया। बक्से के ऊपर भी कपड़े का खोल और अंदर भी झलमल रेशमी अस्तर! मन का मान-अभिमान दूर हो गया।

लालमोहर और धुन्नीराम ने मिल कर हीरामन की बुद्धि की तारीफ की, उसके भाग्य को सराहा बार-बार। उसके भाई और भाभी की निंदा की, दबी जबान से। हीरामन के जैसा हीरा भाई मिला है, इसीलिए! कोई दूसरा भाई होता तो...।

लहसनवाँ का मुँह लटका हुआ है। एलान सुनते-सुनते न जाने कहाँ चला गया कि घड़ी-भर साँझ होने के बाद लौटा है। लालमोहर ने एक मालिकाना झिड़की दी है, गाली के साथ- 'सोहदा कहीं का!'

धुन्नीराम ने चूल्हे पर खिचड़ी च्ढ़ाते हुए कहा, 'पहले यह फैसला कर लो कि गाड़ी के पास कौन रहेगा!'

'रहेगा कौन, यह लहसनवाँ कहाँ जाएगा?'

लहसनवाँ रो पड़ा- 'ऐ-ए-ए मालिक, हाथ जोड़ते हैं। एक्को झलक! बस, एक झलक!'

हीरामन ने उदारतापूर्वक कहा, 'अच्छा-अच्छा, एक झलक क्यों, एक घंटा देखना। मैं आ जाऊँगा।'

नौटंकी शुरू होने के दो घंटे पहले ही नगाड़ा बजना शुरू हो जाता है। और नगाड़ा शुरू होते ही लोग पतिंगों की तरह टूटने लगते हैं। टिकटघर के पास भीड़ देख कर हीरामन को बड़ी हँसी आई- 'लालमोहर, उधर देख, कैसी धक्कमधुक्की कर रहे हैं लोग!'

'हीरामन भाय!'

'कौन, पलटदास! कहाँ की लदनी लाद आए?' लालमोहर ने पराए गाँव के आदमी की तरह पूछा।

पलटदास ने हाथ मलते हुए माफी माँगी- 'कसूरबार हैं, जो सजा दो तुम लोग, सब मंजूर है। लेकिन सच्ची बात कहें कि सिया सुकुमारी...।'

हीरामन के मन का पुरइन नगाड़े के ताल पर विकसित हो चुका है। बोला, 'देखो पलटा, यह मत समझना कि गाँव-घर की जनाना है। देखो, तुम्हारे लिए भी पास दिया है, पास ले लो अपना, तमासा देखो।'

लालमोहर ने कहा, 'लेकिन एक सर्त पर पास मिलेगा। बीच-बीच में लहसनवाँ को भी...।'

पलटदास को कुछ बताने की जरूरत नहीं। वह लहसनवाँ से बातचीत कर आया है अभी।

लालमोहर ने दूसरी शर्त सामने रखी- 'गाँव में अगर यह बात मालूम हुई किसी तरह...!'

'राम-राम!' दाँत से जीभ को काटते हुए कहा पलटदास ने।

पलटदास ने बताया- 'अठनिया फाटक इधर है!' फाटक पर खड़े दरबान ने हाथ से पास ले कर उनके चेहरे को बारी-बारी से देखा, बोला, 'यह तो पास है। कहाँ से मिला?'

अब लालमोहर की कचराही बोली सुने कोई! उसके तेवर देखकर दरबान घबरा गया– 'मिलेगा कहाँ से? अपनी कंपनी से पूछ लीजिए जाकर। चार ही नहीं, देखिए एक और है।' जेब से पाँचवा पास निकाल कर दिखाया लालमोहर ने।

एक रुपया वाले फाटक पर नेपाली दरबान खड़ा था। हीरामन ने पुकार कर कहा, 'ए सिपाही दाजू, सुबह को ही पहचनवा दिया और अभी भूल गए?'

नेपाली दरबान बोला, 'हीराबाई का आदमी है सब। जाने दो। पास हैं तो फिर काहे को रोकता है?'

अठनिया दर्जा!

तीनों ने 'कपड़घर' को अंदर से पहली बार देखा। सामने कुरसी–बेंचवाले दर्जे हैं। परदे पर राम–बन–गमन की तसवीर है। पलटदास पहचान गया। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया, परदे पर अंकित रामसिया सुकुमारी और लखनलला को। 'जै हो, जै हो!' पलटदास की आँखें भर आई।

हीरामन ने कहा, 'लालमोहर, छापी सभी खड़े हैं या चल रहे हैं?'

लालमोहर अपने बगल में बैठे दर्शकों से जान–पहचान कर चुका है। उसने कहा, 'खेला अभी परदा के भीतर है। अभी जमिनका दे रहा है, लोग जमाने के लिए।'

पलटदास ढोलक बजाना जानता है, इसलिए नगाड़े के ताल पर गरदन हिलाता है और दियासलाई पर ताल काटता है। बीड़ी आदान–प्रदान करके हीरामन ने भी एकाध जान–पहचान कर ली। लालमोहर के परिचित आदमी ने चादर से देह ढकते हुए कहा, 'नाच शुरू होने में अभी देर है, तब तक एक नींद ले लें। ...सब दर्जा से अच्छा अठनिया दर्जा। सबसे पीछे सबसे ऊँची जगह पर है। जमीन पर गरम पुआल! हे–हे! कुरसी–बेंच पर बैठ कर इस सरदी के मौसम में तमासा देखनेवाले अभी घुच–घुच कर उठेंगे चाह पीने।'

उस आदमी ने अपने संगी से कहा, 'खेला शुरू होने पर जगा देना। नहीं–नहीं, खेला शुरू होने पर नहीं, हिरिया जब स्टेज पर उतरे, हमको जगा देना।'

हीरामन के कलेजे में जरा आँच लगी। ...हिरिया! बड़ा लटपटिया आदमी मालूम पड़ता है। उसने लालमोहर को आँख के इशारे से कहा, 'इस आदमी से बतियाने की जरूरत नहीं।'

घन–घन–घन–धड़ाम! परदा उठ गया। हे–ए, हे–ए, हीराबाई शुरू में ही उतर गई स्टेज पर! कपड़घर खचमखच भर गया है। हीरामन का मुँह अचरज

में खुल गया। लालमोहर को न जाने क्यों ऐसी हँसी आ रही है। हीराबाई के गीत के हर पद पर वह हँसता है, बेवजह।

गुलबदन दरबार लगा कर बैठी है। एलान कर रही है, 'जो आदमी तख्तहजारा बना कर ला देगा, मुँहमाँगी चीज इनाम में दी जाएगी। ...अजी, है कोई ऐसा फनकार, तो हो जाए तैयार, बनाकर लाए तख्तहजारा-आ!' किड़किड़-किर्रि-! अलबत्त नाचती है!

क्या गला है! मालूम है, यह आदमी कहता है कि हीराबाई पान-बीड़ी, सिगरेट-जर्दा कुछ नहीं खाती! ठीक कहता है। बड़ी नेमवाली रंडी है। कौन कहता है कि रंडी है! दाँत में मिस्सी कहाँ है। पौडर से दाँत धो लेती होगी। हरगिज नहीं। कौन आदमी है, बात की बेबात करता है! कंपनी की औरत को पतुरिया कहता है! तुमको बात क्यों लगी? कौन है रंडी का भड़वा? मारो साले को! मारो! तेरी...।

हो-हल्ले के बीच, हीरामन की आवाज कपड़घर को फाड़ रही है- 'आओ, एक-एक की गरदन उतार लेंगे।'

लालमोहर दुलाली से पटापट पीटता जा रहा है सामने के लोगों को। पलटदास एक आदमी की छाती पर सवार है- 'साला, सिया सुकुमारी को गाली देता है, सो भी मुसलमान होकर?'

धुन्नीराम शुरू से ही चुप था। मारपीट शुरू होते ही वह कपड़घर से निकल कर बाहर भागा।

काले कोटवाले नौटंकी के मैनेजर नेपाली सिपाही के साथ दौड़े आए। दारोगा साहब ने हंटर से पीट-पाट शुरू की। हंटर खा कर लालमोहर तिलमिला उठा, कचराही बोली में भाषण देने लगा- 'दारोगा साहब, मारते हैं, मारिए। कोई हर्ज नहीं। लेकिन यह पास देख लीजिए, एक पास पाकिट में भी हैं। देख सकते हैं हुजूर। टिकट नहीं, पास! ...तब हम लोगों के सामने कंपनी की औरत को कोई बुरी बात करे तो कैसे छोड़ देंगे?'

कंपनी के मैनेजर की समझ में आ गई सारी बात। उसने दारोगा को समझाया- 'हुजूर, मैं समझ गया। यह सारी बदमाशी मथुरामोहन कंपनीवालों की है। तमाशे में झगड़ा खड़ा करके कंपनी को बदनाम ...नहीं हुजूर, इन लोगों को छोड़ दीजिए, हीराबाई के आदमी हैं। बेचारी की जान खतरे में हैं। हुजूर से कहा था न!'

हीराबाई का नाम सुनते ही दारोगा ने तीनों को छोड़ दिया। लेकिन तीनों की दुआली छीन ली गई। मैनेजर ने तीनों को एक रुपए वाले दरजे में

कुरसी पर बिठाया– 'आप लोग यहीं बैठिए। पान भिजवा देता हूँ।' कपड़घर शांत हुआ और हीराबाई स्टेज पर लौट आई।

नगाड़ा फिर घनघना उठा।

थोड़ी देर बाद तीनों को एक ही साथ धुन्नीराम का खयाल हुआ– अरे, धुन्नीराम कहाँ गया?'

'मालिक, ओ मालिक!' लहसनवाँ कपड़घर से बाहर चिल्लाकर पुकार रहा है, 'ओ लालमोहर मा–लि–क...!'

लालमोहर ने तारस्वर में जवाब दिया– 'इधर से, उधर से! एकटकिया फाटक से।' सभी दर्शकों ने लालमोहर की ओर मुड़कर देखा। लहसनवाँ को नेपाली सिपाही लालमोहर के पास ले आया। लालमोहर ने जेब से पास निकालकर दिखा दिया। लहसनवाँ ने आते ही पूछा, 'मालिक, कौन आदमी क्या बोल रहा था? बोलिए तो जरा। चेहरा दिखला दीजिए, उसकी एक झलक!'

लोगों ने लहसनवाँ की चौड़ी और सपाट छाती देखी। जाड़े के मौसम में भी खाली देह! ...चेले–चाटी के साथ हैं ये लोग! लालमोहर ने लहसनवाँ को शांत किया।

तीनों–चारों से मत पूछे कोई, नौटंकी में क्या देखा। किस्सा कैसे याद रहे! हीरामन को लगता था, हीराबाई शुरू से ही उसी की ओर टकटकी लगाकर देख रही है, गा रही है, नाच रही है।

लालमोहर को लगता था, हीराबाई उसी की ओर देखती है। वह समझ गई है, हीरामन से भी ज्यादा पावरवाला आदमी है लालमोहर! पलटदास किस्सा समझता है। ...किस्सा और क्या होगा, रमैन की ही बात। वही राम, वही सीता, वही लखनलाल और वही रावन! सिया सुकुमारी को राम जी से छीनने के लिए रावन तरह–तरह का रूप धर कर आता है। राम और सीता भी रूप बदल लेते हैं। यहाँ भी तख्त–हजारा बनानेवाला माली का बेटा राम है। गुलबदन मियां सुकुमारी है। माली के लड़के का दोस्त लखनलला है और सुलतान है रावन। धुन्नीराम को बुखार है तेज! लहसनवाँ को सबसे अच्छा जोकर का पार्ट लगा है ...चिरैया तोंहके लेके ना जइवै नरहट के बजरिया! वह उस जोकर से दोस्ती लगाना चाहता है। नहीं लगावेगा दोस्ती, जोकर साहब?

हीरामन को एक गीत की आधी कड़ी हाथ लगी है– 'मारे गए गुलफाम!'

कौन था यह गुलफाम? हीराबाई रोती हुई गा रही थी– 'अजी हाँ, मारे गए गुलफाम!' टिड़िड़िड़ि... बेचारा गुलफाम!

तीनों को दुआली वापस देते हुए पुलिस के सिपाही ने कहा, 'लाठी-दुआली लेकर नाच देखने आते हो?'

दूसरे दिन मेले-भर में यह बात फैल गई- मथुरामोहन कंपनी से भाग कर आई है हीराबाई, इसलिए इस बार मथुरामोहन कंपनी नहीं आई हैं। ... उसके गुंडे आए हैं। हीराबाई भी कम नहीं। बड़ी खेलाड़ औरत है। तेरह-तेरह देहाती लठैत पाल रही है। ...वाह मेरी जान भी कहे तो कोई! मजाल है!

दस दिन... दिन-रात...! दिन-भर भाड़ा ढोता हीरामन। शाम होते ही नौटंकी का नगाड़ा बजने लगता। नगाड़े की आवाज सुनते ही हीराबाई की पुकार कानों के पास मँडराने लगती- भैया ...मीता ...हीरामन ...उस्ताद गुरू जी! हमेशा कोई-न-कोई बाजा उसके मन के कोने में बजता रहता, दिन-भर। कभी हारमोनियम, कभी नगाड़ा, कभी ढोलक और कभी हीराबाई की पैजनी। उन्हीं साजों की गत पर हीरामन उठता-बैठता, चलता-फिरता। नौटंकी कंपनी के मैनेजर से ले कर परदा खींचनेवाले तक उसको पहचानते हैं। ...हीराबाई का आदमी है।

पलटदास हर रात नौटंकी शुरू होने के समय श्रद्धापूर्वक स्टेज को नमस्कार करता, हाथ जोड़ कर। लालमोहर, एक दिन अपनी कचराही बोली सुनाने गया था हीराबाई को। हीराबाई ने पहचाना ही नहीं। तब से उसका दिल छोटा हो गया है। उसका नौकर लहसनवाँ उसके हाथ से निकल गया है, नौटंकी कंपनी में भर्ती हो गया है। जोकर से उसकी दोस्ती हो गई है। दिन-भर पानी भरता है, कपड़े धोता है। कहता है, गाँव में क्या है जो जाएँगे! लालमोहर उदास रहता है। धुन्नीराम घर चला गया है, बीमार होकर।

हीरामन आज सुबह से तीन बार लदनी लादकर स्टेशन आ चुका है। आज न जाने क्यों उसको अपनी भौजाई की याद आ रही है। ...धुन्नीराम ने कुछ कह तो नहीं दिया है, बुखार की झोंक में! यहीं कितना अटर-पटर बक रहा था- गुलबदन, तख्त-हजारा! लहसनवाँ मौज में है। दिन-भर हीराबाई को देखता होगा। कल कह रहा था, हीरामन मालिक, तुम्हारे अकबाल से खूब मौज में हूँ। हीराबाई की साड़ी धोने के बाद कठौते का पानी अत्तरगुलाब हो जाता है। उसमें अपनी गमछी डुबा कर छोड़ देता हूँ। लो, सूँघोगे? हर रात, किसी-न-किसी के मुँह से सुनता है वह- हीराबाई रंडी है। कितने लोगों से लड़े वह! बिना देखे ही लोग कैसे कोई बात बोलते हैं! राजा को भी लोग पीठ-पीछे गाली देते हैं! आज वह हीराबाई से मिल कर कहेगा, नौटंकी कंपनी में रहने से बहुत बदनाम करते हैं लोग। सरकस कंपनी में क्यों नही काम करती? सबके सामने नाचती

है, हीरामन का कलेजा दप-दप जलता रहता है उस समय। सरकस कंपनी में बाघ को ...उसके पास जाने की हिम्मत कौन करेगा! सुरक्षित रहेगी हीराबाई! किधर की गाड़ी आ रही है?

'हीरामन, ए हीरामन भाय!' लालमोहर की बोली सुनकर हीरामन ने गरदन मोड़कर देखा।

'...क्या लादकर लाया है लालमोहर?'

'तुमको ढूँढ़ रही है हीराबाई, इस्टिसन पर। जा रही है।' एक ही साँस में सुना गया। लालमोहर की गाड़ी पर ही आई है मेले से।

'जा रही है? कहाँ? हीराबाई रेलगाड़ी से जा रही है?'

हीरामन ने गाड़ी खोल दी। मालगुदाम के चौकीदार से कहा, 'भैया, जरा गाड़ी-बैल देखते रहिए। आ रहे हैं।'

'उस्ताद!' जनाना मुसाफिरखाने के फाटक के पास हीराबाई ओढ़नी से मुँह-हाथ ढककर खड़ी थी। थैली बढ़ाती हुई बोली, 'लो! हे भगवान! भेंट हो गई, चलो, मैं तो उम्मीद खो चुकी थी। तुमसे अब भेंट नहीं हो सकेगी। मैं जा रही हूँ गुरू जी!'

बक्सा ढोनेवाला आदमी आज कोट-पतलून पहन कर बाबूसाहब बन गया है। मालिकों की तरह कुलियों को हुकम दे रहा है- 'जनाना दर्जा में चढ़ाना। अच्छा?'

हीरामन हाथ में थैली लेकर चुपचाप खड़ा रहा। कुरते के अंदर से थैली निकालकर दी है हीराबाई ने। चिड़िया की देह की तरह गर्म है थैली।

'गाड़ी आ रही है।' बक्सा ढोनेवाले ने मुँह बनाते हुए हीराबाई की ओर देखा। उसके चेहरे का भाव स्पष्ट है- इतना ज्यादा क्या है?

हीराबाई चंचल हो गई। बोली, 'हीरामन, इधर आओ, अंदर। मैं फिर लौटकर जा रही हूँ मथुरामोहन कंपनी में। अपने देश की कंपनी है। ...वनैली मेला आओगे न?'

हीराबाई ने हीरामन के कंधे पर हाथ रखा, ...इस बार दाहिने कंधे पर। फिर अपनी थैली से रूपया निकालते हुए बोली, 'एक गरम चादर खरीद लेना...।'

हीरामन की बोली फूटी, इतनी देर के बाद- 'इस्स! हरदम रूपैया-पैसा! रखिए रूपैया! क्या करेंगे चादर?'

हीराबाई का हाथ रुक गया। उसने हीरामन के चेहरे को गौर से देखा। फिर बोली, 'तुम्हारा जी बहुत छोटा हो गया है। क्यों मीता? महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है गुरू जी!' गला भर आया हीराबाई का।

बक्सा ढोनेवाले ने बाहर से आवाज दी- 'गाड़ी आ गई।' हीरामन कमरे से बाहर निकल आया। बक्सा ढोनेवाले ने नौटंकी के जोकर जैसा मुँह बनाकर कहा, 'लाटफारम से बाहर भागो। बिना टिकट के पकड़ेगा तो तीन महीने की हवा...।'

हीरामन चुपचाप फाटक से बाहर जाकर खड़ा हो गया। ...टीसन की बात, रेलवे का राज! नहीं तो इस बक्सा ढोनेवाले का मुँह सीधा कर देता हीरामन।

हीराबाई ठीक सामनेवाली कोठरी में चढ़ी। इस्स! इतना टान! गाड़ी में बैठकर भी हीरामन की ओर देख रही है, टुकुर-टुकुर। लालमोहर को देखकर जी जल उठता है, हमेशा पीछे-पीछे, हरदम हिस्सादारी सूझती है।

गाड़ी ने सीटी दी। हीरामन को लगा, उसके अंदर से कोई आवाज निकलकर सीटी के साथ ऊपर की ओर चली गई- कू-ऊ-ऊ! इ-स्स! -छी-ई-ई-छक्क! गाड़ी हिली। हीरामन ने अपने दाहिने पैर के अँगूठे को बाएँ पैर की एड़ी से कुचल लिया। कलेजे की धड़कन ठीक हो गई। हीराबाई हाथ की बैंगनी साफी से चेहरा पोंछती है। साफी हिलाकर इशारा करती है ...अब जाओ। आखिरी डिब्बा गुजरा, प्लेटफार्म खाली सब खाली ...खोखले ...मालगाड़ी के डिब्बे! दुनिया ही खाली हो गई मानो! हीरामन अपनी गाड़ी के पास लौट आया।

हीरामन ने लालमोहर से पूछा, 'तुम कब तक लौट रहे हो गाँव?'

लालमोहर बोला, 'अभी गाँव जाकर क्या करेंगे? यहाँ तो भाड़ा कमाने का मौका है! हीराबाई चली गई, मेला अब टूटेगा।'

'अच्छी बात। कोई समाद देना है घर?'

लालमोहर ने हीरामन को समझाने की कोशिश की। लेकिन हीरामन ने अपनी गाड़ी गाँव की ओर जानेवाली सड़क की ओर मोड़ दी। अब मेले में क्या धरा है! खोखला मेला!

रेलवे लाइन की बगल से बैलगाड़ी की कच्ची सड़क गई है दूर तक। हीरामन कभी रेल पर नहीं चढ़ा है। उसके मन में फिर पुरानी लालसा झाँकी, रेलगाड़ी पर सवार होकर, गीत गाते हुए जगरनाथ-धाम जाने की लालसा। उलट कर अपने खाली टप्पर की ओर देखने की हिम्मत नहीं होती है। पीठ में आज

फार्म – 4

समाचार पत्र पंजीयन केन्द्रीय कानून 1956 के आठवें नियम के अन्तर्गत **'मधुराक्षर' त्रैमासिक पत्रिका** से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण–

1. प्रकाशन का स्थान :
जिला कारागार के पीछे, 9 ब, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

2. प्रकाशन की आवर्तिता : त्रैमासिक

3. प्रकाशक/मुद्रक का नाम : बृजेंद्र अग्निहोत्री

4. राष्ट्रीयता : भारतीय

5. संपादक का नाम : बृजेंद्र अग्निहोत्री

6. राष्ट्रीयता : भारतीय

7. पूरा पता :
जिला कारागार के पीछे, 9 ब, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

8. कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता :
स्वत्वाधिकारी बृजेंद्र अग्निहोत्री

*"मैं **बृजेंद्र अग्निहोत्री** घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं।"*

(बृजेंद्र अग्निहोत्री)

भी गुदगुदी लगती है। आज भी रह-रह कर चंपा का फूल खिल उठता है, उसकी गाड़ी में। एक गीत की टूटी कड़ी पर नगाड़े का ताल कट जाता है, बार-बार!

उसने उलटकर देखा, बोरे भी नहीं, बाँस भी नहीं, बाघ भी नहीं- परी ...देवी ...मीता ... हीरादेवी ...महुआ घटवारिन- कोई नहीं। मरे हुए मुहर्तों की गूँगी आवाजें मुखर होना चाहती है। हीरामन के होंठ हिल रहे हैं। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है- कंपनी की औरत की लदनी...।

हीरामन ने हठात अपने दोनों बैलों को झिड़की दी, दुआली से मारते हुए बोला, 'रेलवे लाइन की ओर उलट-उलट कर क्या देखते हो?' दोनों बैलों ने कदम खोलकर चाल पकड़ी।

हीरामन गुनगुनाने लगा- 'अजी हाँ, मारे गए गुलफाम...!'

कहानी

ग्रीनकार्ड

डॉ. कृष्णा खत्री

सिन्हा साहब कॉलेज प्रिंसिपल थे, अभी हाल ही में रिटायर हुए हैं। उनकी जीवनसंगिनी आज से चार साल पहले ही उनका साथ छोड़ गई। औलाद के नाम पे इकलौती बेटी नेहा, जिसकी पांच साल पहले शादी हो गई थी। पांच साल से ही अपने पति के साथ अमेरिका में है। बस एक बार आई थी, माँ के न रहने पर। उसके बाद तो उसने अपनी शक्ल भी नहीं दिखाई। वह खुद भी इंजीनियर है, और पति नीरज गाइनोकोलोजिस्ट। दो बच्चे हैं, दोनों बेटियां। एक साढ़े तीन साल की है और दूसरी दो साल की। अपनी गृहस्थी व कामकाज में रमी हुई है। सो पिता के पास आने की तो फुर्सत नहीं है। फिलहाल... हफ्ते में दो बार कर लेती है। वीडियों कॉल के कारण लगता नहीं... पास में नहीं है। फिर सिन्हा साहब खुद भी अपने कॉलेज में बिजी रहते हैं। और चंदू, उनका पुराना नौकर जो अपने ही शहर से बल्कि अपने घर से लाये थे। उनका पुराना नौकर किसना, जो अक्सर उनसे कहता रहता- 'बिट्टू बाबू, हमारे चंदू को अपने साथ ले जाओ, कुछ सीख लेगा। यहां तो दिन भर गोटी खेलता रहता है।' तब से उनके साथ ही रहता है। दोनों में एक प्रकार का अपनापा है। उसे उन्होंने पढ़ना-लिखना भी सिखाया है। उसकी पगार बैंक में जमा करते हैं। यानी कि चंदू और उसका पिता दोनों खुश हैं, और सिन्हासाहब भी। इस तरह पत्नी के बाद भी उन्हें कोई परेशानी महसूस नहीं हुई। फिर भी अकेले तो पड़ ही गये थे। यह सब खलता तो था ही।

नेहा अक्सर कहती रहती- 'पापा, अब सर्विस छोड़कर यहां आ जाइये, आपकी चिंता लगी रहती है।'

'नहीं बच्चा, मेरी चिंता मत करो। आय एम फिट एंड फाइन। ...और फिर अब तीन साल की सर्विस ही तो बची है। मेरी देखभाल करने, देखने व संभालने के लिये चंदू तो है ही। वह पक्का है अपने काम का, हर वक्त डंडा लेके खड़ा रहता है। एक दिन मैं लेट हो गया... तो पता है उसने क्या किया-

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

मुझे तो कुछ नहीं कहा, खाना भी खिला दिया, मगर बोला एक शब्द भी नहीं। और गुस्से में खुद ने खाना भी नहीं खाया। यह तो मुझे रात के बारह बजे पता चला, तो बड़ी मुश्किल से मनाकर खाना खिलाया। और मुझे वादा करना पड़ा कि आइंदा ऐसा नहीं होगा। ...उसका भी कोई नहीं है! किसना काका भी चल बसे हैं। अब वह मेरी जिम्मेदारी है, फॅमली का हिस्सा है।'

'फिर भी पापा छोड़ दो ना सर्विस!'

'अरे नहीं प्रिसेंस, अभी नहीं रिटायरमेंट के बाद सोचूंगा! बल्कि जैसा तू कहेगी।'

बात आई गई हो गई। बाद में फिर एक बार उनके रिटायरमेंट पे आई थी, देखा- चन्दू सब अच्छा ही कर रहा है। वैसे वह लगभग सिन्हा साहब के पास बाारह साल से है। फिर भी वह चाहती है कि उसके पापा अब उसके साथ रहे। इस बारे में अपने पति नीरज से बात की तो उसने ना तो नहीं कहा, मगर भाव में अनमनापन था, जरा भी रजामंदी नहीं थी। फिर इतना ही कहा- 'यहां उनका मन लगेगा ? फिर मेरे पैरेन्ट्स आयेंगे तो वे ऑक्वर्ड फील करेंगे।'

'तो क्या तुम चाहते हो कि मैं अपने पापा को न देखूं... और फिर उनका है भी कौन ? क्यूं... तुम्हारे पैरेन्टस आ सकते हैं, तो मेरे पापा क्यूं नहीं ? तुम्हारे तो दो भाई और हैं... मेरे पापा की तो मैं अकेली संतान हूँ!'

'नेहा मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा, बस अपना व्यू बताया है।'

'मैं खूब समझती हूँ, सफाई देने की कोई जरूरत नहीं है।'

'लेकिन तुम बात का बतंगड़ क्यूं बना रही हो ? मैंने तो एक संभावना व्यक्त की है, मगर तुम तो...। मैं यह थोड़े ही कह रहा हूँ कि तुम पापा को मत देखो... ऑफकोर्स तुम्हें देखना ही चाहिये। मेरी भी कोशिश तो यही रहेगी कि जब पापा हों तो मॉम और डैड को नहीं बुलाऊं, ताकि किसी को भी ऑक्वर्ड न लगे।'

इस तरह दोनों के पैरेन्ट्स को लेकर नेहा और नीरज में गाहे-बगाहे बहस होती रहती।

आखिरकार सिन्हा साहब के आने की तैयारी हो ही गई। चंदू से कहा- 'इस बार तू यहीं रह! तेरा सारा बंदोबस्त करके जाऊंगा, वापस आने पर तेरा भी पासपोर्ट बना लूंगा।' तब हम दोनों जहां जायेंगे, साथ ही जायेंगे। चंदू दुखी तो बहुत था, पर और कोई चारा भी नहीं था।

'...और हाँ, सावधानी से रहना, अपना ख्याल रखना। यह समझ इस घर में हम दोनों ही फॅमली मेम्बर हैं, तो पीछे ठीक से रहना। नेहा के पास ज्यादा से ज्यादा एक-दो महीने रहूँगा... ओके!'

'ठीक है भैयाजी, आप निश्ंचित होकर जाइये। ये लीजिये सौ रूपया... बच्चों को और सौ बिटिया को मिठाई का दीजियेगा।'

ले लिया, उसका मन नहीं दुखी किया। वे समझ रहे थे, वहां इन दो सौ रूपयों की भला क्या वेल्यू। फिर भी प्रेम की सौगात थी।

नेहा न्यूयार्क में रहती थी। रिसीव करने बेटी, दामाद व बच्चे सभी आये थे। आज पन्द्रह सालों बाद न्युयार्क आये थे। पन्द्रह साल पहले कॉन्फ्रेंस में आये थे। तब आठ दिन का डेलीगेशन था। इस बार सोच रहे थे कि नायग्रा वगैरह सब खास-खास जगहों पर विजिट करेंगे। एक हफ्ता तो अच्छा ही गुजरा। पता नहीं क्यों... बाद में उन्हें अच्छा नहीं लगता। ऐसे तो कुछ खराब नहीं था, फिर भी ऐसा कुछ था जो सिन्हा साहब को ऑक्वर्ड लग रहा था।

नेहा ने कहा- 'पापा, आपके ग्रीनकार्ड के लिये अप्लाई करते हैं... क्यों नीरज!'

'अच्छा... हाँ, हाँ, अच्छा रहेगा।'

मगर इन चंद शब्दों में कुछ तो था, जो सिन्हा साहब को चुभ रहा था। फिर दिमाग को परे झटक दिया। और भूल गये। लेकिन ऐसा कुछ हो जाता, जो उन्हें भूलने नहीं देता।

21 सितम्बर को नेहा को बर्थडे था।

'पापा चलिये बाहर सेलिब्रेट करेंगे।'

सब खुशी खुशी गये। बेटी बार-बार पूछ रही थी- 'पापा आप क्या लेंगे ? आपके लिये क्या आर्डर करूं ? पिज्जा या इंटालियन पास्ता, या फिर मेक्सीकन फूड ट्राई करेंगे। थोड़ा तीखा होता है, शायद आपको पसन्द आयेगा।'

सिन्हा साहब कुछ बोलें, उससे पहले नीरज बोला- 'अरे पापा को क्या मालूम... क्या ट्राई करना है! तुम्हें पापा का टेस्ट मालूम है, तुम ही आर्डर कर दो।'

'हाँ बेटा, तू अपनी पसंद से मंगा ले।'

पिज्जा और पास्ता दोनों मंगाया था। दो-चार बाइट लेने के बाद नेहा ने पूछा- 'पापा क्या पसंद आया ?'

सिन्हा साहब ने कहा- 'दोनों ही ठीक हैं।'

नीरज बोला- 'तो भी... एक कम ज्यादा अच्छा होगा ना! पास्ता अच्छा लगा ?

'ठीक है।'

'लगता है, आपको अच्छा नहीं लगा।'

'नहीं नहीं... मैं कह तो रहा हूँ- ठीक है।'

'पर जिस तरह से कह रहे हैं, उससे साफ पता चलता है कि पसंद नहीं आया।'

'नहीं भई, ऐसी बात नहीं है। खा तो रहा हूँ।'

'यहां इस तरह से जोर से नहीं बोलते। लोग सोचेंगे, आप झगड़ा कर रहे हैं।'

'अब आवाज ही ऐसी है, तो क्या करें! फिर इसी आवाज की तो रोटी खाई अब तक, तो भला अब कहां से उसमें कृत्रिमता आयेगी। जो है, जैसी है. .. वही तो रहेगी, वैसी ही तो रहेगी।' सिन्हा साहब को यह सब कहीं न कहीं चुभ रहा था, फिर भी आगे बोले कुछ नहीं, चुप हो गये। नेहा को भी नीरज की बातें अखरीं, पर वह भी चुप रही।

घर आने के बाद फ्रेश होकर सब अपने-अपने रूम में सोने गये, तो नेहा ने कहा- 'नीरज, तुम पापा से किस तरह की बात कर रहे थे ? वे क्या सोच रहे होंगे! देखा नहीं, एकदम सैड हो गये थे।'

'देखो, मैंने ऐसा तो कुछ नहीं कहा। अब तुम यह पापा-पुराण छेड़कर मेरा मूड ऑफ मत करो।'

इस तरह कुछ ने कुछ चलता रहता। अधिकतर घर में रेडीमेड फूड आता और फ्रिज उससे अटा रहता। सिन्हा साहब ने एक दिन नेहा से कहा- 'बेटा फ्रिज में इतना क्यों फ्रोजन फूड भर देते हो ? कई बार तो खराब भी हुआ है, तुमने फेंका भी है। एक-दो दिन में तो जाना होता ही है, लिमिट में लाओ। ये जो रायता-बूंदी है, उसमें पुराने तेल की स्मेल आ रही है। कब का है बेटा ?'

नेहा तो कुछ नहीं बोली, नीरज बोला- 'देखिये पापाजी, हम तो ऐसा ही खाते हैं। हमें बासी का, नये-पुराने का पता नहीं चलता।'

सिन्हा साहब को बहुत बुरा लगा- 'देखो नीरज, इस तरह की बात क्यूं करते हो ? जब मैं चुप रहता हूँ, तब भी तुम्हें प्रॉब्लम... और कुछ कहता हूँ तब भी प्रॉब्लम...। क्या पता किसी को कब क्या बुरा लग जाय, इसलिये मैं

चुप रहता हूँ। तब भी तुम्हारी शिकायत और मेरे बोलने पर भी तुम्हारी शिकायत।' फिर सॉरी बोलकर सिन्हा साहब वहां से उठ गये।

अब इन सब बातों को लेकर बेटी-दामाद में गर्मागर्म बहस होती। एक महीना गुजरा, मगर सिन्हा साहब ने बोझ तले गुजारा। यह महीना भी साल जैसा लग रहा था। उसी रात....रात भर सोचते रहे। नींद नहीं आई। अंत में निश्चय किया कि अब चले जाना चाहिये। टिकट तो दो महीने की है। चेंज कराने की बजाय एक महीना यू. एस.ए. का टूर कर लेता हूँ, और फिर वहीं से फ्लाइट लेके चला जाऊंगा। यहां अब रहना नहीं चाहिये। बेटी अपनी है, मगर दामाद तो पराया है। ...और फिर मेरे कारण इन लोगों में आये दिन झगड़े होते रहते है। साथ ही ग्रीन कार्ड का ख्याल भी झटक दिया। फिर खुद से ही बोले- अरे भाई, इतना लम्बा-चौड़ा और सुंदर अपना भारत है, भारत-भ्रमण करेंगे। ये सारे पैसे कब काम आयेंग... बेचारे चन्द्र को भी साथ ले लेना। और इन्हीं ख्यालों से गुजरते- गुजरते जाने कब नींद आ गई। सुबह उठने पर सारे बादल छट चुके थे। असमंजस भी खत्म हो गया।

'अब आवाज ही ऐसी है, तो क्या करें! फिर इसी आवाज की तो रोटी खाई अब तक, तो भला अब कहां से उसमें कृत्रिमता आयेगी। जो है, जैसी है... वही तो रहेगी, वैसी ही तो रहेगी।'

उधर नीरज परेशान था कि ग्रीनकार्ड के बाद तो और मुसीबत हो जायेगी। मुझे नेहा को मना करना पड़ेगा। आखिर उसने अपना मंतव्य नेहा को बता दिया। नेहा बिफर पड़ी- 'तो ठीक है, अपने माँ-बाप के बारे में आगे से मुझसे जरा भी बात नहीं करना। अगर मेरे पापा की तुम्हें परेशानी है, तो तुम्हारे माँ बाप की परेशानी मुझे भी है।'

नेहा नीरज में जंग चल रही थी कि सिन्हा साहब बाहर आये। उनके बॅडरूम से आती आवाजों से हैरान हो गये। वे तो पहले ही निर्णय ले चुके थे, फिर भी... पर इनको भी कहां पता है, मैंने बताया थोड़े ही ना है!

थोड़ी देर में किचिन में गये और सबके लिये चाय बनाई। फिर नेहा नीरज को आवाज दी। सबने मिलकर चाय पी। चाय के दौरान सिन्हा साहब ने

कहा- 'मैं दो महीने के लिये आया था। एक महीना तुम लोगों के साथ रह लिया, और अब एक महीने का यू.एस.ए. टूर कर लेता हूँ। मैंने बुकिंग वगैरह कर ली है... बस परसों जाऊंगा। इस तरह प्लान किया है कि आकर एयरपोर्ट से डायरेक्ट ही फ्लाइट ले लूंगा!'

'क्या पापा, आपने पूछा भी नहीं... और इस तरह... फिर आपके ग्रीनकार्ड के लिये भी तो अप्लाई करना है।'

'नहीं बेटा, जिन्दगी बची ही कितनी है! जितने साल है, अपना देश घूमूंगा। समय रहा तो फिर अन्य देश...।'

नीरज के चेहरे की तल्खी जाने कहां चली गई। खुश-खुश बोला- 'दिस इज नॉट फेयर पापाजी! आपने अकेले ही टूर बना लिया। कहते तो हम भी चलते।'

'तो अब कौन सी देर हुई है। तुम लोगों की बुकिंग भी कर दूं ?'

'नहीं-नहीं अब तो फिर कभी... मेरा हॉस्पीटल का इन दिनों वर्कलोड ज्यादा है।'

नेहा भी जानती थी और सिन्हा साहब भी कि यह सब दिखावा था। ...कहीं नेहा ने भी हल्का महसूस किया।

'लेकिन पापा, यहां आकर दो दिन रुककर जाइयेगा।'

'नहीं प्रिंसेस सब हो गया है, अब क्या हो जायेगा दो दिन में। महीना भर तो तुम लोगों के साथ रह लिया। जिन्दा रहा तो फिर कभी...।'

'पापा प्लीज!' कहते हुए नेहा को रोना आ गया।

सिन्हा साहब भी खुद को रोक नहीं पाये। बेटी को बाहों में भर प्यार की बरसात कर रहे थे। संयत होने के बाद नीरज से बोले- 'नीरज, यह पगली समझती नहीं ना कि बेटी के घर बाप शोभा नहीं देता! लेकिन मैं तो इस तथ्य को समझता हूँ ना! खैर, अपना और नेहा का ख्याल रखना। बच्चियों को खूब पढ़ाना, उन्हें अपने पांव पर खड़ा करना। बाप बेटी के बीच की फीलिंग तुम तब समझोगे, जब मेरी एज तक पहुंच जाओगे। और एक गुजारिश है... साल, दो साल में तुम लोग चक्कर लगाया करो। बच्चों को भी अपने देश का अहसास होगा। एक बात कहूँ- उम्र के इस पड़ाव पर आकर तो मेरे जैसे लोग अपनी धरती पर ही भले! जहां का जर्रा-जर्रा जाना-पहचाना है।'

'...पापा क्या आप फिर कभी आयेंगे ही नहीं ?'

'क्यों... क्यों नहीं आऊंगा ? जरूर आऊंगा।'

‘**अ**रे भैयाजी आप आ गये। अब जाकर हमारी जान में जान आई। आपके बिना हमें तो जरा भी अच्छा नहीं लग रहा था।’

‘चलो, अब तो आ गया हूँ... खुश!’

‘वहां सब कैसे हैं ? बिटिया को मिठाई लेकर दी ?’

‘हाँ दी ना! देख तेरे लिये तेरी बिटिया ने गर्म जैकेट भेजा है, सर्दियों के लिये।’

जैकेट देखकर चंदू फूला नहीं समा रहा था। पर सच तो यह न उन्होंने उसके पैसे नेहा को दिये, न ही यह जैकेट नेहा ने दिया था।

यहां जैसे खुले में सांस ले रहे हो। वहां इतना खुला, फिर भी घुटन... जगह नहीं! महत्वपूर्ण हैं रिश्ते और उन्हें निभाने की कला। जिसे रिश्ते निभाना आ गया, उसे जीना आ गया... और जेहन में चंदू उतर आया।

रगों में दौड़ने फिरने के हम नहीं कायल,
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है ?
–गालिब

जैसी करनी वैसी भरनी

डॉ. विकास कुमार

चतुर्भुज सिंह! शायद उनके माँ-पिताजी ने यही सोचकर उनका नाम 'चतुर्भत' रखा होगा कि भविष्य में उनके भी चार भुजा होंगे। चार भुजा, यानी चार सुपुत्र। ...आखिर, किसी पिता के पुत्र ही तो उनकी भुजा होते हैं। खैर, यहाँ नाम का विश्लेषण कोई अहम् मुद्दा नहीं है, बल्कि अहम् मुद्दा तो कुछ और ही है...।

प्रो. चतुर्भुज सिंह वर्तमान में छोटानागपुर विश्वविद्यालय में सामाजिक विज्ञान के संकायाध्यक्ष हैं। इसके पूर्व भूगोल विभाग में भी विभागाध्यक्ष रहे थे और साथ में विश्वविद्यालय के कई प्रशासनिक पदों को सुशोभित भी कर चुके थे। वैसे हैं तो मूलतः प्रोफेसर ही, लेकिन अपने व्याख्यानों अथवा भाषणों में खुद को भूगोल का विद्यार्थी बताते हैं। शायद यह उनकी महानता हो या फिर लोगों के समक्ष खुद को अप्रत्यक्ष रूप से महान साबित करने का नुस्खा। भगवान ने उन्हें अपने नाम के मुताबिक चार पुत्रों का पिता होने का गौरव प्रदान किया था। शायद इसीलिए चारों पुत्रों का नामकरण भी राजा दशरथ के पुत्रों के नाम पर कर दिया था उन्होंने। ...फिर चारों की परवरिश भी उन्होंने बेहतर ढंग से किया था। पढ़ाई-लिखाई में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। और छोड़ते भी कैसे ? कोई छोटे-मोटे आदमी तो थे नहीं, पैसे वाले होने के साथ-साथ बुद्धिजीवी भी थे। बड़ा लड़का राम सिंह, एमबीबीएस करके हजारीबाग में मल्टीस्पेसिलिटी हॉस्पीटल खोलकर बहुत बड़ा व्यवसायी बन बैठा था, मंझला लड़का भरत सिंह भी चतरा जिले का वरीय अभियंता का पद प्राप्त कर खूब पैसे बना रहा था और संझला लड़का लक्ष्मण सिंह भी सिमरिया प्रखण्ड का प्रखण्ड विकास पदाधिकारी के पद के सुशोभित कर अपना विकास दिन दूनी और रात चौगुनी दर से किये जा रहा था। रही चौथे लड़के शत्रुध्न सिंह की बात, तो उसकी बात ही बहुत निराली थी। एक तो बड़े बाप का बेटा, साथ में तीन काबिल भाईयों का प्यारा भाई और वैसे भी छोटा लड़का तो माँ-बाप का सबसे दुलारा होता ही है, सो उसके बिगड़ने की सभी अनुकूल परिस्थितियां सौ प्रतिशत मौजूद थी सो, हुआ भी वह एकदम

से नकारा, निठल्ला। जैसे-जैसे चतुर्भुज सिंह का छोटा लड़का शत्रुघ्न सिंह बड़ा हो रहा था, वैसे-वैसे चतुर्भुज सिंह की परेशानियाँ बढ़ती ही जा रही थीं। काफी कठिन मेहनत से उन्होंने नाम और सोहरत कमा रखे थे और फिर उनके तीनों लड़कों ने तो बाप का नाम भी काफी ऊँचा कर दिया था अपनी-अपनी सफलताओं को अर्जित करके, पर उनका छोटा लड़का शत्रुध्न सिंह तो उनके नाम को मिट्टी में मिलाने के लिए ही जैसे पैदा हुआ था। पढ़ने-लिखने में तो वह साढ़े बाइस था ही, मगर शराब, कबाब और शबाब में काफी आगे था। शहर के बिगड़ैल लड़कों से दोस्ती भी हो गयी थी।

चतुर्भुज सिंह का सपना था कि उनके चारों बच्चे अपने जीवन में 'सक्सेसफुल' आदमी बने, सो तीन को तो डाक्टर, इंजीनियर और प्रशासनिक अधिकारी बना ही दिया था उन्होंने और छोटे लड़के से अपने विरासत को बचाने के लिए प्रोफेसर बनाने की इच्छा मन में पाल रखी थी, पर उसके अंदर प्रोफेसर बनने का सब गुण रहे तब न!... बल्कि सब गुण की बात तो दूर, एक भी गुण रहे तब न। ...वह तो जैसे अपने नाम को सार्थक करने के चक्कर में ही लगा था। पढ़ाई छोड़कर उसने हरेक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। चतुर्भुज सिंह को समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने बेटे के जीवन को कैसे संवारे। उसे प्रोफेसर कैसे बनाये। इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए तो भेज नहीं सकते थे, क्योंकि उसकी गणित सही नहीं थी, डाक्टरी तो पढ़वा नहीं सकते थे, क्योंकि उसका विज्ञान सही नहीं था और प्रशासनिक पद हेतु तैयारी नहीं करवा सकते थे क्योंकि उसमें में लगभग सभी विषयों में पारंगतता हासिल करनी होती है, पर ये जनाब तो इन विषयों के अलावे किसी विशेष विषय अर्थात् लफंगई में पारंगत हो रहे थे।

पिता तो परेशान थे ही, अब उनके बड़े भाई लोग भी उसके भविष्य को लेकर परेशान रहने लगे थे। परेशानी की वजह उनके कोई सकारात्मक मंशा तो थी नहीं, बल्कि एक धृणित मंशा थी कि कोई उन्हें नल्ले-नकारे का भाई कहकर बेईज्जत न कर दे। सच में, आदमी के जीवन में एक बार ऐसा भी समय आता है, जब उसे अपनों से ज्यादा चिंता अपनी खोखली इज्जत से होने लगती है।

एक दिन तंग होकर तीनों भाई राम सिंह, भरत सिंह और लक्ष्मण सिंह अपने प्रोफेसर पिता चतुर्भुज सिंह के पास आ धमके थे। गुस्से में बड़ा लड़का राम सिंह बोला था, 'आपको तो अपने इज्जत की कोई परवाह तो है नहीं, पर हम सबको तो अपनी इज्जत की परवाह है। शत्रुध्न नल्ला-नकारा बनकर

> ***...और फिर चारों पिता–पुत्र लग गये थे उस नालायक, निठल्ले को प्रोफेसर बनाने में।***

आवारागर्दी करता फिरता है। आपकी इज्जत में कालिख पोत रहा है, आपको पता है कि नहीं। दिन भर खाली ताश–जुआ में समय बिताते रहता है।'

इस पर तो चतुर्भुज सिंह उखड़ ही गये थे, 'तो क्या करूं मैं ? तुम सब तो मेरे ही पुत्र हो। तुम सब कैसे काबिल बने। अब एक लड़का नालायक निकल ही गया तो हम क्या करें ?'

'हम क्या करें, ऐसे कहने से काम नहीं चलने वाला है। कुछ तो करना ही होगा पिताजी।' मंझला लड़का भरत सिंह टोका था।

'अब हमीं सबकुछ करें, तुम सब क्यों नहीं करते उसके लिए। उसे समझा–बुझा तो सकते हो न ?" चतुर्भुज सिंह पुनः गुस्साते हुए बोले थे।

'हम लोगों के समझाने से तो रहा वह। अगर समझना होता तो अब तक समझ गया होता। अब हमी लोगों को कुछ करना होगा?' संझला लड़का लक्ष्मण सिंह बोल उठा था।

'क्या करना होगा?' पुनः राम सिंह चौंकते हुए पूछ बैठा।

'भैया मेरे दिमाग में एक तरकीब सूझ रही है, अगर सहमत हो तो मामला सुलझ सकता है।' पुनः लक्ष्मण सिंह बोला था।

'बताओं न!... हम सब विचार करेंगे।' भरत सिंह आशान्वित होता हुआ बोल उठा थ।।

'बाबूजी की प्रोफेसरी कब काम आयेगी। हम सब कोई को पता है कि शत्रुघ्न पिताजी की बदौलत ठेल–ढकेल कर बी.ए. पास हो ही गया है। उसे उसी तरह एम.ए. भी करवा दीजिए। विश्वविद्यालय में परीक्षा नियंत्रक से लेकर कुलपति तक सबसे तो पिताजी के अच्छे टर्म हैं ही। फिर लाख–दो लाख देकर किसी के अंदर पीएच.डी. करवा दीजिएगा। ...फिर हमारा टर्म भी तो ऊपर के लोगों तक है ही, वृहत प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को कुछ खिला–पिलाकर काम निकलवाया ही जा सकता है।'

लक्ष्मण सिंह की इस तरकीब से तो जैसे सभी की बाहें खिल उठी थीं। फिर चहकते हुए चतुर्भुज सिंह भी बीच में बोल उठे थे, '...और हाँ, इसका कोई कम्पटीशन एक्जाम भी नहीं होता, डायरेक्ट इंटरव्यू होता है।... और इंटरव्यू में तो हमारे परिचित लोग ही होंगे।...फिर जब उनको पता चलेगा कि शत्रुघ्न

मेरा बेटा है तो कोई कम नंबर तो दे ही नहीं सकता। सेलेक्सन तो पक्का हो जायेगा।'

...और तब से शत्रुघ्न सिंह को प्रोफेसर शत्रुघ्न सिंह बनाने की कोशिश में लग गये थे चतुर्भुज सिंह। अपने इमानदारी को ताख में रखकर व पद और प्रतिष्ठा का भरपूर फायदा उठाकर अपने सुपुत्र को भूगोल से एम.ए. पास करवा दिये, वह भी डिस्टिंग्शन मार्क्स से। ...फिर अपने अधिनस्थ और सहकर्मी प्रोफेसर रामौतार पाण्डेय के अंदर लाख रुपया देकर पीएच.डी. का रजिस्ट्रेशन भी करवा दिये। फिर कुलपति और परीक्षा नियंत्रक से मिलकर दो-ढाई साल में ही किसी दूसरे के थीसिस के लेकर शीर्षक नाम आदि बदलवा कर पीएच.डी. अवार्ड भी करवा दिये। वैसे तो विश्वविद्यालय से पीएच.डी. करने वाले अन्य अभ्यर्थियों को कम से कम तो पाँच साल तो अवश्य ही चक्कर काटने पड़ते थे और कुछ तो पीएच.डी. के चक्कर में परेशान होकर इस धरती को छोड़कर बाकी का शोध-कार्य को पूर्ण करने के लिए स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर जाते थे; मगर ऐसा इनके साथ नहीं हुआ था, प्रोफेसर सुपुत्र जो ठहरे थे।

जितने भी अभ्यर्थियों का चयन हुआ था वे सभी, या तो प्रोफेसर, कुलपति, आई.ए.एस., आई.पी.एस. सुपुत्र थे या फिर विधायक और सांसदों के परिवार वाले। जन साधारण वर्ग से किसी भी अभ्यर्थी का चयन नहीं हुआ था।

अब तो शत्रुघ्न सिंह के नाम के आगे डॉ. भी लगना शुरू हो गया था।... कुछ ही दिनों में वह अपने दोस्तों के बीच 'डॉक्टर साहब' के नाम से पॉपुलर हो गया था। लोगों के मुँह से डॉक्टर शब्द को सुनकर तो उसका सीना और चौड़ा हो जाता था। जैसे डाक्टरी की उपाधि अपने मिहनत के बदौलत ही हासिल की हो। चतुर्भुज सिंह का अब इंतजार भी खत्म होने वाला था। वृहत प्रदेश लोक सेवा आयोग का विज्ञापन निकला। भूगोल विषय में भी २५ रिक्त पदों पर आवेदन आमंत्रित किये गये थे। चतुर्भुज सिंह ने भी अपने बेटे के नाम पर आवेदन आयोग को प्रेषित कर दिया था। ...और फिर चारों पिता-पुत्र लग गये थे उस नालायक, निठल्ले को प्रोफेसर बनाने में। लक्ष्मण सिंह ने अपना हाथ थोड़ा लम्बा किया। वृहत प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को मुंहमाँगा पैसा देकर लौट आये थे, फिर इंटरव्यू लेने वाले प्रोफेसरों से चतुर्भुज सिंह ने अपनी सांठ-गांठ स्थापित कर ही ली थी। चतुर्भुज सिंह के छोटे साहबजादे शत्रुध्न सिंह

का इंटरव्यू भी हुआ। इंटरव्यू लेने वाले विशेषज्ञ तो चतुर्भुज सिंह के परिचित ही थे, अतः उन्होंने इंटरव्यू के नाम पर सिर्फ हाल-चाल पूछ कर छोड़ दिया था।

कुछ ही दिनों के बाद आयोग के परिणाम घोषित हुए। डॉ. शत्रुघ्न सिंह भूगोल विषय के टॉपर अभ्यर्थी थे। ...फिर उनकी पोस्टिंग भी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर भूगोल विभाग में हो गयी, जहाँ पर पढ़ाई के साथ-साथ शोध-कार्य को सर्वाधिक तवज्जों दिया जाता है। ...अब शत्रुघ्न सिंह उक्त विभाग में एम. ए. के बच्चों को पढ़ायेंगे और शोधार्थियों को पीएच.डी. करवायेंगे। अपने छोटे बेटे और छोटे भाई की इस अपार सफलता पर बहुत खुश थे चतुर्भुज सिंह और उनके सभी लड़के; उनकी इज्जत और प्रतिष्ठा में चार चाँद जो लग गये थे। पर ऐसी प्रतिष्ठा बहुत दिनों तक नहीं रह पायी थी। अगले ही वर्ष कुछ योग्य अभ्यथियों ने उक्त नियुक्ति पर आपत्ति जता दी थी, वे न्यायालय की शरण में चले गये। न्यायालय ने भी इस पर त्वरित संज्ञान लिया था। नियुक्ति की सी.बी. आई. जाँच शुरू करवा दी थी। वजह यह थी कि जितने भी अभ्यर्थियों का चयन हुआ था वे सभी, या तो प्रोफेसर, कुलपति, आई.ए.एस., आई.पी.एस. सुपुत्र थे या फिर विधायक और सांसदों के परिवार वाले। जन साधारण वर्ग से किसी भी अभ्यर्थी का चयन नहीं हुआ था। सो चयनित अभ्यर्थियों से ज्यादा योग्यता रखने वाले अभ्यर्थियों की आँखों में उनका चुभना स्वाभाविक ही था।

इधर प्राध्यापकों एवं एम.ए. के छात्रों ने भी शत्रुघ्न सिंह के खिलाफ मोर्चा खोल रखा था। छात्रों में अपने नये शिक्षक के रवैये के प्रति जबरदस्त रोस था। शत्रुघ्न सिंह अपने आदत से लाचार तो थे ही, अध्ययन-अध्यापन को छोड़कर उनमें सब गुण तो पहले से ही विद्यमान थे। परमानेंट नौकरी मिलने के पश्चात तो उनके पूर्व की गलत आदतें में चहुंमुखी वृद्धि हुई थी। पहले तो सिर्फ घर वाले परेशान थे, परंतु अब तो विभाग के अन्य प्राध्यापक, कर्मचारी और छात्र-छात्रायें भी परेशान होने लगे थे। पढ़ाने-लिखाने में तो साढ़े बाइस थे ही, और तो और व्यवहार में भी किसी भी तरह परिवर्तन नहीं हुआ था। आये दिन कभी विभागाध्यक्ष से बदतमीजी कर लेते, तो कभी अपने वरीय शिक्षकों से गाली-गलौज भी। उनके इस व्यवहार से आजिज आकर विद्यार्थियों ने कुलपति से शिकायत तक कर दी थी। सहकर्मी प्राध्यापकगण भी सामुहिक आवेदन दे आये थे, कि या तो हम सभी का स्थानांतरण कहीं अन्यत्र कर दिया जाय या फिर शत्रुध्न सिंह तबादला अन्यत्र कर दिया जाय।

प्रारंभ में तो कुलपति ने भी काफी एक्शन लिया। बुलाकर डॉटा-डपटा, कई बार 'कारण बताओ' नोटिस भी जारी हुआ; पर इन सबसे से जनाब को

क्या फर्क पड़ने वाला था। जिस इमारत की नींव ही कच्चे ईंटों से बनी हो उसपर गगनचुम्बी इमारत का सपना देखना ही बेकार है। इनकी कारगुजारियों की भनक चतुर्भुज सिंह और उनके तीनों सुपुत्रों को लग गयी थी। उन लोगों ने भी उन्हें काफी समझाने-बुझाने का प्रयास किया पर वही ढाक के तीन पात। तंग आकर चतुर्भुज सिंह ने यहाँ तक कह डाला था, 'देखों, शत्रुध्न! अगर तुम अपनी आदत में सुधार नहीं लाये, तो इसके जिम्मेवार तुम खुद ही होगे। बहुत ही मुश्किल से पैसा और पैरवी के बदौलत हमलोगों ने तुम्हें प्रोफेसर बनवाया है। फिर भी इतने बड़े सम्मानित पद को अगर तुम संभाल नहीं सके, तो तुम्हारा कुछ भी नहीं होगा। ...और खबरदार, जो हाथ पसारने हमलोगों के सामने आये।'

पर इससे क्या फर्क पड़ने वाला था भला, शत्रुध्न सिंह को। वह तो सिर्फ शराब-शबाब और कबाब में मस्त रहने वाला आदमी था। उसने अपने पिताजी और भाइयों की सलाहों को एक सिरे से खारिज कर दिया था। वैसे भी जब से वृहद प्रदेश, बंग प्रदेश के अलग होकर नया राज्य बना था, तब से सरकारी नौकरियों में धनाठ्य और सफेदपोश लोगों का एकाधिकार स्थापित हो गया था। चाहे वह प्रशासनिक भर्तियाँ हो, कर्मचारियों की भर्तियाँ हो, या फिर प्राध्यापकों की भर्तियाँ ही क्यों न हो। रिक्त पदों का विज्ञापन निकलते हीं खरीद-फरोख्त का धंधा शुरू हो जाता था। योग्यता को ताख में रखकर पैसा और पैरवी के बदौलत नौकरियाँ अर्जित कर ली जाती थी। इस तरह से राज्य में घोर अराजकता की स्थिति व्याप्त हो गयी थी। इसलिए जनसाधारण के आंदोलनों के प्रचण्ड स्वरूप को देखते हुए और इन अनियमितताओं के मद्देनजर सी.बी.आई. जाँच शुरू हो गयी थी। फलतः दूध का दूध और पानी का पानी होना सुनिश्चित हो गया था। वृहत प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सचिव लपेटे में आ चुके थे। उन्हें न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा सुना दी गयी थी। कुछ अधिकारी खुद ही नजरबंद हो गये थे। इस प्रक्रिया में व्याख्याता नियुक्ति के सम्पूर्ण विज्ञापन को ही रद्द कर दिया गया। फलतः चतुर्भुज सिंह के महान सुपुत्र की नौकरी भी चली गयी थी। पैसा, पैरवी और अनीति की बदौलत बनायी खोखली इज्जत राई की पर्वत की भांति भरभराकर गिर चुकी थी। प्रो. चतुर्भुज सिंह इस सदमें को बर्दास्त नहीं कर पाये थे, परिणामस्वरूप ब्रेन स्ट्रोक तथा लकवा के शिकार हो गये और अपनी मस्तिष्कीय सक्रियता और शारीरिक क्षमता को पूर्ण रूप से गंवाकर एकांतवास की ओर गमन कर गये थे।

—अमगावाँ, शिला, सिमरिया, चतरा, झारखण्ड—825401

कहानी

दूसरी औरत

महेश शर्मा

सुबह के आठ बजते बजते जेल का पुराना केदी जगदिश चाय का तपेला चोक में रख कर आवाज लगा रहा था बैरक नम्बर एक के कैदी चाय ले जाओ अपनी अपनी। सभी केदी दोड पडे वेसे भी ठण्ड का मौसम था सभी ठिठुर रहे थे कोने में उदास खड़ा चम्पालाल भी आगे बढा चाय लेने लाइन में लगे उसकी नजर चाय के तपेले पर पडी चाय के नाम पर काला-काला गरम पानी था, जिसे लेने को कैदियों में धक्कामुक्की मच रही थी। अपने ग्लास में चाय नाम का काला पानी लेकर चम्पालाल मन्दिर के ओटले पर बैठा। चाय का पहला घुंट भरते ही मुंह कडवा हो गया और दिमाग में पिछले चार पांच महीने की सारी बातें घुमने लगी।

पुराने बस स्टैंड पर चम्पालाल का चाय का ठेला हमेशा ग्राहकों से घिरा रहता था, चाय जो बढिया बनाता था वो लोग-बाग चाय के साथ उसकी बातों के भी मजे लेते थे। चम्पालाल था भी रसिया दिन भर चाय का ठेला लगाता हँसी मजाक करता। शाम को अपने घर जो वहीं बस स्टैंड के पीछे बना दो कमरों का कच्चा-पक्का मकान के रूप में था, वहीं ठेला भी खड़ा कर देता था।

दिन भर की दुकानदारी के बाद देसी दारू का एक अद्धा रोजाना हलक के नीचे उतारता फिर खाना खाके सो जाता। सुबह वापस आठ बजे ठेला लगा के चाय की दुकानदारी शुरू। घर में औरत रामली और छः साल का मदन। परिवार का खर्चा-पानी अच्छी तरहे से चल जाता था। पास के गांव में चार बीघा जमीन थी जो बटइ से दे रखी थी।

चम्पालाल के जीवन में वैसे तो कुछ भी समस्या नहीं थी, यदि थी तो बस एक मन की भटकन और वो ये कि एक औरत और करना है। रामली है

पर जिन्दगी का मजा नहीं है। वो अपने दोस्त नाथू से अक्सर कहता रहता था कि 'कुछ भी हो एक नातरा जरूर करना है।'

'तो क्या रामली को छोड़ेगा ?' नाथू पूछता तो चम्पालाल मुस्कराकर कहता- भले ही रामली को छोड़ना पड़े पर जिंदगी के मजे तो लूंगा यार। और बात इतने पर ही आई गई हो जाती।

रामली एक सीधी-सादी अनपढ सांवली सी औरत थी। चेहरे पर चेचक के दाग, सामान्य-सा बदन लिये एक बच्चे की माँ होकर भी काफी ढली हुई लगती थी। लेकिन आदमी का पूरा ध्यान रखती थी। चम्पालाल को टाइम पर खाना, बेटे मदन का ख्याल रखना, घर के सारे काम के अलावा चाय के ठेले की भी सुबह की तैयारी में हाथ बंटाती थी। रामली समझती थी कि उसके आदमी का मन उसमें कम है, पर क्या कर सकती थी वो। जीवन इसी तरह चल रहा था। तभी गांव में एक भूचाल आया।

बस स्टैंड के आगे नदी किनारे वाले मोहल्ले के कीसना बा की बड़ी बेटी को उसके घरवाले ने छोड़ दिया। दोनों परिवार वालों में खूब झगड़े हुए। कीसना बा के दामाद का कहना था कि तुम्हारी बेटी का चालचलन ठीक नहीं है, वो घर में रखने लायक नहीं है। और कीसना बा का कहना था कि दामाद के मन में खोट है इसलिये बेटी को छोड़ना चाहता है। पंचायत बैठी 12000 रुपये में झगड़ा टूटा और जोहार बाई बाप के घर वापस आ गई। 23–24 साल की जोहार बाई औलाद तो कोई हुई नहीं थी, चेहरे का नूर अभी बाकी था, बदन में अभी भी कसावट थी। पर क्या करे आदमी से बनी नहीं। कीसना बा बोले- 'भगवान की लीला बेटी घर मे ही सही, कोई अच्छा सा घर मिला तो नातरे दे दूंगा।'

जिस दिन से जोहर बाई अपने बाप के घर वापस आई तब से ही चम्पालाल के दोस्त नाथू का एक चक्कर रोजाना कीसना बा के यहां जरूर लग जाता था। महीना होते ना होते कीसना बा के यहां चम्पालाल की सम्पन्नता के उसके अच्छे स्वभाव के और दिल फरियादी के किस्से छोड़ने में नाथू कामयाब हो चुका था। कीसना बा भी रस लेता था नाथू की बातों में, और जोहरा बाई भी दोनों की बातें कान लगाकर सुनती रहती थी।

इधर नाथू ने चम्पालाल से ये पक्का करार कर लिया था कि जोहरा बाइ से गोटी फिट कराने की जवाबदारी पूरी-पूरी नाथू की है, पर बदले में

चम्पालाल नाथू को अगली फसल तक के लिये 7000 रुपये बिना ब्याज के देगा। नाथू को भी अपनी जमीन छुड़ाना था, जो सेठ के यहां गिरवी रखी हुई थी। चम्पालाल जानता था कि ये 7000 रुपये कभी वापस आने वाले नहीं हैं, पर यदि जोहराबाई से कनेक्शन जुड़ जाये तो ये सौदा महंगा नहीं है, जिन्दगी के मजे आ जायेंगे। चम्पालाल के दिमाग में जोहराबाई का बदन घूम गया।

एक दिन नाथू की सलाह पर चम्पालाल पाव भर मिठाई और नमकीन लेकर कीसना बा के घर पहुंच ही गया। कीसना बा तो चम्पालाल को जानते ही थे। आवभगत के साथ जोहराबाई के हाथ की चाय पिलवाई। आधा घंटा बैठ कर चम्पालाल वापस आ गया। इस बीच शिकार करने वाले और शिकार होने वाले दोनों ने एक-दूसरे को भांप लिया था। खास बात ये थी कि यहां शिकार कौन हो रहा था और शिकारी कौन था, ये बात बड़ी पेचीदा थी, जो अभी तो किसी को भी समझ में नहीं आनी थी।

कुछ दिन तक तो एक-दो दिन छोड़-छोड़ कर, और फिर लगभग रोजाना ही दोपहर का एक-दो घंटा चम्पालाल कीसना बा के यहां बिताने लगा। बीच में कई बार कीसना बा इसी टाइम जरूरी काम से गांव में भी चले जाते थे, और एक-दो घंटे बिता कर ही आते थे।

रामली बडा ताज्जुब करती कि आजकल उसका आदमी बहुत खुश रहता है। घर पर मिठाई भी लाता है। पर वो परेशान भी थी कि दोपहर में नदी पर जाने के कारण चाय की दुकान पर ग्राहकी कम हो जाती थी, और कमाई भी कुछ कम पड़ने लगी थी। कई बार चम्पालाल गुस्सा भी करने लगा था। एक-दो बार तो दिन में ही दारू पीकर आ गया था और ज्यादा पी ली थी तो शाम तक चाय का ठेला भी नहीं लगा पाया। आज तक चम्पालाल ने कभी दिन में दारू नहीं पी थी। और जिस दिन रामली घर के कपड़े-लत्ते इकट्ठे करके नदी पर धोने गई, उसी दिन उसे सारा किस्सा समझ में आ गया। आधी रामायण तो नदी पर आई उस मोहल्ले वालियों ने बता दी और बाकी जब वो नदी से घर के लिये चली तो सारा नजारा जीता-जागता सामने आ गया। कीसन बा के घर के कुछ दूर से ही रामली को दिखने लगा। कीसना बा के आंगन में पड़ी खाट पर लेटा उसका भरतार और ओसारे से बाहर आती जोहराबाई जो थाली में कुछ लाई थी। दोनों के बीच कुछ हँसी-ठिठोली होती रही, फिर अचानक चम्पालाल उठकर जोहराबाई के साथ घर के अन्दर चला गया।

रामली अनपढ़ जरूर थी, पर औरत मर्द के बीच के अच्छे-बुरे रिशते समझने के लिये दुनिया की किसी पढ़ाई की जरूरत नहीं पड़ती है। सो रामली का चेहरा काले से और ज्यादा काला हो गया, चाल तेज हो गई और घर पहुँचते ही रोना-पीटना शुरू हो गया। रामली बेसब्री से चम्पालाल का रास्ता देखने लगी।

रोज की तरह चम्पालाल दारू चढ़ाकर झूमता मस्त होता घर आया। भूखी शेरनी की तरह रामली टूट पड़ी। चम्पालाल के होश फाख्ता हो गये। नशा गायब पहले तो हँसते हुए विरोध किया, फिर सारे प्रमाण जब रामली ने सामने रख दिये तो वो भी खुलकर सामने आ गया। दहाड़ते हुए उसने खुला एलान कर दिया- 'मरद हूँ कमाता हूँ उसको रखूंगा नातरा लाउंगा। तेरे पीछे जिन्दगी बरबाद थोड़े ही करूंगा। जो करना है कर ले।'

रात भर घर में कलह मचती रही। सुबह होते-होते चम्पालाल रामली को उसकी बूढी माँ के घर जो वहां से 10—15 किलोमीटर दूर था, छोड आया- स'म्हालो तुम्हारी बेटी को, काम-धाम कुछ करती नहीं, खाना बनाना आता नहीं।' ये कहकर पलटकर भी नहीं देखा रामली की तरफ चम्पालाल ने। बेटा मदन भी डरा-डरा बाप के इस नये रूप को देखता रहा।

अब जंगल के आजाद शेर की तरह चम्पालाल घर पहुंचा। नाथू घर के आंगन में तैयार बैठा था। सबसे पहले तो पूरी बोतल बुलवाई और दोनों ने छक के पी। नाथू ने 8—10 दिन में काम पक्का हो जाने का भरोसा जताया और अपने 7000 की याद दिलाई। पूरी दोपहर से शाम तक चम्पालाल कीसना बा का मेहमान रहा। शाम को कीसनाबा ने लोकलाज के डर से उसको रवाना किया।

जोहराबाई अब तक पूरी तरह से चम्पालाल की मुरीद हो गई थी, और उतावली थी उसके घर बैठने के लिये। रोजाना बाजार का नाश्ता-पानी, नगदी-पैसा, जान लुटाने वाला मरद, मकान भी, जमीन भी... और क्या चाहिये एक ओरत को दुनिया में। बाप-बेटी में इशारों-इशारों मे बात हुई, और अगले दो-चार दिन में समाज में सुरसुरी छोड़ दी। नाथू बिचवान तैयार था ही। अचानक कीसना बा ने रंग पलटा चम्पालाल और नाथू के सामने। उनका एक ही राग था- 'में बुढा आदमी एकला जमीन जायदाद कुछ भी नी किसके भरोसे ? मेरी जिन्दगी केसे कटे ? कुछ तो इन्तजाम करना पड़ेगा।'

पांच-दस समाज के लोगों की पंचायत बैठी। पीना-पिलाना हुआ। बीस हजार नगद कीसना बा को देना तय हुआ। अब बीस हजार की व्यवस्था तत्काल

दुनिया में अक्सर ऐसा होता है कि एक आदमी खुद की खुशी के लिये ना जाने कितनों को दुखी कर देता है। मगर यहां मामला ये था कि एक रामली के दुख की कीमत पर इतने लोग खुश हो गये थे।

तो मुश्किल... फसल आने में चार महीने की देर। कीसना बा मानने को तैयार नहीं।

जोहराबाई का दिल पसीजा। उसका सच्चा प्रेमी मरद जो था। उसने कीसना बा को मनाया। ये तय हुआ कि पांच हजार अभी बाकी चार महीने बाद। कीसना बा मान गये, पर नाथू नहीं माना। मजबूरन चम्पालाल ने सेठ के यहां मकान की लिखा-पढ़ी कर दस हजार लिये। पांच हजार कीसना बा को और पांच हजार नाथू को सौंप दिये। अब नाथू खुश था। फोकट के पांच हजार पके, जो वो कभी भी लौटाने वाला नहीं था। कीसना बा खुश था, बेटी ने बेटे जैसे कमाई दी थी, और अभी तो पंद्रह हजार और मिलेंगे। चम्पालाल खुश था कि इस उमर में फिर एक जवान जोरू जो मिल गई थी। और जोहर बाई वो तो खुश थी ही एक नया आदमी मिला जोशखरोश वाला, पैसे वाला, उसके नखरे उठाने वाला, और उसकी हर जरूरत पूरी करने वाला। इस पूरे काण्ड से दुखी थी तो बस एक रामली। दुनिया में अक्सर ऐसा होता है कि एक आदमी खुद की खुशी के लिये ना जाने कितनों को दुखी कर देता है। मगर यहां मामला ये था कि एक रामली के दुख की कीमत पर इतने लोग खुश हो गये थे।

खैर, चार-आठ दिन तक तो चम्पालाल का कीसना बा के यहां वैसे ही आना-जाना रहा। दोपहर को जाना, फिर कीसना बा का जरूरी काम से घर से बाहर निकल जाना और शाम तक आना। तब तक घर पर चम्पालाल और जोहराबाई, जोहराबाई और चम्पालाल... बस इसके सिवा कुछ नहीं।

रामली और उसके गरीब परिवार की तरफ से कोई विरोध अभी तक चम्पालाल को नहीं मिला था। इसी को देखते हुए इस प्रेम कहानी का अगला एपीसोड भी शीघ्र ही सामने आ गया। आठवें दिन शाम के अन्धेरे में जोहारबाई

चम्पालाल के दो कमरे वाले शीशमहल मे आ गई, हमेशा के लिये। कीसना बा खुश थे बेटी का रास्ता लगा, बीस हजार की कमाई हुई। लोग जरूर बातें करेंगे, तो करते रहें.. लोग और क्या कर सकते हैं।

चम्पालाल तो मानो स्वर्ग में आ गया था। कहां रामली और कहां जोहारबाई! कहां बासी जलेबी और कहां ताजा गरम रस से भरी इमरती। अगले 10–15 दिन तो दोनों के ऐसे मजे में गुजरे कि रात-दिन का भी होश नहीं रहा फिर कहीं जाके कुछ तृप्ति हुई तो काम धंधे की सूझी। चम्पालाल ने वापस अपने चाय ठेले पे ध्यान देना शुरू किया। पिछले दो महीने से चल रहे जोहराबाई को फतह अभियान के कारण चाय की दुकान बिलकुल ठप्प हो गई थी। एक नया ठेला और लगने लगा था। बचत आधी हो गइ थी, फिर दस हजार की उधारी वाला भी रोजाना ब्याज के पैसे लेने आ जाता था।

इधर जोहराबाइ बडे जतन से अपने नये घर को सजाने सवांरने में लगी थी। साफ सफाई करती, नये-नये सामान लाने की योजना बनाती। एक दिन दोपहर में उसे कुछ भूख लगी तो बाजार का चरपरा खाने की मन में आई और तभी उसे याद आया पिछले आठ-दस दिन से चम्पालाल घर पर कुछ नाश्ता भी नहीं लाया है, और तो और कई बार तो वो दोपहर में घर भी नहीं आया था। बस, फिर क्या था शाम को ही अपना रौद्र रूप दिखाया। खाना बनाना तो दूर जो गुस्सा कर के बैठी की दो घण्टे में मानी। चम्पालाल रात को ही मिठाई लाया, चरपरा लाया और खाने का सामान भी लाया। साथ में खुद की दारू भी लाया और वो रात बढ़िया कटी।

दूसरे दिन चम्पालाल ने फिर एक साहूकार से दो हजार रूपये उधार लिये और जोहारबाई के लिये साड़ी-ब्लाउज, पायजेब, नई चप्पलें और घर का भी कुछ सामान लेकर शाम को घर पहुँचा। जोहारबाई धन्य हो गई। खूब लाड लड़ाया। मालपुए बनाये। उस रात तो बहुत मजे किये ही अगला एक महीना भी अच्छा गुजरा।

रामली के गांव से एक उसका रिश्तेदार बीच में आया था, कह रहा था कि उसको वापस रख ले, पर चम्पालाल ने पूरी दादागिरी से उसे भगा दिया। उसी शाम चम्पालाल जब अपने धंधे का महीने का हिसाब मिलाने बैठा तो चकरा गया। कुछ समझ नहीं आ रहा था। बचत कुछ नजर नहीं आ रही थी। दूध वाले के भी पैसे चढ़ते जा रहे थे। पुराना कर्जा कुछ भी नहीं चुका पा रहा था। और

चम्पालाल तो मानो स्वर्ग में आ गया था। कहां रामली और कहां जोहारबाई! कहां बासी जलेबी और कहां ताजा गरम रस से भरी इमरती।

घर का खर्च ? बाप रे पिछले दिनों से दुगना होता जा रहा था। उसे पुराने दिन याद आये। रामली के टाइम बहुत बरकत थी धंदे मे, ना जाने क्या हो गया है आजकल। खैर, पहला काम उसने ये किया कि साहूकार को रोजाना ब्याज देने से साफ मना कर दिया- 'इकट्ठा ब्याज फसल पर ही दूंगा।'

साहुकार बोला- 'फिर ब्याज पर भी ब्याज लगेगा।'

चम्पालाल ने मंजूर किया। फसल आने में अभी दो महीने की देर थी चम्पालाल को समझ नहीं आ रहा था कि गाडी कैसे पटरी पर लाऊं। आखिर उसने निर्णय लिया। जोहराबाई को समझाना पड़ेगा कि घर का खर्चा कम करे।

रात को अपनी महारानी को खूब प्यार जताते हुए चम्पालाल ने कहा- 'जोहार, इस महिने हमें तेल-घी का और बाजार का खर्चा कम करना पड़ेगा। दुकान में बहुत मद्धीवाडा है। फसल भी कमजोर है। इस साल गाड़ी बेलेन हो रही है।'

सुनकर पहले तो जोहारबाई बिफरी, दुहाई देने लगी- 'मैं तो कुछ भी खर्च नहीं करती।' फिर अचानक कुछ सो कर यकायक चुप हो गई।

अगले कुछ दिन थोड़े ठण्डे-ठण्डे, रूखे-रूखे गुजरे। नोन तेल लकडी के फेर में तो बाजबहादुर भी अपनी मोहब्बत भूल जाता, चम्पालाल कौन से खेत की मूली था। अचानक एक दिन जोहराबाई बापू के घर जाने की जिद करने लगी। चम्पालाल ने भी खुशी-खुशी भेज दिया, कहा- 'शाम को आ जाना।' जोहराबाइ दूसरे दिन का कहकर चली गई।

उस रात चम्पालाल अकेला होने से कुछ परेशान भी रहा और खुद को कुछ आजाद भी महसूस किया। रामली की भी याद आई। चम्पालाल समझ ही

नहीं पा रहा था कि वो सुखी है या दुखी! वो पहले अच्छा था या अब अच्छा है। इसी दुविधा में रात बिताई।

दूसरे दिन जोहारबाई आ गई। कीसना बा भी साथ में आये थे। वो केवल याद दिलाने आये थे कि 'फसल आने वाली है, रूपयों की सख्त जरूरत है, कब तक हो जायेंगे, जल्दी इन्तजाम करो।' चम्पालाल ने उनकी आवभगत की, विश्वास दिलाया कि काम हो जायेगा।

अब चम्पालाल फिर दुकान में मेहनत करने लगा, ताकि घर खर्च और कुछ ब्याज इतना तो दुकान में से निकल जाये, ताकि फसल आये तो कीसना बा को बाकी पंद्रह हजार चुका सके। चम्पालाल के दिलो-दिमाग से इश्क का भूत पूरी तरह निकल चुका था। रात को घर आता। जोहारबाई पर नजर पड़ती तो पंद्रह हजार पहले याद आते, ना खाना अच्छा लगता ना रात को नींद आती। जोहारबाई कुछ लाड भी लड़ाती तो ऐसे लगता जैसे कोई भूतनी लिपट रही हो।

अब तो दिन में कई छोटी-मोटी बातों पे झगड़े भी होने लगे। हर बात पर खींचातानी होना अब आम बात हो गई थी। चम्पालाल फसल का रास्ता देख रहा था। 'पंद्रह हजार चुका दूं फिर साली को सुधार दूंगा।'

आज का दिन चम्पालाल के लिये बड़ा बुरा निकला। जमीन की बटाई वाला आया था, पूरा हिसाब जोड़कर लाया था। फसलों में कीड़ा लगने से दवाइयों का खर्चा ज्यादा हो गया था, फसल भी कमजोर थी, सब खर्चा काटते बीस हजार की कमाई हुई। चम्पालाल के हिस्से के दस हजार लेके आया था वो। जबकि चम्पालाल को पूरा भरोसा था कि तीस चालीस हजार की फसल होगी, कीसना बा से पिंड छूट जायेगा। अब क्या होगा ? कीसना बा के पंद्रह हजार सेठ के दस हजार और ब्याज दोनों को देना जरूरी है। रात को ही जोहराबाइ ने अल्टीमेटम दे दिया था कि मेरे बापू के पूरे पंद्रह हजार दो-चार दिन में दे ही देना। क्या फिर कोई नया साहूकार ढूंढना पड़ेगा ? तभी शान्तु सेठ, पुराना साहुकार दस हजार मूल ओर दो हजार ब्याज कुल बारह हजार की चिट्ठी लेकर आ गया- 'आज ही देने पड़ेंगे।'

चम्पालाल ने समझाया कि पांच हजार तो नाथू से दिलवायेगा। लेकिन सेठ ने उसके कान के जाले साफ कर दिये। 'नाथू तो पिछले दो महीने से गांव से बाहर है। खुद की फसल पेटे परबारे किसी दूसरे से पहले ही उधार ले जा चुका है। नाथू से तेरे को कुछ नहीं मिलने का।'

चम्पालाल तो आसमान से गिरा और ऐसा कि नीचे टिकने को जमीन भी नहीं मिली और मिली भी तो सामने आंखे फाडे... घूरती हुई जोहराबाई– 'मेरे बापू के पैसे ना दिये तो देखना नासपीटे मैं तेरा क्या करूंगी।'

चम्पालाल भी गुस्से में था, बोल पड़ा– 'जो तेरे से बने वो कर लेना। जब पैसे आयेंगे तब दूंगा ना, तू तो मेरी घरवाली है...।'

'जब तक बापू के पूरे पैसे ना देगा, तब तक हक मत जताना मेरे ऊपर तेरी गुलाम नी हूँ। चार महीने से मजे ले रहा है मेरे। फोकट की समझ रखी है क्या।' और चिल्लाती-दहाड़ती जोहराबाइ शाम होते-होते छाती-माथा कूटते अपने घर जा चुकी थी। रात को कीसना बा भी आकर चेतावनी दे गये थे कि 'सुबह आठ बजे तक बाकी पैसे ला देना तो जोहरा आ जायेगी वरना.. समझ लेना!'

रात भर चम्पालाल परेशान रहा। बिलकुल नींद नहीं आई। पैसों की जुगाड़ का कोई रास्ता ना दिखा। सोचते-सोचते आंखों में आंसू जरूर आ गये और उन आंसुओं में झिलमिल करती रामली और मदन की तस्वीर दिखी मन में पछतावा भी शुरू हुआ।

किस्मत का कुछ खेल अभी बाकी था। दूसरे दिन सुबह तो कुछ नहीं हुआ, लेकिन दोपहर में अचानक चाय के ठेले के सामने पुलिस की जीप आकर रुकी। पुलिस उतरी और उसे साथ ले गई। थाने जाकर पता चला कि उसने गांव की एक जवान औरत को अपने घर में जबरदस्ती बंद करके रखा, डरा-धमकाकर उसके साथ बलात्कार करता रहा। और इसी जुर्म में पुलिस ने उसे अरेस्ट किया है।

चकराता हुआ चम्पालाल हाथ जोड़े गिड़गिड़ाता रहा- 'साब, वो तो मेरी नातरे वाली लुगाई है। मैंने उसको रखा है।'

'ये सब गवाह-सबूत बाद में देना। अभी तो वो जोहारबाई और उसका बाप रिपोर्ट लिखवा के गये हैं।' थानेदार ने बड़ी बेरूखी से जवाब दिया।

'पर साब, वो पिछले चार महीने से मेरे घर में रह रही थी। सारे गांव को मालूम है। आप पता कर लो। और साब, आप भी तो आते थे मेरी चाय की दुकान पर आपने भी देखा होगा ?'

'अरे तो साले... हम आते थे तो क्या तेरे घर में झांकने आते थे ?' थानेदार ने झिड़का- 'देखना सुनना अलग बात है, कागज पर प्रमाण अलग बात। तेरे पास कोई प्रूफ है कि वो तेरी घरवाली है ? हेडसाब बन्द करो साले को।'

चम्पालाल सकते में आ गया। दो दिन हवालात में रख के सीधा जेल भेज दिया गया। धारा 376 बलात्कार, गम्भीर अपराध। ओह.... एकदम चम्पालाल की विचार यात्रा रुकी। हाथ की चाय वैसे की वैसी थी सामने रामसिंह हेडसाब खड़ा था।

'क्यों बे, अब पछता रहा है। खूब जवानी चढ़ी थी बेटा, हो गया ढीला।' हँसते-हँसते हेडसाब तो चल दिया, पर चम्पालाल रो पड़ा आंख में आंसू आ गये।

आज सात दिन हो गये जेल में। रोते-रोते दिन निकल रहे हैं। न तो जेल की रोटी अच्छी लगती है, न ही रात को नींद आती है। घर याद आ रहा

है, रामली याद आ रही है, मदन याद आ रहा है। खुद की बेवकूफी पर पछताना और रोना... यही कर रहा है वो... रोज। जेल वाले हेडसाब बता रहे थे कि '376 में जमानत भी मुश्किल से होती है, अभी भी मौका है, समझौता हो सकता हो तो कर ले, वरना मर जायेगा बेमौत।'

'क्या करूं ?' इसी सोच में था कि चौंक गया उसके नाम की आवाज लगी थी। उसने कान दिये, जगदीश की आवाज थी- 'चम्पालाल गांव बडगोंदा.. चलो मुलाकात आई है।'

कौन होगा ? चम्पालाल सोचने लगा। पिछले सात दिन में तीन चार खास दोस्त ही मिलने आये थे। आज कौन होगा ? सोचता हुआ चम्पालाल बाहर बडे गेट की तरफ बढ़ा और उसने गेट की जाली से जो देखा, भरोसा नहीं हुआ, उसकी आँखों में आंसू आने लगे। बाहर रामली और मदन दोनों खड़े थे, रामली के हाथों में रोटी की पोटली। चम्पालाल को लगा, जैसे देवदूत आये हैं उसके दिल में रामली के लिये छुपा हुआ प्यार और मदन के प्रति स्नेह उछाले मारने लगा।

चम्पालाल की झुकी हुई गरदन और भींगती आंखे देखकर उस देहाती अनपढ कुरूप औरत का हाथ अपने आप बढ़कर उसे सहलाने लगा। चम्पालाल रो पड़ा। उसे लगा ये तो भगवान का हाथ है। वो गेट पर रुक न सका। अन्दर आकर खूब रोया। किसी के चुप कराने से भी चुप ना हुआ। जैसे-तैसे शाम हुई। चम्पालाल का दिमाग एक ही बात सोच रहा था कि कैसे मुक्ति मिलेगी इस नरक से। वो रह-रहकर भगवान से माफी माँग रहा था। अचानक गेट से फिर आवाज आई- चम्पालाल बडगोंदा वाला .....मुलाकाती है ...।

अब कौन है ? क्या रामली अभी तक यहीं बैठी है। चम्पालाल असमजंस में गेट की ओर चला। बाहर देखा, नाथू था। एक क्षण तो गुस्सा आया फिर गुस्से को व्यर्थ जानकर कौतुहल से बोला- 'क्या हुआ नाथू, कहां था तू अभी तक ?

ताने-उलाहने के बाद नाथू ने बताया कि वो जोहारबाई से मिलकर आ रहा है, बहुत नाराज है वो। उसको तूने चार महीने तक वापरी और कीसना बा को टेम पे पैसा नही दिया। अब उनकी नीयत में खोट आ गई है, इसीलिए रिपोर्ट डाली है।

चम्पालाल नाथू के हाथ जोड़ने लगा- 'मेरे को बचा ले यार नाथू! मेरे को छुड़ा ले यहां से। तू मेरा दोस्त है यार!'

नाथू ने तुरन्त उपाय बताया- 'देख कीसना बा और जोहारबाई दोनों का गुस्सा बहुत तेज है। दोनों पैसों के दास हैं। तू बोले तो मैं राजीनामे की बात करूं, पर अब खर्चा ज्यादा लग जायेगा। पचास हजार से कम में कीसना बा मानने वाला नहीं है, और कुछ पुलीसवालों को भी देना पड़ेगा। कोरट में बयान होने के पहले केस खतम हो जायेगा।'

'पर इतने पैसे मेरे पास कहां हैं यार, तुझे तो मालूम है ?'

'तू सोच ले, पैसे की व्यवस्था कर या फिर ये मान ले कि चार बीघा जमीन थी ही नहीं तेरे पास। जोहराबाई के नाम कर दे जमीन, और छुट्टी सब बात से। कल तक सोच ले, कल मैं फिर आऊंगा। और देख यार इतनी मेहनत कर रहा हूँ तेरे लिए, मेरी दाडकी मत भूल जाना।'

चम्पालाल वापस अन्दर आया। वही असमंजस, वही क्या करना, क्या नहीं करना। किंकर्तव्यविमूढ़।

साथी कैदी पुछ रहे थे- 'आज तो चम्पालाल की दो-दो मुलाकात आई। कौन-कौन था ?'

किसी जानकार कैदी ने चुटकी ली- 'सुबह पहली वाली औरत थी, और अब शाम को दूसरी वाली।'

रात भर चम्पालाल सोचता रहा- चार बीघा जमीन बड़ी या घर का सुख ? जेल से छुटकारा... रामली और मदन के साथ फिर सुखी जीवन ? आंखों में आंसू लिये चम्पालाल भगवान को धन्यवाद दे रहा था वो मान गया कि उसने गलती की रामली ओर मदन का दिल दुखाया तो भगवान ने उसे सजा दी अब जमीन जाती है तो जाये। चार बीघा जमीन जाती दिखी चम्पालाल को, पर तभी दिखा स्वर्गलोक जैसा वो दो कमरे का अपना घर जिसमें रामली ओर मदन दोनों उसका इंतजार कर रहे थे। वो निर्णय पर पहुंच गया। उसका सारा असमंजस दूर हो गया था। उसने तय किया कि नाथू को आते ही राजीनामे के लिये बोल दूंगा और ये भी तय किया कि दूसरी औरत का चक्कर बहुत खराब होता है। औरत एक ही भली।

—224, सिल्वर हील कालोनी धार, जिला धार मध्य प्रदेश

कहानी

असली आनंद

✍ रमेश पोखरियाल 'निशंक'

मैंने जैसे ही हाल में प्रवेश किया, वह भीड़ को चीरता मेरे कदमों में लम्बवत आ गिरा। उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार से मैं अचानक हड़बड़ा उठा और उतनी ही तेजी से दो कदम पीछे हट गया। वह फिर आगे घिरकर मेरे नजदीक पहुँच गया और मेरे दोनों पैर पकड़ लिए।

''मैं भटक गया था सर, मेरा जीवन बचा लो।' वह बड़बड़ाता हुआ मिन्नत कर रहा था।

मुझे उसके इस व्यवहार पर बहुत गुस्सा आया- 'कौन हो तुम, खड़े उठो।' मैंने कड़क कर कहा।

मेरा इतना कहना था कि भीड़ में शामिल कई लोगों ने उसे एक साथ उठा लिया और मेरे सामने खड़ा कर लिया। अब वह गर्दन झुकाये हुये दीन-हीन की तरह हाथ जोड़े मेरे सामने सुबक रहा था। न जाने क्यों मुझे उसका चेहरा जाना पहचाना सा लगा, दिमाग पर जोर दिया, किन्तु तब भी कुछ याद नहीं आया। खण्ड विकास अधिकारी के रूप मे मैं दो वर्ष पहले भी कार्य कर चुका था। प्रशासनिक सेवा में चयन होने पर इस जिले में पहली बार विकास अधिकारी के रूप में छह साल बाद मेरी नियुक्ति यहाँ हुई थी। अभी दो दिन पहले ही मैंने यहाँ पर ज्वाइन किया था, लेकिन ऑफिस आज पहली बार आया था। इन दो दिनों में मैंने अपने आवास कार्यालय में ही बैठकर जनपद से सम्बन्धित इतिहास, भूगोल, क्षेत्रीय समस्याओं और विकास कार्यों से सम्बन्धित अनेक जानकारियाँ जुटाई थी।

आज पहले दिन ही नगर के प्रबुद्धजनों और आम जनता से मुलाकात की दृष्टि से विकास भवन के इस बड़े से अहृडिटोरियम में मिलन कार्यक्रम रखा गया था। अहृडिटोरियम के दोनों ओर जनपद के सभी प्रमुख अधिकारियों के लिये कुर्सीयाँ लगी थी, जबकि प्रतिनिधियों, प्रबुद्धजनों और आम जनमानस के

लिये हह्ल के बीचों-बीच कुर्सियों का इन्तजाम था, जिस पर कि मेरे आने से पूर्व ही काफी लोग डटे हुये थे। भीड़ इतनी अधिक थी कि लोग गैलरी से लेकर प्रवेश द्वार तक खड़े हो रखे थे। मेरे वहाँ प्रवेश करते ही अधिकारीगण अपनी-अपनी कुर्सियों से उठ गये, किन्तु इस व्यक्ति द्वारा अकस्मात मेरे पैरों में गिर पड़ने से वहाँ हड़बड़ी जैसे माहौल हो गया था।

''अरे इस आदमी को बाहर ले जाओ, साहब से बदतमीजी कर रहा है।'' मेरे कड़क रुख के चलते कुछ लोगों ने बाहर से सुरक्षा गार्ड को बुला लिया। एक नहीं चार-चार सुरक्षा गार्ड जिन्न की तरह तुरन्त प्रकट हो गये, चारों ने उसे इस तरह जकड़ लिया मानों कोई आतंकवादी हाथ में आ गया हो।

''नहीं छोड़ दो इसे।'' मैंने स्थिति को संभालने के दृष्टिकोण से कुछ शान्त होकर कहा, सुरक्षा गार्ड एकदम से मशीनी रोबोटो की तरफ एक-एक कदम पीछे हट गये।

''कौन हो तुम और इस तरह की हरकत क्यों की तुमने।'' मैंने पूछा, अब वह मेरे सामने खड़ा था।

''सर मैं विनय, नहीं पहचाना सर ? मैं विनय हूँ, आपका विकास खण्ड कार्यालय वाला सहकर्मी।'' वह एक श्वांस में बोल गया।

''विनय?'' दिमाग पर कुछ जोर डालकर सोचा तो सब कुछ याद आता चला गया।

''यार राहुल क्या रस है तुम्हारे जीवन में ? न घूमना न फिरना, न मौज न मस्ती, न शराब न बीडी न सिगरेट।'' मेरी सामने वाली टेविल पर साथियों के साथ शराब के जाम छलकाता विनय ने मुझसे कहा।

''नही यार, जो कुछ तुम कह रहे हो उसमें मुझे जरा भी दिलचस्पी नहीं।'' मैंने संयमित भाव से जवाब दिया।

''अरे काम तो जिंदगीभर करना है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी तो कुछ और होता है जीवन में उसका आनन्द कब उठाओगे।'' उसने फिर बात को आगे बढ़ाया।

''इस सबमें क्या आनन्द है विनय, यह मेरी समझ से परे है। मुझे तो अपने काम में ही आनन्द आता है।'' मैंने उसके तर्क को काटते हुये चाय समाप्त की और वहाँ से उठने का उपक्रम किया।

"चलो शाम को तुम मेरे आवास पर आओ, वहीं पर बातें करेंगे।" मेरा ऐसा कहना था कि विनय सेकेंड भर में वी. आई.पी. बन गया हो जैसे।

'अरे ये तो ऐसे ही मर जायेगा बेचारा, बिना जीवन का आनन्द लिए।" विनय ने फिर से खिल्ली उड़ाने वाले अंदाज में हँसकर कहा तो चारों दोस्त फिर ठहाका लगाकर हँसने लगे।

मुझे बुरा नहीं लगा, बल्कि उनके ठहाकों के जवाब में मैंने मुस्कुराकर हाथ जोड़े और बाहर निकल आया। "आप लोग ले लो मेरे बदले का आनन्द भी।"

ऐसा मेरे साथ पहली बार नहीं हुआ था, अपितु अक्सर होता रहता था। पहाड़ के इस दूरस्थ विकासखण्ड में खण्ड विकास अधिकारी के रूप में मेरी नियुक्ति हुई थी। पहाड़ का एक छोटा सा कस्बानुमा स्थान था यह, जहाँ पर ब्लहक कार्यालय की बड़ी सी बिल्डिंग थी।

कस्बे की छोटी बाजार के अन्दर ही पोस्ट अहफिस, स्टेट बैंक, सहकारी बैंक और खाद-बीज का कार्यालय सहित इण्टर कॉलेज का भव्य भवन और एक अस्पताल भी था। सब्जी, राशन, फल मिठाई, चाय पानी आदि की दो दर्जन से अधिक दुकानों के साथ ही एक टूरिस्ट रेस्ट हाउस भी यहाँ पर था।

एक प्रकार से यह इस क्षेत्र के दस किमी के अन्दर के निकटवर्ती गाँवों की एक मण्डी की तरह था। तीन तरफ से सड़कें यहाँ आकर मिलती थी। तीनों तरफ से अलग-अलग समय पर बसें नियत समयानुसार आती-जाती थी। सुबह की पहली बसें पहुँचने के साथ ही बाजार में लोगों की भीड़ हो जाती, लोग गाँवों से बैंक, पोस्ट ऑफिस, हॉस्पिटल आदि के कामों से आते, जरूरत की चींजे खरीदकर आखिर की पाँच बजे वाली बसों से लौटक जाते, तो स्थानीय दुकानदार भी अपनी दुकानें बन्द कर घरों को लौट जाते, पिफर तो यहाँ सन्नाटा-सा पसर जाता, सरकारी विभागों में काम करने वाले दूर के कर्मचारी ही यहाँ पर बचते।

इस नाते सभी से अच्छा परिचय हो गया था। साम के समय चलते-फिरते या घूमते हुये सबसे मुलाकात हो ही जाती थी।

विनय भी मेरे साथ विकास खण्ड कार्यालय में इन्जीनियर था। हम दोनों की उम्र और ओहदा लगभग एक समान होने और इस छोटी जगह में सीमित बाहरी कर्मचारी होने के कारण हम एक-दूसरे के अच्छे मित्र भी बन गये थे।

सांय पाँच बजे कार्यालय बन्द होने के बाद मैं बाजार में शरतू लाला की चाय की दुकान पर पहुँच जाता और एक गिलास चाय जरूर पीता। काला-कलूटा शरत लाला लाल मिट्टी से पुती भट्टी के ऊपर बने ठीये पर विराजमान रहता, उसकी भट्टी में बांज और बुरांश के मोटे-मोटे गेले चौबीसों घण्टे सुलगते रहते, चूल्हे में एक बड़ा सा केतला और पीछे एक कढ़ाई हर समय सजी रहती। वहीं पर रोज विनय से मुलाकात हो जाती, वह लगभग रोज ही दोस्तों के साथ जाम टकराता मिलता।

शरतू लाल दुकान के अन्दर शराब पीने वालों को कभी रोकता-टोकता नहीं, वरन् उनको ज्यादा प्रोत्साहन देता, इस बहाने उसके पकोड़े और उबले हुये अन्डे भी बिक जाते। इसके साथ ही कभी-कभार वह स्टील का एक बड़ा सा गिलास दुकान में काम करने वाले लड़के को पकड़ा देता।

''ऐ छोकरे ये गिलास रख दे सामने साहब के सामने।''

और पीने वाले लोग एक बड़ा सा पैग बनाकर स्टील का गिलास वापस उस छोकरे को पकड़ा देते। आम के आम गुठलियों के दाम वाली बात को चरितार्थ करने वाला शरतू लाल कभी किसी से फालतू नहीं बोलता, बस अपने काम में लगा रहता है। उसके दांयी तरफ बाबा आदम के जमाने का लगने वाला एक रेडियो चौबीसों घण्टे बजता रहता। रेडियो में कौन सा स्टेशन बज रहा है और क्या बज रहा उससे शरतू लाल को कोई मतलब नहीं रहता। उसे तो सिर्फ इस बात से मतलब रहता कि रेडियो बज रहा है। मैं इस सब दृश्य का खूब आनन्द लेता, क्योंकि इसके अलावा यहाँ पर मनोरंजन करने का अन्य कोई भी साधन नहीं होता।

इस जगह पर मेरी युवावस्था के दो महत्वपूर्ण वर्ष गुजरे, इन्हीं दो वर्षों मे मैंने प्रशासनिक सेवा परीक्षा की पूरी तैयारी की। परीक्षा में सफल होने पर मुझे पहली नियुक्ति जिला गोंडा में मिली जहाँ मैंने छह साल तक काम किया और अब पहाड़ के इस जनपद में मैं पुनः स्थानान्तरित होकर आया था।

''तुम्हारी ये हालत कैसे हो गई विनय ?'' मैंने स्वभाव में कुछ नर्मी लाते हुए कहा तो उसने गर्दन उठा ली।

“बस साहब आप तो सब जानते ही हैं, उसी संगत में बर्वाद हो गया मैं।” उसकी आँखों से आँसू निकल आये।

“ओह।” मैंने दुःख व्यक्त किया।

“चलो शाम को तुम मेरे आवास पर आओ, वहीं पर बातें करेंगे।” मेरा ऐसा कहना था कि विनय सेकेंड भर में वी.आई.पी. बन गया हो जैसे। सब लोग उसे ऐसे देखने लगे, मानों वह मेरा सबसे नजदीकी रहा हो और अब उसके द्वारा ही उनके काम भी सम्पन्न हो जायेंगे।

“सर! कोई विनय नाम का गाँव का आदमी आपसे मिलने आया है। अपने आप को आपका पुराना दोस्त बताता है।” शाम को एक चपरासी मेरे पास आकर बोला। मैंने उसे आदर के साथ अन्दर बुला लिया।

इस बार मुझे उसके चेहरे में एक रौनक दिखी। कपड़े भी कुछ ठीक-ठाक पहने थे उसने।

“क्या कर रहे हो आजकल।” मैंने ही बात की शुरूआत की।

“क्या करना है साहब, नौकरी नहीं रही, पत्नी भी घर छोड़कर चली गई। बस अब गाँव में ही हूँ, दिहाड़ी मजदूरी करके पेट पाल रहा हूँ।” उसने अपनी दास्तान बताई।

“लेकिन यह सब हुआ कैसे ?” मुझे उसके मुँह से अपने लिये साहब सुनना अच्छा नहीं लगा कुट अटपटा सा, क्योंकि वह मुझे सीधे नाम से ही पुकारता था।

“आपको तो सब मालूम है। इन्जीनियरिंग के क्षेत्र में ठेकेदारों से रोज ही पाला पड़ता था। बस उनके झांसे में आकर शराब-मुर्गा की बुरी आदत लगा बैठा, उसी को असली जिन्दगी समझ बैठा, फिर धीरे-धीरे निर्माण कार्यों में शिकायतें आने लगी। ठेकेदार उपहार में शराब-मुर्गा ले आते और बदले में एम. बी. में हस्ताक्षर करवा लेते, फिर एक दिन शिकायत जिले तक चली गई। विकास अधिकारी ने जाँच बैठा दी। जाँच में बीस लाख रुपये की गड़बड़ मिली।” वह धाराप्रवाह बोले जा रहा था, वह थूक निगलने के लिये कुछ देर रुका मुझे उसकी कहानी से दुःख पहुँच रहा था।

“फिर”- मैंने आगे की कहानी सुनने के लिये पूछा।

“फिर क्या ? मैंने पैसे कहाँ से जमा करता। सबकुछ तो खाने-पीने में गंवा दिया। विकास अधिकारी ने मुझे बर्खास्त कर दिया, पुलिस ने जेल भिजवा दिया। छः महीने बाद जेल से छूटकर आया तो पत्नी भी घर छोड़कर चली गई थी। फिर मैं कहीं का न रहा।” उसने कहानी समाप्त की।

"तो अब मुझसे क्या चाहते हो?" मैंने जिज्ञासावश पूछा।

"कोर्ट में केस चल रहा है। मुझे विकास अधिकारी ने बर्खास्त किया था। कोर्ट कहती है कि यदि विकास अधिकारी चाहें तो मानवीय दृष्टिकोण से सरकार फिर बहाल कर सकती है।" उसने अपना असली मन्तव्य बतलाया।

"मतलब तुम मुझसे संस्तुति चाहते हो।" मैंने पूछा।

"जी।" उसने हाथ जोड़ दिये। अब मैं सुधर गया हूँ। जीवन का असली आनन्द अब मेरी समझ में आ गया है।" उसके स्वर में मैंने कम्पन्न महसूस की।

मैं उस विनय और इस विनय में भेद कर पाने में असमर्थ था। समझ नहीं पा रहा था कि उसे क्या कहकर वापस भेजूँ।

–37/1 विजय कॉलोनी, रवींद्रनाथ टैगोर मार्ग, देहरादून, उत्तराखंड

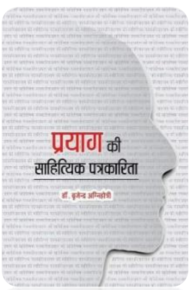

प्रयाग की साहित्यिक पत्रकारिता

✍ डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-93-87831-60-1

संस्करण : 2019, मूल्य : 250/-

समकालीन साहित्य और स्त्री विमर्श

✍ अनूप शुक्ल (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-929060-5-8

संस्करण : 2015, मूल्य : 400/-

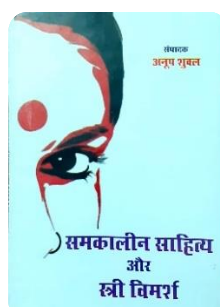

कहानी

सुरक्षा

✍डॉ. सुनीता जाजोदिया

अविनाश ने जोर से ब्रेक लगाया तो प्रियंका ने उसे कसकर पकड़ते हुए पूछा, 'क्या हुआ ?'

'उतरो, सूटकेस गिर गया है।'

अविनाश ने कहा तो स्कूटर से उतरकर प्रियंका ने देखा कि बीच सड़क पर पड़े उस बैंगनी रंग के सूटकेस को एक युवक ने तेजी से अपने हाथों में उठा लिया है। स्कूटर के करीब आकर उसने वह सूटकेस अविनाश को थमा दिया। अविनाश ने उस भले युवक का शुक्रिया अदा कर स्कूटर पर बैठते हुए सूटकेस को अपने दोनों पैरों के बीच अच्छी तरह फंसा लिया था।

'एक बार देख लो कहीं से टूटा तो नहीं ?'

'मेरा खरीदा गया सूटकेस एकदम टिकाऊ है प्रिये मेरी तरह। चलो जल्दी बैठो, कहीं गाड़ी न छूट जाए।' अविनाश के इस जवाब पर वह मुस्कुराते हुए स्कूटर पर बैठ गई। दिल से तो वह यही चाह रही थी कि गाड़ी छूट जाए किंतु जिस तेजी से स्कूटर सड़क पर दौड़ रहा था उसे विश्वास हो गया था कि गाड़ी नहीं छूटेगी। गाड़ी छूटने में बहुत कम समय था, इसलिए कार के बजाय स्कूटर से स्टेशन छोड़ना अविनाश ने उचित समझा था। वह जा तो रही थी किंतु अभी भी उसके मन में दुविधा थी कि वह सेमिनार में जाए या नहीं।

स्टेशन के प्रवेश द्वार पर छोड़कर अविनाश ने उससे विदा ली। थर्ड एसी के डिब्बे में अपनी सीट पर पहुंच कर सबसे पहले उसने सूटकेस को चौन से बांधकर ताला लगाया। चाभी हैंडबैग में रखने के बाद आसपास उसने नजर दौड़ाई तो पाया कि आठ यात्रियों के बीच वह अकेली महिला है। भय

के मारे उसका गला सूख गया। पानी पीकर फिर से एक बार उसने उन सब पर नजर डाली। पच्चीस-सत्ताईस वर्षीय दो युवक पहले से ही दोनों ऊपरी बर्थ पर अधलेटे से मोबाइल में आंखें गड़ाए हुए थे। उसने अंदाजा लगाया कि वे जरूर आईटी कंपनी में काम करते होंगे। उसके ठीक सामने बैठा अधेड़ व्यक्ति व्यापारी-सा लग रहा था जो या तो किसी दौरे पर था अथवा घर वापसी पर। अन्य चारों को देख कर उसे थोड़ी तसल्ली हुई क्योंकि वे काले कपड़ों में थे। मालाधारी स्वामी थे वे सब जो भगवान अय्यप्पन के दर्शन के लिए सबरीमलै की तीर्थयात्रा पर थे। उनमें से दो नवयुवक अट्ठारह-बीस साल के भी थे। इन स्वामी से कैसा भय ? उसने अपने आपको समझाया।

तभी मोबाइल की घंटी ने उसका ध्यान भंग किया। 'हेलो, हाँ मम्मी, सब ठीक है, मैं रेलगाडी में.. बताया था न आपको मैं केरल जा रही हूँ। कल से सेमिनार है... वापसी तीन तारीख को है। आपको याद नहीं रहता, अच्छा मैं आपको मैसेज कर देती हूँ। हाँ ठीक है, पहुंच कर फोन कर दूंगी। अपना ख्याल रखना।'

अविनाश का वीडियो कॉल आ रहा था। वो जायजा ले रहे थे कि आखिर वह गाड़ी में आराम से बैठ तो गई है ना। कोई परेशानी तो नहीं ।

'सब ठीक है, लो गाड़ी भी चल पड़ी है। अच्छा अपना ख्याल रखना अवि! बाय!' जवाब में उड़ता चुंबन किया अविनाश ने तो वह शर्म से लाल हो गई और तुरंत ही सचेत भी हो गई थी कि किसी ने देखा तो नहीं।

'तो आप कॉलेज में पढ़ाती हैं। आपके प्रोफेशन में भी क्या आपको यात्राएं करनी होती हैं ? मैं तो ठहरा घड़ियों का व्यापारी। अक्सर दौरों पर ही रहता हूँ।'

'उं ... हां!' छोटा सा जवाब देकर प्रियंका तुरंत दूसरी ओर देखने लगी कि वह फिर से कोई दूसरा प्रश्न न उछाल दे। एकबारगी तो वह घबरा गई थी कि भला ये कैसे जानता है कि वह कॉलेज में शिक्षक है। फिर वह समझ गई कि अवश्य ही इसने मम्मी से फोन पर हुई बातचीत सुनी है। घर से रवाना होते समय उसने तय किया था कि इस यात्रा में वह अनजान लोगों से बिल्कुल बातें नहीं करेगी। उसका ध्यान फिर उन स्वामी पर चला गया, लगता है वे एक बड़े समूह में थे और सिर्फ इस डिब्बे में ही नहीं अगल-बगल के डिब्बों में भी

फैले हुए थे। समूह के कुछ जिम्मेदार व्यक्ति बार-बार आकर उनकी जरूरतों और सुविधाओं के बारे में पूछ रहे थे।

टीटी से टिकट चेक करवाने के बाद वह सोने की तैयारी करने लगी।सीट से उठकर वह अपनी मंझली बर्थ नीचे करने लगी तो ऊपर लेटे युवक ने तुरंत लोहे की जंजीर खोल कर उसे थमा दी और एक मोटे स्वामी ने आगे बढ़कर जंजीर को बर्थ की सांकल में फंसाने में मदद कर दी। उस मोटे स्वामी ने पूछा- 'क्या आप निचली बर्थ लेना चाहेंगी।'

उसने झट से इंकार कर दिया। किसी से भी वह किसी भी प्रकार के वार्तालाप में नहीं पड़ना चाहती थी। बर्थ नीचे करते वक्त स्वामी का हाथ उसके हाथ से छुआ तो वह कांप गई, किंतु वह मोटा स्वामी एकदम सहज था। वह सोच रही थी कि कैसा कलयुगी स्वामी है स्त्री को छूने पर भी इसने क्षमा नहीं माँगी, जबकि इन दिनों तो ये ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

आजकल 'सब चलता है' की मानसिकता के 'मोड़' पर लोग आ गए हैं और शायद यही वजह तो नहीं दुष्कर्म के मामलों में बेतहाशा बढ़ोतरी की। उसके जेहन में सुंदर और मासूम-सी डा. प्रियंका रेड्डी की वह भोली सूरत उभर आई जो परसों से अखबार, टीवी और समस्त मीडिया पर छाई हुई है। बर्बरता और अमानवीयता भरा वह शर्मनाक दुष्कर्म... और फिर गुनाह को छिपाने के लिए लाश को जलाना। जानवरों का इलाज करने वाली डाक्टर इंसानी जानवर का शिकार हो गई। उफ् ...स्त्री के प्रति कितनी पशुता ..कितनी क्रूर निर्ममता। आखिर क्यों ? महज इसलिए कि शारीरिक रूप से पुरुष बलशाली है और स्त्री कमजोर। इसलिए कि हमारी मनोसामाजिक कंडीशनिंग यह मानने के लिए की गई है कि पुरुष एक खुला सांड है और स्त्री खूंटे से बंधी एक गाय है। दुसह्य शारीरिक पीड़ा के साथ-साथ तार-तार होते आत्मसम्मान एवं अस्तित्व की कितनी भयानक मानसिक पीड़ा से गुजरी होगी वह पीड़िता। क्या कभी किसी पुरुष को ऐसी पीड़ा से गुजरना पड़ता है? पुरुषों के बारे में सोचते ही उसे ख्याल आया कि यहां वह सात पुरुषों में अकेली महिला है। वह सोने से पहले बाथरूम गई थी, तब भी उसने देखा कि महिलाओं की संख्या पुरुषों के मुकाबले इस कोच में बहुत कम है। उसके शरीर में झुरझुरी दौड़ गई कि क्या हो यदि इन सातों में से किसी के मन में भी शैतान जाग जाए। क्या वह आत्मरक्षा में समर्थ है ? नहीं ... क्यों ? क्योंकि हमारे शिक्षा और सामाजिक तंत्र में बचपन

से ही लड़कियों को कभी आत्मरक्षा का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। आक्रमणकारियों से निपटने के लिए स्कूल कॉलेजों में किसी भी प्रकार के मार्शल आर्ट का न अनिवार्य प्रशिक्षण है न ही कोई कोर्स। वैकल्पिक रूप में कहीं उपलब्ध भी हो तो भी इनमें लड़कियां बहुत सीमित संख्या में होती हैं। माँ की जिद पर आखिरकार उसने भी तो अपनी इच्छा के विरुद्ध जूडो-कराटे न सीखकर स्कूल में बेकिंग कला ही तो सीखी थी। उसकी आंखों में फिर वह खूबसूरत भोला चेहरा उभर कर आ गया। माँ कहती थी कि जब प्रियंका चोपड़ा मिस वर्ल्ड बनी थी तब वह काफी दिनों तक घर में ताज पहनकर शीशे के सामने उसकी नकल करती और कहती- 'मैं हूँ प्रियंका... मिस वर्ल्ड विजेता।' दुर्भाग्य से इस पीड़िता और उसका नाम भी एक ही था, किंतु इस बार नाम और उम्र की समानता ने गर्व की जगह उसके मन में खौफ भर दिया था। परसों ही उसकी टिकट कंफर्म हुई थी और उसी दिन यह मनहूस ब्रेकिंग न्यूज भी मिली थी।

पहली बार अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में अपनी प्रतिभागिता के प्रति बेहद उत्साहित होने के बावजूद उस दिन वह अब केरल की इस यात्रा को रद्द करना चाहती थी। यह सुनकर अविनाश ठहाका लगा कर हँस पड़े- 'भला ऐसे कैसे कोई घर में बैठ सकता है, सब पुरुष ऐसे जालिम नहीं होते हैं। और फिर तुम तो इस संगोष्ठी में जाने के लिए काफी उत्सुक थी। तुम्हारा मनपसंद विषय भी है, और साथ ही भूल गई तुम ..अभी तीन महीने पहले जब तुमने पहली बार अपने विभाग की ओर से राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया तो दो दिन पहले से ही पत्नी समेत यहां पहुंचकर डाक्टर चंद्रशेखर ने तुम्हारी भरसक मदद की थी। तुम्हें भी तो जरूर जाना चाहिए पहली बार उसने एक अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया है, आखिर तुम्हारा क्लासमेट है वो।'

जाना तो वह भी चाहती है, वह यह भी जानती है कि यात्रा रद्द करने पर चंद्रू हताश हो जाएगा। कॉलेज से ऑन-ड्यूटी भी मिल गई है, किंतु दुष्कर्म की इस खबर ने उसके हौसले पस्त कर रखे हैं। वह चाहती थी अविनाश उसे जाने से रोक ले, किंतु अविनाश स्त्री को कैद नहीं अपितु खुला आसमान देने में विश्वास रखते हैं। फिर भला वह उसे क्यों रोकते। पिछले वर्ष ही दोनों विवाह-सूत्र में बंधे थे। मम्मी, पापा ने भी तो उसे नहीं रोका था।

चेन्नई से इस बार कोई साथ भी तो नहीं मिला, पिछली बार उसके साथ मालिनी थी, जब वह हैदराबाद के सेमिनार में गई थी। हैदराबाद के नाम से भयभीत होकर उसने जोर से आँखें मींच ली।

-o-

अपने आसपास की हलचल और चेहरे पर पड़ती रोशनी से उसकी आँखें खुल गई।

समय देखा पांच बजे हैं, करीब बीस मिनट में स्टेशन आने वाला है, जल्दी से फ्रेश होने के लिए वह बाथरूम की ओर लपक पड़ी। चेन खोलकर सूटकेस खींचकर वह दरवाजे के पास जाकर खड़ी हो गई। उसी मोटे स्वामी ने पूछा, 'कोट्टायम आने वाला है, क्या आप यहीं उतरेंगी?'

उसने 'हाँ' में गर्दन हिला दी ।

गाड़ी जब प्लेटफार्म पर लगी तो वह नीचे उतरकर सूटकेस उतारने लगी तो उसी स्वामी ने आगे बढ़कर उसकी मदद की। 'धन्यवाद' कहकर वह प्रीपेड-ऑटो की ओर बढ़ गई।

'मैडम, ये बस-अड्डा तो आ गया किंतु यहां सात बजे से पहले कोई बस नहीं मिलेगी आपको। अभी तो यह सुनसान है, अंधेरा भी है मैडम और उस पर आप अकेली भी हो, इस सुनसान बस-अड्डे पर अकेली लेडीज का इंतजार करना बिल्कुल सेफ नहीं है।'

'तुम जानते थे तो फिर मुझे स्टेशन से लेकर ही क्यों आए, मैं वहीं न इंतजार कर लेती।' उस पर बमक पड़ी थी वह।

चंद्रशेखर ने कहा भी तो था पर वह कैसे भूल गई ? चन्द्रू ने तो जिद की थी कि वह उसके लिए गाड़ी भेज देगा, किंतु उसने मना कर दिया था कि तुम्हें संभालने के और भी बीसियों काम होंगे इसलिए वह आयोजन पर ध्यान दे, उसकी चिंता कतई ना करे। चंद्रू ने उसे यह भी बताया था कि कोट्टायम से वेंग्यूर पहुंचने के लिए उसे सत्तर किलोमीटर की यात्रा करनी पड़ेगी। स्टेशन से टैक्सी मिलती है वैसे, पर बस यात्रा ज्यादा सुरक्षित रहेगी। बस अड्डे से हर पांच मिनट में लगातार डीलक्स बसें चलती हैं। वेंग्यूर पहुंचकर उसे गेस्ट हाउस सर्किल पर उतरना होगा और बस पचास मीटर की दूरी पर ही लोटस होटल

में उसके ठहरने का पूरा इंतजाम था। होटल से कॉलेज तक के लिए गाड़ियों की पूरी व्यवस्था हो गई है।

'डरो नहीं मैडम जी, हम आपको अकेले नहीं छोड़ेगा। बस स्टैंड के आसपास एक अच्छी जगह ढूंढकर ही आपको छोड़ेगा।'

'ठीक है, कोई अच्छी चाय की दुकान पर उतार दो।' उसने ऑटोचालक से कहा। किंतु अभी तो यहां कुछ भी नहीं खुला था, धरती-आसमान सब नींद के आगोश में मग्न थे।

'मैडम जी, फिक्र मत करो हम आपको अकेले नहीं छोड़ेंगे।'

दिसंबर महीने की पहली तारीख की हवा उतनी सर्द भी न थी, किंतु उस अनजान चालक की बातों की दहशत से उसकी हड्डियों में कंपकंपी छूट रही थी। ऑनलाइन आर्डर किया पेपर-स्प्रे भी तो उसके रवाना होने तक उसे नहीं मिला था। ऑटो घुमा-घुमाकर वह उसके लिए कुछ सुरक्षित जगह ढूंढने लगा।

'हम तुम्हें एक पैसा भी और नहीं देंगे।'

'मैडम मुझे आपका बहुत ख्याल है, ऐसे कैसे मैं आपको सुनसान जगह पर उतार सकता हूँ?'

केरल में वह तमिल में बोल रही थी, किंतु उस चतुर चालक ने उसकी भाषा-समस्या को पहचान लिया था और वह हिंदी में वार्तालाप करने लगा था।

उसने गूगल करके सूर्योदय का समय देखा, अभी तो पूरे चालीस मिनट बाकी थे। सही जगह की तलाश में अंतरराज्यीय बस अड्डे का पूरा चक्कर लगाकर फिर से मुख्य द्वार पर पहुंचे तो ठीक सामने एक स्थानीय बस स्टॉप दिखाई दिया।

प्रियंका ने देखा सड़क की हल्की रोशनी सीधे बेंच पर पड़ रही थी। वहां तीन भद्र लोग बैठे बातें कर रहे थे। उनमें से अधेड़ उम्र की एक महिला को देखकर उसने तुरंत ऑटो रुकवाया और सूटकेस लेकर उतर गई।

'हाँ, ये जगह सेफ है मैडम। सामने बस अड्डे से आपको सात बजे बस मिल जाएगी।' यह कहते हुए वह ऑटो चालक चला गया।

उसने गहरी सांस ली, शुक्र है कि उसने न तो अतिरिक्त पैसों को लेकर कोई बखेड़ा खड़ा किया और न ही वह बुरा इंसान था।

चाय की तलब लग रही थी। उसने आसपास नजर दौड़ाई, सारी दुकानें बंद थी। यही उसका चेन्नई शहर होता तो सवेरे पांच बजे से हर गली कूचे में

चाय मिल जाती। लैंप पोस्ट के हल्के प्रकाश में बस स्टॉप पर बतियाते उन लोगों को अब उसने ध्यान से देखा।

तीनों में सबसे अधिक उम्र वाला पुरुष करीब सत्तर वर्ष का होगा और उसके साथ वाला करीब पैंसठ वर्ष का। महिला लगभग साठ की होगी। वह सोचने लगी कि इनका आपस में क्या रिश्ता होगा ? उनमें से किसी के पास भी ऐसा कोई सामान नहीं था जिससे कि अनुमान लगाया जा सके कि वे मुसाफिर हैं। इतनी सुबह बस स्टॉप पर आने का उनका क्या मकसद होगा ? उनके हाव-भाव पर उसने अपनी नजरें जमा रखी थी, किंतु उससे बेखबर वे लोग बातचीत में मशगूल थे।

केरल की पारंपरिक बॉर्डर वाली साड़ी में थी वह महिला, पुरुष धोती में थे। वे लोग वेशभूषा से बहुत साधारण दिख रहे थे। इस समूह में सभी साठ पार के थे। अनायास अपने आसपास सीनियर सिटीजन के बीच स्वयं को पाकर उसका भय तिरोहित होने लगा था। उनकी उम्रगत शारीरिक कमजोरी ने उसके अंदर साहस भर दिया था। अब वह सात बजे तक बेखौफ बस का इंतजार कर पाएगी।

उस क्षण पीड़िता का मासूम चेहरा फिर से उसके सामने उभर कर आया तो उसे लगा कि दुराचारियों और उसकी मानसिकता में इस समय कोई फर्क नहीं है। कमजोर के सामने शक्तिशाली महसूस करने का यह भाव ही तो व्यक्ति को आक्रामक बना कर अत्याचार के लिए उकसाता है। क्या हो यदि ये तीनों के तीनों नौजवान हों। नहीं नहीं ...कमजोर के आगे ताकतवर होकर भला वह कौन सा तीर मार रही है। नहीं...वह हमेशा इस तरह कमजोर नहीं रह सकती।

प्रियंका ने एक बार फिर अपने भीतर शक्ति का संचार महसूस किया, इस बार यह मार्शल आर्ट सीखने के दृढ़-संकल्प की शक्ति थी।

–विमेंस क्रिश्चियन कॉलेज, चेन्नै

तुमने कहा जो था!

राम नगीना मौर्य

''बड़े दामाद जी नहीं दिख रहे हैं?'' आँगन में बैठी मुहल्ले की औरतों में से मिसेज चड्ढ़ा ने पूछा।

''हाँ, उन्हें ऑफिस में किसी जरूरी काम के लिए रोक लिया गया है। उनका अभी प्रमोशन के साथ-साथ नयी जगह पर तबादला भी हो गया है, इसीलिए तुरन्त छुट्टी नहीं मिल सकी है, लेकिन सुनेत्रा बता रही थी कि शादी में जरूर आयेंगे।'' पड़ोसन मिसेज चड्ढ़ा को सुनेत्रा की माँ ने आश्वस्त किया।

''सुमित्रा, मैंने कल तुम्हारी बहू को बाजार में देखा। वो तो...लो-कट ब्लाउज में एकदम मॉडर्न बहू लग रही थी।''

''बस्स, पहनावा ही तो मॉडर्न है। मैडम का काम-काज से दूर-दूर तक नाता नहीं। वैसे, ये तुम्हारे दुपट्टे का लेस तो उघड़ा जा रहा है, इसे तुम सिलवा क्यों नहीं लेती ? तुम्हारी बहू तो बहुत गुणी है, उसी से कह देती।''

''सो तो है। आज जरा जल्दी में थी, ध्यान नहीं रहा, सो यही दुपट्टा ओढ़कर चली आयी। तुमने सही कहा, मेरी बहू सचमुच बहुत गुणी है।'' बरामदे में तख्त पर बैठी सब्जियां काटते, घर आयी मुहल्ले की महिलाओं और अम्मा की बातें, गपशप सुनते, सुनेत्रा सोच रही थी कि क्या सचमुच ऐसा ही है? सत्यजीत का, यहां उसके चचेरे भाई की शादी के दो दिन पहले तक भी न आने का कारण क्या सिर्फ उनकी पदोन्नति, उनका तबादला और ऑफिस की व्यस्तताएं ही है? या कुछ और कारण हैं, जो मेरे बार-बार अनुरोध करने पर भी शादी में आने को तैयार नहीं हुए...?

घर में शादी की तैयारियां पूरे जोर-शोर से चल रही थीं। सुनेत्रा की तीनों बहनें अपने-अपने पति और बच्चों के साथ हफ्ते-भर पहले से ही यहां मायके में पांव जमाए हुईं थीं। कड़ाके की ठण्ड होने के कारण तीनों दामाद गुनगुनी धूप में ऊपर छत पर चाय-काफी की चुस्कियां भरते, पकौड़ियों पर हाथ

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

साफ करते, गुल-गपाड़ा बतियाने में मस्त-व्यस्त से थे। बीच-बीच में सहारनपुर वाले जीजा जी, जो अपनी आदत के अनुसार हर चुटीली बात पर बड़े जोर से ठहाका लगाते हुए हँसते हैं, का जोरदार अट्टहास भी नीचे आंगन तक सुनाई पड़ जाता।

सुनेत्रा, यद्यपि मायके में अपने आपको शादी-विवाह के ढ़ेर सारे कामों में व्यस्त रखे हुए थी, परन्तु पूरे समय उसे कहीं-न-कहीं अजीब सा खालीपन, बेगानापन महसूस होता रहा। अम्मा-बाबू भी उससे ठीक ढ़ंग से नहीं बतिया रहे थे। चूंकि शादी-विवाह के घर में बीसों काम, बहत्तरों तरह के बवाल के कारण पूरा परिवार एक अजीब किस्म के तनाव में रहता है। ऐसे में सुनेत्रा की अम्मा, और बेटियों के बजाय, बीच-बीच में अपना गुस्सा सुनेत्रा पर ही निकालतीं। कभी-कभी तो सुनेत्रा को लगता कि अम्मा उसे जान-बूझकर या बेवजह ही दूसरों की गलतियों पर भी ये कहते डांट देती कि...''सुनेत्रा तुम तो बहनों में सबसे बड़ी हो, कम-अज-कम तुम्हें तो जिम्मेदारी का अहसास होना चाहिए। बाकी बेटियों के साथ आये उनके बच्चे अभी छोटे-छोटे हैं, सो वो सभी अपने-अपने बच्चों को भी संभालने में व्यस्त हैं। तुम्हारे बच्चे तो बड़े हैं, और शादी में आये भी नहीं हैं, ऐसे में कम-अज-कम तुम्हें तो आने वाले मेहमानों का खयाल रखने के साथ-साथ, हलवाई आदि को क्या-क्या देना है, का भी ध्यान रखना चाहिए? तुम तो स्कूटी चलाना जानती हो। थोड़ी-बहुत सब्जियां बाजार से तुम भी ले आ सकती हो, या टेण्ट वाले के पास बात करने के लिए अपने बाबू जी को स्कूटी पर बिठाकर ले जा सकती हो?''

सुनेत्रा से भी जो बन पड़ रहा था, कर रही थी, या कभी-कभार अपनी माँ की ऐसी झिडकियाँ, एक कान से सुन दूसरे कान से निकालते, चुपचाप अपने काम में लगी रहती। वो जानती थी कि अम्मा से बहस करने का कोई फायदा नहीं। उन्हें अपने काम, अपने निर्णय में किसी तरह का दखल पसंद नहीं। फिर, वो भी तो पूरे दिन दौड़-भाग करती रहतीं। तिस पर तीनों बहनों के बच्चों की पूरे घर में धमा-चौकड़ी, ऊपर से तीनों दामादों के नखरे भी अलग से झेलने थे। कभी भोजन में मीन-मेख, तो कभी रजाई-बिस्तर की समस्या। फिर तीनों की फितरतें भी अलग-अलग थीं। एक धूम्रपान का शौकीन, दूसरा नींद में खर्राटे भरने वाला, तो तीसरा देर रात तक ट्यूबलाइट जलाकर पढ़ते-पढ़ते सोने का आदी है। ऐसे में तीनों दामादों को अलग-अलग कमरा चाहिए था। ऊपर से शाम होते ही मच्छरों का आतंक भी शुरू हो जाता। जिससे सभी रिश्तेदारों के लिए मच्छरदानियों का इंतजाम भी खासा मशक्कत भरा काम होता।

सुनेत्रा के दोनों बच्चे बड़े-बड़े थे। बेटे का हाईस्कूल, तो बिटिया की इण्टर बोर्ड परीक्षाएं थीं। दोनों के ही स्कूल में प्रैक्टिकल, एक्स्ट्रा-क्लॉसेज आदि कक्षाएं चल रही थीं, ऐसे में पढ़ाई का नुकसान होने की वजह से उसके बच्चों का आना सम्भव नहीं था। सत्यजीत को, बिटिया को रोज स्कूल या एक्स्ट्रा-क्लॉसेज के लिए छोड़ने जाना पड़ता था, फिर घर को अकेले बच्चों की जिम्मेदारी पर छोड़ा भी तो नहीं जा सकता। सत्यजीत के शादी में न आने का ये भी एक कारण था।

आज शादी का दिन था। घर में सुबह से ही गहमा-गहमी मची हुई थी। सभी लोग जोर-शोर से शादी की तैयारियों में लगे थे। सुनेत्रा, चावल की थाल लेकर छत पर चली गयी। छत पर गुनगुनी धूप खिली हुई थी। मुंडेर पर बैठा एक कौव्वा बीच-बीच में कांय-कांय कर लेता, पर सुनेत्रा अपने ही विचारों में खोई थी, इसलिए उस तरफ उसका ध्यान नहीं गया।

सुनेत्रा छत पर बैठी, चावल में से कंकड़-पत्थर आदि बीनते सोच रही थी...हमारी शादी के बाद तो सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। अम्मा-बाबू, तीज-त्यौहार, खास मौकों पर उसके ससुराल आते-जाते थे। बीच-बीच में उससे और सत्यजीत से फोन पर बतियाते, हमारा हाल-चाल भी पूछते रहते। दोनों बच्चों के पैदा होने पर, उनकी देखभाल के लिए अम्मा तो पन्द्रह-बीस दिनों के लिए उसके पास रहने के लिए आयीं भी थीं। अगले छह-सात सालों के अन्तराल में उसकी बाकी तीनों बहनों की शादियां हो गयीं, जिससे अम्मा-बाबू की जिम्मेदारियां उन बेटियों, उनके ससुराल वालों के प्रति बंट जाने से, उसके और सत्यजीत के प्रति अम्मा-बाबू के रूख में बदलाव आ जाना स्वाभाविक था। पर वो सत्यजीत को कैसे समझाती? सत्यजीत तो अक्सर ही सुनेत्रा से शिकायत करते कि अब उसके अम्मा-बाबू, उसके यहां नहीं आते-जाते, और न तीज-त्यौहार में न्यौता-हंकारी की सामान्य पारिवारिक, सामाजिक औपचारिकताएं ही निभाते हैं।

सुनेत्रा और सत्यजीत के बीच कभी-कभी ऐसे मुद्दों पर खुल कर बातचीत हो जाती, तो कभी रूसा-रूसौव्वल भी हो जाती। हालांकि सुनेत्रा जानती थी, उसके अम्मा-बाबू अपने अन्य दामादों की तरह सत्यजीत को भी चाहते हैं। वो अपने अम्मा-बाबू का किसी से ज्यादा न घुल-मिल पाने का स्वभाव भी जानती थी, पर वो क्या कर सकती थी ? उसके लिए तो दोनों ही अपने थे। वो न अपने अम्मा-बाबू को गलत कह सकती थी, और न सत्यजीत की बातों पर तर्क-कुतर्क ही। पर सत्यजीत भी क्या कहता? देखा जाय तो उसे खुद भी

नहीं पता था कि उसे अपने ससुराल वालों से क्या शिकायतें थीं? हाँ, बीच-बीच में सत्यजीत उन पर तंज कसते जरूर कहता…''अरे भई, सबके अपने-अपने संस्कार और समझ हैं। शादी हो गयी है, अब ससुरालपक्ष को हमसे क्या गरज. ..? वो कहावत है न…'भइल बियाह मोर करबा का…।''

''आप ये क्यों देखते हैं कि उनका व्यवहार आपके प्रति कैसा है? आप तो सिर्फ ये सोचिए, देखिये कि उनके प्रति आपका व्यवहार, आपके कर्तव्य क्या हैं? रिश्तों में कड़वाहट, मिठास, गरमाहट और ठंडापन तो सामान्य बातें हैं। रिश्तेदारों में आपसी बनना-ठनना तो लगा ही रहता है। गाहे-बगाहे, ऐसी बातें किसके मुंह से सुनने को नहीं मिलतीं? हम सभी, अपने-अपने तरीके इनका सामना करते जूझते, जिन्दगी जी रहे हैं।''

''रिश्ते निभाने, उसे बचाने की जिम्मेदारी सिर्फ एक पक्ष की ही नहीं होती, रिश्ते तो दोनों पक्षों की सहभागिता से चलते, मजबूत होते हैं। चाहें तो आपसी बातचीत, हालचाल लेने के ढ़ेरों बहाने हैं। क्या हम इतने गये-गुजरे हैं?'' कहते सत्यजीत कभी-कभी तैश में भी आ जाता।

''देखिये, उनसे मेरी जब कभी भी बातचीत होती है, वे सबसे पहले आपके ही बारे में पूछते हैं। आपके बाद ही मेरा और बच्चों का नंबर आता है। मुझे तो अच्छी तरह पता है कि उनके दिलों में आपके लिए कितना मान-सम्मान है। पुराने लोग हैं। क्या पता, बेवजह की औपचारिकताओं में यकीन न करते हों? हो सकता है आप जिन बातों को लेकर इतने गम्भीर हैं, वो उनकी नजर में कोई मुद्दा ही न हो। प्रकृति ने हम सभी को एक जैसा नहीं बनाया है। जिस तरह गेहूं, धान, ज्वार, बाजरा, मक्का ये सभी खाद्य फसलें हैं, लेकिन उनकी संरचना, प्रकृति अलग-अलग है, उसी तरह हम इन्सानों की फितरत भी भिन्न-भिन्न होती हैं। आप ये क्यों नहीं समझते कि वक्त के साथ हम-सब की प्राथमिकताएं बदलती रहती हैं। आपकी, उनकी, हम-सब की। मुझे नहीं लगता कि इसके लिए किसी पर दोषारोपण उचित है। कभी-कभी तो मुझे भी लगता है कि उनका व्यवहार मेरे प्रति उपेक्षापूर्ण, पक्षपातपूर्ण है, पर मैं उनकी ऐसी बातों को तरजीह नहीं देती। फायदा भी क्या? हम किसी के सोच- विचार- संस्कारों को नहीं बदल सकते। हाँ, पर उसके साथ सामंजस्य जरूर बिठा सकते हैं। बस्स, यही हमारे अख्तियार में है। आज की तेज रफ्तार जिन्दगी में किसके पास समय है, जो कहीं आए-जाए? सभी की अपनी-अपनी प्राथमिकताएं हैं। हम भी तो अतिव्यस्तता या अन्य कारणोंवश, अपने बाकी रिश्तेदारों के यहां गाहे-बगाहे के आयोजनों में शामिल नहीं हो पाते? फिर, आप भी तो बातचीत की पहल कर

सकते हैं? ये किस शास्त्र में लिखा है कि बातचीत का मंगलाचरण बेटी के ससुरालवाले वाले ही करेंगे?'' सुनेत्रा प्रतिवाद करती।

''चलो मान लेता हूँ मैंने हालचाल लेने, बातचीत की शुरूआत नहीं की, गलती मेरी ही है। पर वो तो मुझसे उम्र, अनुभव, पद, हर मामले में बड़े हैं। छोटे तो नादानी करते ही हैं, पर क्या बड़ों की कोई जिम्मेदारी नहीं बनती?'' कहते सत्यजीत कभी-कभी कुतर्क भी करने लगता।

''आपको तो पता ही है, अम्मा-बाबू, हाई बी.पी. और सुगर के मरीज हैं। ऊपर से कमर और घुटनों में दर्द के कारण, उनसे घर के छोटे-छोटे काम भी नहीं किये जाते। कहीं आ-जा भी नहीं पाते। इसीलिए उन्होंने घरेलू काम-काज वास्ते एक आदमी भी रख लिया है, पर कभी-कभी उसके नखरे, खर्चे आदि सुनती हूँ, तो लगता है कि वो लोग अपना काम-काज खुद ही कर लें, तो ज्यादा अच्छा। अगर सभी रिश्तेदार उनसे ऐसी ही अपेक्षाएं रखने लगें, तो उनका अपना जीवन, उनकी दिनचर्या कैसे चलेगी? अब तो हमें उनकी फिक्र करनी चाहिए, न कि वो हमारी फिक्र करें। मुझे नहीं लगता कि हमें अब इस उम्र में भी ऐसी बहसबाजियों में सिर खपाना चाहिए?''

''लो, भला ये क्या बात हुई? जब मैं तर्क की बात करता हूँ तो तुम्हें बहस लगता है? क्या कभी-कभार के माँगलिक मौकों पर भी मिलना-जुलना नहीं हो सकता?''

''सोचिए, अगर आपके घर पर मेहमानों की आवाजाही लगी रहेगी तो ये हम-सब के लिए कितना असुविधाजनक होगा? आपके बच्चे बड़ी कक्षाओं में हैं। किसी के आने-जाने से उनकी पढ़ाई का भी नुकसान होगा। आपको भी लिखने-पढ़ने का शौक है, जिससे बाजमौंके घर में रिश्तेदारों का आना-जाना आपको बिलकुल पसन्द नहीं। फिर, आपको जिनसे शिकायतें हैं, अगर आप उनके जूतों में पैर डालते, उनके नजरिये से सोचियेगा, तो शायद उनकी मजबूरी ठीक से समझ सकेंगे।''

''ठीक है, मैं ही गलत सोचता हूँ, यही कहना चाहती हो न? पर ये बात तुम्हें भी अच्छी तरह पता है कि मैं उनसे किसी तरह की अपेक्षा नहीं रखता, सिवाय गाहे-बगाहे प्यार के दो मीठे बोल के।''

''देखिये, परिवार-पद-प्रतिष्ठा को देखते हुए रिश्तेदारों संग थोड़ा-बहुत कमी-बेशी तो चलती ही रहती है। ये तो आप भी जानते हैं कि साल के तीन सौ पैंसठ दिन मौसम एक सा नहीं रहता। कभी तेज धूप, लू, कड़ाके की ठण्डक तो कभी घनघोर बारिश का भी सामना करना पड़ जाता है। हमारे अम्मा-बाबू

ने अपनी बेटियों को ऊँची शिक्षा दी। अच्छे संस्कार दिये। जिसका सुफल ही है कि आज आपके परिवार में भी आपके बच्चे सफल और सुसंस्कारित हैं। हर एक कक्षाओं में अव्वल नम्बरों से पास होते हैं। देखा जाय तो माँ-बाप का अपने बच्चों के लिए शायद यही सबसे बड़ा योगदान होता है, जो उनके परिवार में जीवन-मूल्यों को आगे भी उत्तरोत्तर वृद्धि करने में मददगार होता है।''

''वाह! तुम तो कभी-कभी बड़ी समझदारी वाली बातें करने लगती हो?''

''ये तो, आप जैसे उभरते हुए विद्वान साहित्यकार के सान्निध्य का प्रतिफल है।''

''हाँ, ये भी खूब कही। कर लो मजाक। तुम्हारी यही बातें तो मुझे निरूत्तर कर देती हैं...हें-हें-हें।'' उनके बीच बहस प्रायः बिना किसी नतीजे के, ऐसे ही खूबसूरत मोड़ पर आकर खत्म हो जातीं। सुनेत्रा को विश्वास था कि समय सबसे बड़ा मरहम है। समय के साथ सब ठीक हो जायेगा।

सुनेत्रा ने तो सत्यजीत को समझाने के क्रम में एक दिन यहां तक कहा...''आप भले ही मुझसे उम्र में बड़े हैं, पर आपको अक्ल एकदम नहीं है। ये अखबार देखिये...किसी सज्जन द्वारा तीन दामादों के बीच तुलनात्मक रूप से कमजोर आर्थिक स्थिति के चलते उनके ससुराल पक्ष द्वारा, अपने साथ किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के बारे में काउन्सलर से परामर्श माँगा गया है। जरा काउन्सलर के सुझाव तो पढ़िये...'उपेक्षित होना या महसूस करना, ये दो अलहदा बातें हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि आप सिर्फ दूसरों से मान-सम्मान पाना चाहते हों, पर देने के मामले में कंजूसी कर जाते हों? रिश्तों में गरमाहट के लिए आपसी समझ और सामन्जस्य बनाए रखना बहुत जरूरी होता है।'' वाबजूद इन तानों-उलाहनों, यदा-कदा की आपसी खींच-तान, मान-मनुहार के बीच उनकी जिन्दगी अपनी गति से चल रही थी।

सुनेत्रा जानती थी कि शुरुआती दिनों में सत्यजीत ऊँचे ओहदे पर काम नहीं करते थे, जिससे अम्मा-बाबू गाहे-बगाहे, किसी-न-किसी बहाने, बाकी दामादों से सत्यजीत की आर्थिक स्थिति की तुलना करते रहते हैं। हालांकि पदोन्नति के बाद अब सत्यजीत विश्वविद्यालय में प्रशासनिक अधिकारी के पद पर कार्यरत थे।

कालान्तर में सुनेत्रा की तीनों छोटी बहनों की शादियां, अच्छे घरों के कमाऊ लड़कों से हो गयी। उनके ओहदे ऊँचे थे, सो ठाट भी थे। घर-परिवार से भी वो सभी सत्यजीत से बीस नहीं तो...तेइस-चौबीस तो ठहरते ही थे। जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, सुनेत्रा ने महसूस किया कि अम्मा-बाबू, सत्यजीत की

अपेक्षा बाकी अन्य दामादों से कुछ ज्यादा ही घुले-मिले रहते। सत्यजीत से अमूमन कम ही बात-व्यवहार रखते। सत्यजीत भी शनैः-शनै अपनी दुनिया में मगन होते चले गये। स्कूल-कॉलेज के दिनों में लिखने-पढ़ने का जो हल्का-फुल्का शौक था, उसे निखारने में वो जी-जान से जुट गये। इन सब का नतीजा यह रहा कि अगले कुछ ही वर्षों में उनके दो कहानी संग्रह, एक कविता संग्रह प्रकाशित हो गये, जो पाठकों, समीक्षकों के बीच खूब मकबूल भी हुए। इस तरह सत्यजीत ने शनैः शनैः पढ़ने-लिखने की दुनिया को पूरी तरह आत्मसात कर लिया।

''अरे! सुनेत्रा, चावल में से कंकड़-पत्थर आदि छांट-बीन लिया हो तो नीचे आ जाओ। हण्डे में अदहन का पानी खौल रहा है, और नीचे आकर देखो तो कौन आया है?'' अम्मा ने नीचे आंगन से आवाज दी तो सुनेत्रा की तंद्रा भंग हुई, जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरते नीचे आयी। सामने आंगन में अम्मा-बाबू जी के सामने मचिये पर सत्यजीत को बैठे, हँस-हँसकर बतियाते देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न था। वो तो मारे खुश के पागल हुई जा रही थी।

''अरे! आप कब आये? क्या ऑफिस से छुट्टी मिल गयी?''

''बस्स, अभी आया हूँ। दस मिनट हुए।''

''वाह! लेकिन अचानक कैसे?''

''एक्चुवॅली यहां आने के लिए जब मैं बॉस के पास छुट्टी माँगने गया तो, उन्होंने ही सुझाव दिया कि बनारस रिजनल ऑफिस में कुछ जरूरी काम है। आप ही चले जाइये। विभागीय गाड़ी लेते जाइये। दिन में काम निबटाइयेगा, फिर शाम को शादी अटैण्ड करते, अगले दिन वापस आ जाइयेगा।'' सुनेत्रा, सत्यजीत की बातें मंत्र-मुग्ध सी सुनती रही। सुनेत्रा को ये भी अंदाजा था कि सत्यजीत की ये बातें, बगल बैठे उसके अम्मा-बाबू भी सुन रहे हैं, जो शादी में सत्यजीत के न आ पाने के कारण उसे सुबह से दर्जनों बार कोस चुके थे।

''ठीक है, ये सब बातें बाद में हो जायेंगी। आपने सुबह से कुछ खाया-पिया भी तो नहीं होगा? आप तो वैसे भी बाहर का कुछ खाते-पीते नहीं। मैं अभी खाना लगा देती हूँ।''

''हाँ, भूख तो बड़े जोर की लगी है। पर दो जगह लगा दो। बाहर गाड़ी में ड्राइवर भी बैठा है।''

''ठीक है, आप हाथ-मुंह धोकर आ जाइये। मैं खाना लगाती हूँ।''

'...धीरे-धीरे मचल ऐ दिले बेकरार कोई आता है...' गुनगुनाते हुए, सुनेत्रा भोजन परोसने की तैयारी में व्यस्त हो गयी। ''जिन्दगी और कुछ भी नहीं, तेरी मेरी कहानी है... इक प्यार का नगमा है...''

“मुझे कुछ पूछना है?” भोजन कर लेने के बाद, बाहर बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे, सत्यजीत ये गाना गुनगुना रहे थे कि अचानक पीछे से आकर सुनेत्रा ने पूछना चाहा।

“हाँ, बोलो?”

“ड्राइवर तो बता रहा था कि आप यहां किसी ऑफिशियल काम से नहीं आये हैं। प्राइवेट गाड़ी बुक कराकर, सिर्फ ये शादी ही अटैण्ड करने के लिए आये हैं?”

“अरे भई! तत्काल रिजर्वेशन नहीं मिला, तो सिर्फ यही एक उपाय बचा था।”

“और...बच्चों को किसके भरोसे पर छोड़ कर आये हैं?” सुनेत्रा ने बनावटी गुस्सा दिखाते पूछा।

“गांव से भतीजे को दो दिन के लिए बुलाया है। दोनों बच्चे जब स्कूल गये होंगे, तो वो दिन-भर घर में रह लेगा। बिटिया तो हल्का-फुल्का खाना बनाना जानती ही है, फिर बेटे और भतीजे की मदद भी तो उसे मिल जायेगी। वैसे भी आजकल के बच्चे बहुत स्मॉर्ट हैं। ‘फिकर-नॉट, टेन्शन नहीं लेने का पापा...।’ चलते वक्त बेटे ने यही कहते मुझे आश्वस्त भी किया था। फिर शादी सम्पन्न होने के बाद, हम कल दोपहर तक वापस भी तो चले चलेंगे...‘भेरी सिम्पल’। लोकल शादी-बारात का यही तो फायदा होता है। दोपहर तक सारे मेहमान, अपने-अपने घर।” सत्यजीत ने तनिक शरारती अंदाज में कहा।

“अब मैं कैसे कहूं कि शादी में आकर, आपने मेरा मान रख लिया। मुझे आप पर गर्व है। अच्छा, अब बारात निकलने वाली है। सभी लोग तैयार हो रहे हैं, आप भी जल्दी से तैयार हो जाइये।”

“अरे भई! दामाद हूँ इस घर का। अब क्या कभी-कभार रिसियाने का भी हक नहीं? पर, तुम तो अच्छी तरह जानती हो, मैं किसी का दिल नहीं दुखाना चाहता। मैं भी हाड़-माँस का बना इन्सान हूँ। भावनाएं, इच्छाएं मेरी भी हैं। फिर, तुम्हारी मान-मर्यादा बनाये रखने का फर्ज, मेरा भी तो है। हाँ, लेकिन जल्दी-जल्दी में कोई तोहफा नहीं खरीद सका। ये कुछ रूपये हैं, इन्हें एक लिफाफे में रख कर अपनी अम्मा को, हमारी तरफ से न्यौते में दे देना।” सत्यजीत ने जेब से पर्स निकालते हुए कहा।

“आप इस शादी में शामिल होने के लिए स्पेशल-टैक्सी बुक कर के आये, मेरे और अम्मा-बाबू के लिए इससे बड़ा और कोई तोहफा हो ही नहीं सकता।” सुनेत्रा ने सजल नयन कहा।

''तुम भी न...बड़ी वो हो। अरे भई! तुम्हें यहां आये छह दिन हो गये थे। तुम्हारे बिना घर काटने को दौड़ता है। घर के हर कोने-अंतरे में तो तुम्हारी उपस्थिति है। ऐसे में तुम्हें घर में न पाकर मुझ पर क्या बीत रही होगी, ये तुम कठकरेजी-पथरकरेजी क्या समझोगी? तुम्हें तो जैसे मेरी और बच्चों की फिक्र ही नहीं है। तुम तो यहाँ मायके में अपने अम्मा-बाबू, बहन-बहनोईयों संग गुल-गपाड़ा बतियाती, मस्ती कर रही हो। लेकिन मुझे तो तुम्हारी फिक्र है ना! तुम्हारे यहाँ आने के बाद, परसों जब मैं बेडरूम में लेटा था, तो अचानक मेरी निगाह सामने ड्रेसिंग-टेबल पर रखी हम दोनों की एक पुरानी तस्वीर पर चली गयी। याद है...जब हम एक-डेढ़ वर्ष पहले, अपने एक रिश्तेदार के रिशेप्सन में गये थे, तभी हमने वो सेल्फी ली थी। उस तस्वीर में हम दोनों इतने सुंदर और मुस्कुराते दिख रहे हैं कि उसे देखते तुमने कहा भी था कि ''हम सदा ऐसे ही मुस्कुराते, साथ-साथ बने रहेंगे। अगर हम किसी बात पर कभी नाराज भी हुए, तो ये तस्वीर हमें खुद-ब-खुद एक-दूसरे के मान-मनौव्वल के लिए मजबूर कर देगी।'' बीती रात फिर मेरी नजर उस तस्वीर पर चली गयी, और आज मैं यहां...तुम्हारे सामने।'' सत्यजीत ने लगभग मजाहिया मूड में, किसी फिल्मी हीरो की भांति अपने दोनों हाथ सुनेत्रा के सामने फैलाते हुए कहा।

''वाह! फिर तो हमें उस तस्वीर का शुक्रिया अदा करना चाहिए। चलिए, कम-अज-कम लिखने-पढ़ने का आप पर इतना तो 'साइड-इफेक्ट' हुआ कि अब आपको थोड़ी-बहुत अक्ल आ गयी है, तभी तो आप समझदारी भरी बातें करने लगे हैं...हें-हें-हें। मुझे सचमुच आप पर गर्व है। आज आपने मेरा मान रख लिया।''

''मेरा नहीं...हमारा मान कहो। अरे भई! तुमने कहा जो था...'मेरे आने से चार लोगों के बीच हम सब का मान-सम्मान ही बढ़ेगा।' तभी तो, तुम्हारी इच्छा को आदेश मानते, शिरोधार्य करते, तुम्हारे सामने हाजिर हो गया। वैसे, यहां न आता...तो जाता भी कहां...? वो कहावत है न...'भइल बियाह मोर करबा का...?' हें-हें-हें।'' सत्यजीत की बातें सुन सुनेत्रा लजा सी गयी। उसकी आँखें खुशी से भर आयीं।

'घोड़ी पे हो के सवार...चला है दूल्हा यार...'...अहाते के बाहर बैण्ड-बाजा वालों ने ये सार्वकालिक मधुर धुन छेड़ दी थी।

—5/348, विराज खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ

कहानी

औलादों वाली माँ

श्यामल बिहारी महतो

आज फिर उनकी उपस्थिति पर उसने आपत्ति जताई थी- 'ये यहां भी पहुंच गया है। आखिर यह है किस मर्ज की दवा...?'

उस वक्त मैंने उससे विशेष कुछ नहीं कह कर-केवल इतना ही कहा था- 'उनके बारे में जानोगे तो तेरे पांव तले की जमीन खिसक जायेगी, फिर भी बताऊंगा, पर कार्यक्रम के बाद रुकना, कहीं जाना नहीं..।'

यह एक प्रखंड स्तरीय सालाना विचार गोष्ठी थी विषय था- 'सामाजिक संवेदना का क्षरण'। इसमें क्षेत्र के तमाम बुद्धिजीवी आमंत्रित थे। उन्हीं में संजय बाबू भी बतौर अतिथि शामिल थे। रणधीर और संजय बाबू एक ही गांव से थे। लेकिन लगता दोनों दो अजनबी हैं। रणधीर की बातों से लगता दोनों के बीच एक खाई है जो काफी गहरी है। रिश्ते में चाचा-भतीजा थे, पर रणधीर में भतीजा वाली फीलिंग्स नदारद थी। उल्टे संजय बाबू के नाम से ही वह लहर उठता था- शायद मन में कोई खुंदक रही हो, लेकिन रणधीर के प्रति संजय बाबू के मुंह से कभी कोई अनुचित शब्द आज तक मैंने नहीं सुना था। जब भी वह इसके बारे कुछ कहते- रणधीर बाबू ही के मुंह से निकलते सुना। वहीं रणधीर संजय बाबू को लेकर बार बार आपत्ति जताता रहा है, कई बार इसकी वजह जानना चाहा पर कारण कभी बताया नहीं उसने।

उस दिन करम महोत्सव में उन्हें मंचासीन देख वह एकदम से असहज हो उठा था। बिफरते हुए कहने लगा- 'अरे भाई यह आदमी अपने किस महान

कार्य की वजह से मंच पर विराजमान है! मैं तो अपनी न्यूज में इसका नाम तक न लिखूंगा। क्यों लिखूं भला ? यह कोई सेलीब्रिटी है, कोई राजनेता है या...!'

'यह एक बुद्धिजीवी है.. लेखक है!' समझाने की लहजे में उनसे कहा।

'क्या कहा...? लेखक और ये..? भांग खाये हो क्या तुम..?'

उसका यह कहना मुझे बहुत बुरा लगा। रणधीर लगातार संजय बाबू का अपमान ही नहीं तिरस्कार भी किये जा रहा था। जी चाहा उसे फटकार लगा दूं फिर सोचा- चलो इसी बहाने इसके अंदर का गुबार और गंदगी को बाहर आने देते है। उसका बकना बंद नहीं हुआ था- 'अगर इसके जैसा आदमी लेखक होने लगे तो गली-मोहल्लों में कुकुरमुत्तों की शक्ल में लेखक मिलने लगेंगे..! अरे ये जो रोज चार बजे भोर गाय-बैलों को चराने जंगल ले जाता हो, बकरियों के लिए हर दिन माथे पर पाल्हा ढोकर लाता हो, सावन में जो खुद हार जोतता हो ...और बाकी समय आफिस जाकर कलम घिसता हो फिर यह लिखता कब है ? वाल्मीकि की तरह कौन-सा ग्रंथ लिख दिया इसने, जो तुम लोगों ने इसे मंच प्रदान कर दिया है...? लेखक कह कहकर इसे सर पे बिठा लिया है...!'

'एक नहीं दो नहीं, बल्कि चार किताबें लिख चुके हैं। इन्होंने....!'

'क्या कहा चार-चार किताबें.. किसी की चोरी ही की होगी इसने...!'

'हां हां चार किताबें- पांचवीं प्रेस में छप रही है!' मैंने रणधीर को अधीर कर देना चाहा था- 'तुम अखबार में लिखते हो, छपता है पर कितने लोग अखबार पढ़ते हैं, और कितने लोग तुमको जानते हैं गांव और थाने तक! ? ये देश-परदेश की पत्रिकाओं में लिखते हैं-छपते है, पूरे देश-परदेश के पाठक इनको जानते हैं.. और सुनो, तुम्हारे बारे में भी इन्होंने एक कहानी लिखी है- 'औलादों वाली माँ'। कहानी तो मैंने पढ़ी नहीं है परंतु प्लॉट जो सुना था- तुम पर फिट बैठता है। हालांकि कहानी तुम्हारी हो सकती है और नहीं भी हो सकती है या फिर हममें से किसी की भी हो सकती है तो सुनो कहानी का प्लॉट- औलाद ही एक दिन औलादों वाली माँ को घर से बाहर हो जाने पर मजबूर कर देती है। वो बेटी-दामाद के घर में जाकर शरण लेती है। पति की मृत्यु उपरांत अनुकंपा के आधार पर नौकरी मिली थी रीता देवी को, तब दोनों बेटों की उम्र आठ और दस साल की थी। अभी उसका दामाद ही उसके लिए बैसाखी बना हुआ था। वही हर दिन सुबह उसे काम पर ले जाता है और दोपहर को ले आता है। और उसके दोनों बेटे मौज कर रहे थे। पर देखो उस माँ की ममता

को, हर माह दोनों बेटों को दस-दस हजार रुपए गुजारे के रूप में देती चली आ रही थी। जीवन में कभी ऐसे दिन भी देखने को मिलेगा रीता देवी ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। जो औरत कहीं मर-मेहमानी में घर के दरवाजे के बाहर कदम रखने के पहले बेटा पुतोहू से यह पूछा करती थी कि घर में कार्ड-निमंत्रण आया था या नहीं- वही औरत बेटी-दामाद के घर में रहकर काम करने जाने के लिए खुद को कैसे तैयार की होगी, रीता देवी से बेहतर कोई कह नहीं सकता था। उस दिन को वह मरते दम तक भूल नहीं सकती। शाम को घर में काम को लेकर दोनों बेटों में झगड़ा हो गया। बड़े बेटे का कहना था कि छोटका घर का काम नहीं करता है और दिन भर पत्रकार बना फिरता है, वहीं छोटका का आरोप था कि दादा घर का काम छोड़ दिन भर मोदीआइन औरतों के पीछे पड़ा रहता है। बात इतनी बढ़ी कि रात को किसी ने खाना नहीं खाया। सुबह तो सब में शनि सवार हो गया। माँ के लिए खाना नहीं बना तो नहीं बना। अभी तक सुबह खाना छोटकी पुतोहू बनाती थी और माँ को काम पर छोड़ने बड़ा बेटा जाता था। उस दिन बड़ा बेटा अड़ गया, बोला- 'काम पर जाओ चाहे न जाओ, अब यह काम हमसे नहीं होगा।'

'चपरी में चोरी हो गयी है, रिपोर्ट लेने मुझे वहां जाना है। और यह लाने-ले जाने वाला काम मुझसे नहीं होगा ..!' कह वह भी घर से निकल गया।

रीता देवी कपार पकड़कर आंगन में ही बैठ गई थी। जब याद आया उसे कि काम पर जाना है, तो चप्पल पहने और वह भी बिना खाये पिये चल दी। कोलियरी घर से पांच किलोमीटर दूर। भारी शरीर। चलते-चलते आधे रास्ते में दम फूलने लगा। बैठी फिर चली, फिर बैठी फिर चली। इस तरह हाजरी घर आधा घंटा लेट पहुंची। हालांकि हाजरी तो हाजरी बाबू ने बना दी, पर चार बातें भी सुना दी- 'आज बना दी हमने, रोज-रोज ऐसा नहीं होगा...!'

लौटने के वक्त गांव के एक देवर ने बिठा लिया तो मरने से बची। घर में तनाव कम नहीं हुआ। दोनों बेटे अपने मन की करते रहे। दो दिन काम नागा चला गया। उसे क्रोध और चिंता दोनों हो रही थी, पर बेटे सुनने-मानने को तैयार नहीं। बेटी दामाद को बुलाया, पर कोई लाभ नहीं। न पत्रकार आगे आने को तैयार न बड़का मानने को राजी।

'चलिए, हमारे यहां रहिए। देखता हूँ कैसे रास्ता निकलता है।' दामाद ने कहा।

भारी मन से रीता बेटी दामाद के साथ चली गई थी। तब से वहीं थी! फाइलेरिया रोग से पीड़ित रीता देवी के साथ जो कुछ हो रहा था और जिस तरह की जिंदगी वह गुजार रही थी, दो-दो बेटों की माँ के लिए बड़ी पीड़ादायक थी। फाइलेरिया रोग ने दोनों पैर और छाती को काफी क्षति पहुंचाई थी। पैर हाथी जैसे मोटे और छाती कोहंडे के समान हो चुके थे फिर भी वो उफ न करके काम पर आ जा रही थी। दो-दो बेटे क्या इसी दिन को देखने के लिए पाल पोसकर बड़ी की थी उसने कभी सोचा करती, परन्तु कहती किसी से नहीं। फिर भी दस-दस हजार रुपए गुजारे के लिए दे रही थी, यह सोच कर कि जो काम उसके लिए बेटी दामाद कर रहे हैं वो दिन आवे जब ये काम उसके लिए बेटा पुतोहू करें। पर कपार फूटा है उसकी जो उसका दुख बेटों को दिख नहीं रहा था। उल्टे माँ बहुत-कुछ देख सुन रही थी। सहारा तो बेटों को बनना चाहिए था माँ का। लेकिन माँ ही सहारा बनी हुई थी बेटों का। कहानी यहीं खत्म नहीं होती है। बड़ा बेटा जो अब तक एक नंबर का जुआरी-शराबी और अय्यास बन चुका था, माँ के दिये उसी दस हजार से गांव की आठ-दस औरतों के साथ अवैध संबंध बना रखा था। इससे रीता देवी का मन आहत था। और किसी अज्ञात भय से डर भी रही थी। इतना दुख तो घर छोड़ने के समय भी नहीं हुआ था। इस तरह अवैध संबंधों का अंत को भला उससे बेहतर कौन जान सकता है। पति जब नौकरी में था। तो इसी तरह एक बंगालन लड़की के चक्कर में पड़ गया था। वो समझ रहा था लड़की उससे प्यार करती है पर उसे यह नहीं पता था कि उस जैसे दो-चार और के साथ लड़की का चक्कर है। सीधा-सीधा देह और दाम का खेल था। जब जाना तो जान से हाथ धोना पड़ा। एक दिन कोलियरी चेक पोस्ट के नजदीक नाले में बोरी में बंद मिली थी लाश उसकी। तब तक चार बच्चे रीता देवी की गोद में डाल चुका था उसने। और तभी से रीता देवी जीवन के साथ संघर्षरत थी। उसी का एक बेटा गांव में खुद को पत्रकार कहते-जतलाते फिरता था और उसे पता नहीं था कि खुद उसकी माँ एक समाचार बन चुकी है...!'

संजय बाबू को एक जगह और कहीं जाना था। संचालनकर्ता ने दो के बाद ही उन्हें अपना विचार रखने के लिए आमंत्रित किया तो उन दोनों का ध्यान भंग हुआ। रणधीर उठकर वहां से चल दिया था।

'आज का जीवन बड़ा कठिन हो गया है!' -संबोधन के बाद संजय बाबू ने कहना शुरू किया- 'जीवन की भागदौड़ में मनुष्य को यह पता नहीं चल रहा है कि कौन कहां पीछे छूट गया और कौन उससे आगे निकल गया। सब इसी आपा धापी में लगा हुआ है। लोग जीने से अधिक दिखावे के मुरीद होते जा रहे हैं। इसके लिए भी उन्हें हर पल संघर्ष करना पड़ रहा है। ऐसे में मीडिया वाले पत्रकार और लेखकों का जिम्मेवारी काफी बढ़ जाती है। एक ओर जहां पत्रकार समाज का आईना होता है, वहीं लेखक समाज के लिए दगरीन का काम करता है। अगर पत्रकार बुराई के खिलाफ नहीं लड़ता-लिखता है और जिसमें उसका ही बदरंग चेहरा नजर नहीं आता है तो उस आईने को तोड देना चाहिए और हल थाम लेना चाहिए ताकि जीवन दर्शन को समझ सके। ठीक उसी प्रकार अगर लेखक की लेखनी में वो धार नहीं है जिसके दम पर कभी कई देशों में राज्य क्रांतियां हो चुकी है तो उसे लिखना छोड़ किसी कारखाने का मिल मजदूर बन जाना चाहिए। जहां लालच का वास, वहां सब बकवास.. धन्यवाद.!'

अर्जेंट कॉल का बहाना कर रणधीर आधा घंटा पहले जो निकला था, अभी तक सभा स्थल में लौटकर नहीं आया था। लगा खुद की कहानी की बात सुन वह डर गया था। कहावत है- चोर का चेहरा हमेशा डरा-डरा रहता है। निर्भय की हँसी वह कभी हँस नहीं सकता है। वही हाल रणधीर का था।

सभा समाप्त हो चुकी थी। अतिथि जा चुके थे। मैं अब भी रणधीर का इंतजार कर रहा था। उसे यह बताना चाह रहा था कि औलादों वाली माँ केवल तुम्हारी ही माँ नहीं है ...पर लौटकर आवे तब न!

रणधीर लौटकर तो नहीं आया। उसकी जगह एक सनसनी खेज खबर आई। सुनकर ही मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो गए थे- रणधीर की माँ रीता देवी ने आत्महत्या की या हत्या कर दी गई! उसके गांव में हल्ला मचा हुआ था।

पुलिस पहुंच चुकी थी। जांच पड़ताल जारी थी ।

'मैं तो कहती हूँ माँ को यहीं ले आओ, और नौकरी देने के लिए राजी कर लो!'

'आजकल बदली में नौकरी मिलती कहां है?'

'सुनते हैं मरने के बाद नौकरी मिल जाती है!'

कुछ दिन पहले रीता देवी को उसका बड़ा बेटा खिरू यह कहते हुए ले आया था कि- 'माँ माफ करो, जो हुआ सो हुआ अब घर चलो, गांव में

बड़ी बदनामी हो रही है। घर से ही काम पर आना-जाना करना। अब हम तुम्हें कोई तकलीफ होने नहीं देंगे!'

उसके ठीक साप्ताह दिन बाद खिरू चुपके से आफिस हो आया था। 'माँ ने कहा है' बोल के आफिस के बड़ा बाबू से सर्विस सीट में किसका-किसका नाम दर्ज है, देख आया था। और आज वही माँ पइन झांका रस्सी से घर के पिछवाड़े लटकी मिली थी।

माँ की हत्या के आरोप में शाम को पुलिस ने खिरू को गिरफ्तार कर लिया!

—मुंगो, बोकारो, झारखंड

कसक

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-0-3

संस्करण : 2014, मूल्य : 180/-

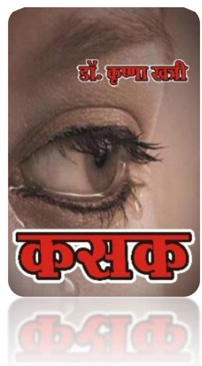

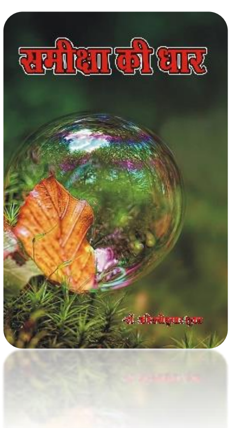

समीक्षा की धार

डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल

आईएसबीएन : 978-81-929060-3-4

संस्करण : 2014, मूल्य : 180/-

कहानी

कोरोना बनाम शादी

डॉ. रंजना जायसवाल

वसंत की गुलाबी ठंड बसंती बयार बह रही थी...खेत-खलिहान से लेकर बाग-बगीचे भी फूलों से लदे पड़े थे। प्रकृति की तरह मन भी पीताम्बरी हो रहा था। इस खुशगवार माहौल में न जाने कितने लड़के और लड़कियों की शादियाँ भी तय हुई। हमारे पड़ोसी मिश्रा जी ने लगे हाथ बसन्त पंचमी के शुभ दिन अपनी बिटिया की शादी तय कर दी। सब कुछ इतना जल्दी-जल्दी हुआ कि मिश्रा जी की बहिन और बहनोई इस शुभ मौके पर भी न पहुँच सके। खैर शादी में बुलाने का लॉलीपॉप दिखाकर किसी तरह उन्हें शांत किया गया।

इस खुशी के माहौल में कही दूर देश में... लोग विचित्र बीमारी कोरोना से जूझ रहे थे।हमारी जिंदगी में कुछ भी नहीं बदल रहा था पर कुछ था जो जल्दी ही बदलने वाला था।जल्दी ही वो समय आने वाला था कि हम जहाँ थे वही के रह जाने वाले थे। कदमताल तो करेंगे लेकिन एक कदम आगे तो चार कदम पीछे। देखते-देखते चीन के इस कोरोना वायरस ने दबे पाँव हमारे देश में भी अपने पैर पसार लिए...अब होना क्या था शादी-विवाह तो क्या जिंदगी भी ठप।जो जहाँ था वही का होकर रह गया। मिश्रा जी परेशान बिटिया की शादी सर पर है२ अब सब काम कैसे होगा।

दुनिया का हर लड़का और लड़की अपने विवाह को लेकर कुछ सपने संजोता ही है, हजारों ख्वाहिशें होती है उनके मन में इस खास दिन के लिए पर... मिश्रा जी की बिटिया का सपना इस कोरोना वायरस ने चकनाचूर कर दिया।

बिटिया के ससुराल वाले नहा-धोकर पीछे पड़े थे- 'मिश्रा जी! शादी-ब्याह का मामला है देख लीजिए। देर करने से क्या फायदा।'

बिटिया के होने वाली ससुर की बात को सुनकर मिश्राइन भड़क गई- 'अनुरोध कर रहे हैं कि धमका रहे हैं!'

मिश्रा जी ने मिश्राइन को समझाने की कोशिश की- 'अरे भाग्यवान! भाई माना कि शादी सात जन्मों का बंधन है...पर ये जो नौ महीने से बिना बात के हम बन्धन में फँसे पड़े हैं उसका क्या...एक महामारी में दूसरी महामारी।'

मिश्राइन तो पहले से ही भड़की हुई थी। मिश्रा जी की बात सुनकर और भी भड़क गई- 'क्या कह रहे हो मिश्रा जी! तुम तो उम्र से पहले ही बूढ़ा गए हो। शादी दो आत्माओं का मिलन, दो परिवारों का मिलन है और तुम उस मुये कोरोना से तुलना कर रहे हो।'

मामला बिगड़ते देख मिश्रा जी के हाथ-पाँव फूल गए, मिश्राइन जी के तेवर कुछ ठीक नहीं लग रहे थे। मिश्रा जी ने बात संभालते हुए कहा- 'अरे मिश्राइन! काहे अपना बी पी बढ़ा रही हो। तुम ही बताओ शादी कि ऐसी क्या जल्दी पड़ी थी, अगर एक साल देर से ही हो तो कौन सा आकाशगंगा में से नौ ग्रह में से एक कम हो जायेगा या...कौन सा बच्चों की जिंदगी की पोथी में से एक पुण्य कम लिखने से रह जायेगा। अलबते, बाप के टेलीफोन का बिल जरूर बढ़ने लगा है।'

अब मिश्रा जी बेचारे क्या कहते उनकी लाडली अपने सोना, बेबी, हन्नी से रोज दो-दो घण्टे फोनियाती है। कोरोना के चक्कर में न जाने कितनी पापा की परियों ने घर में आफत जरूर मचा रखी है। ऊपर से कोई न कोई रोना लेकर वो रोज हाजिर ही रहती है- 'डैड देखो न सोच रही था कि अपनी शादी में जीरो फिगर बनाकर अनीश मेहरोत्रा की डिजाइनर गाउन पहनूँगी.. पर मम्मी के चक्कर में सारा फिगर ही बर्बाद हो गया।'

मिश्रा जी सोचने लगे, एक तो इन बच्चों का ये समझ में नही आता, जीते जी हँसते-खेलते बाप को मरा घोषित करने का ये कौन सा तरीका है। बेचारी माँ कोरोना के चक्कर में कांता बाई बनी टहल रही थी...पर बिटिया ने खड़े-खड़े धुल दिया। मम्मी की भी क्या गलती ...सोची बिटिया चार दिन की

मेहमान फिर तो अपने घर ही जाना है पता नहीं क्या मिले क्या नहीं२ ये भारतीय माँओ का समझ नहीं आता बेटी का ब्याह करते वक्त ऐसी परेशान रहती है जैसे बिटिया को ससुराल नहीं सियाचिन बार्डर भेज रही हो। रूठी बिटियों ने मान-मनुव्वल के चक्कर में एक-दो डिजाइनर कपड़े इसी बहाने झटक लिए...

मिश्रा जी एक दिन यूँ ही खलीहर बैठे थे। बैठे-बैठे सोचे चलो भई एलबम ही देखकर पुरानी यादें ताजा कर ली जाए...न जाने क्यों एक फोटो पर आकर उनकी आँखें टिक गई। मिश्राइन के माता-पिता के साथ कि थी जब पूरा परिवार हरिद्वार घूमने गए थे। कोरोना काल और लहक डाउन सच पूछिए जब भी ये नाम सुनते हैं तो सास-ससुर की जोड़ी सी फीलिंग आने लगती है।मिश्रा जी के चेहरे पर एक कुटिल मुस्कान आ गई, मिश्राइन बड़े गर्व से सबको बताती थी कि उनकी अम्मा बारह महीनों चाहे कितना भी जाड़ा हो ,गर्मी पड़े ओला गिरे ...पर उनका नियम आखिरी सांस तक नहीं टूटा। अब मिश्रा जी क्या कहते कि उनका अम्मा कितना पंचायती है। किस की बहू सास को खाना नहीं पूछती, किसी का बेटा बड़ी कम्पनी में नौकरी पा गया...इन सब की जानकारी तो नदी स्नान से पहले, दौरान और बाद कि गम्भीर चर्चा से ही हो सकती थी। पूजा की पूजा और जानकारी की जानकारी...पर इस कोरोना के चक्कर में पूजा स्थल भी बन्द। ग्रहण के समय तो पूजा स्थलों को बंद होते देखा और सुना था पर हमारे पालनहार हमारे तारणहार भी कन्फ्यूजन में थे ...भई ये कौन सा ग्रहण है जो खत्म होने का नाम ही ले रहा।

हमारे नेटवर्क ने अभी-अभी जानकारी दी कि एक दिन सभी धर्मों के माईं -बाप ने उस दौरान एक आकस्मिक बैठक भी कर ली।

'अचानक से भूलोक पर क्या हो गया ...सबके दुख, इच्छाये,सपने अचानक से मिट गए अब तो हमारे चौखट पर कोई माथा टेकने भी नहीं आता. ..कोई फरियादी नहीं..कोई दुखियारी नहीं।'

अब धरतीवासियों के लिए ही कोरोना एक नया शब्द था तो अपने पालनहारों को क्या समझाते। भक्तों की राह तकते-तकते उनकी आँखें भी पथरा गई...पर ये मुआ कोरोना नहीं गया।

कहते हैं गम्भीर विषयों पर विचार करना हो...गुसलखाने में घुस लो, कोई डिस्टर्ब करने वाला भी नहीं। मिश्राइन के प्रकोप से बचने के लिए मिश्रा जी ने गुसलखाने की राह पकड़ ली।मिश्रा जी सोच में पड़ गए वैसे मिश्राइन कल रात गलत तो नहीं कह रही थी कि गाँव-देहात में न सेनेटाइजर और न ही हाइजीन का चक्कर मास्क तो बहुत दूर की बात है, उनको तो कोरोना-फरोना नहीं पकड़ रहा। क्या कोरोना शहर में सफाई पसंद सुफेस्टी केटेड लोगो को ही ढूंढ-ढूंढ कर पकड़ रहा है।

हमारे यहाँ एक ग्रामीण अंचलों में मेहमानों के लिए एक कहावत है ...पहले दिन पहुना (मेहमान), दूसरे दिन ठेहुना (घुटना), तीसरे दिन केहुना (कोई नहीं)...पर ये मेहमान न जाने किस श्रेणी का है जो निर्लज्जों की तरह टिक ही गया है, जाने का नाम ही नहीं ले रहा...पर एक बात तो माननी ही पड़ेगी जिस सर्दी-जुखाम को कभी समाज में और बीमारियों की तरह इज्जत नहीं मिली थी ...इस कोरोना ने ऐसी इज़्जत दिलायी कि पूछिये मत। कभी भरी महफिल छींक और खाँसकर तो देखिए...लोग रास्ता खुद ही खाली कर देते हैं। बड़ी वी.आई.पी. वाली फीलिंग आती है।

इस दौरान हमारे वो... बड़े वाले नेता जी...वही जो कुर्ते की मैचिंग सदरी पहनते हैं२बिना नागा आते और लहक डाउन का एक बम गिराकर चल देते। वैसे घर मे हमारी लक्ष्मियाँ समय-समय बड़े स्वादिष्ट पकवान परोस रही थी पर जिन कुल देवताओं और कुल देवियों की इस दौरान शादियाँ होनी थी वो बेचारे त्रिशंकु बनकर रह गए। समधी साहब का बार-बार फोन आ रहा था, मिश्रा जी अजीब असमंजस में थे...करे तो क्या करे।

एक तो इस साल लग्न कम... ऊपर से कोरोना, बची-खुची कसर सरकार ने पूरी कर दी। शादी-विवाह जैसे समारोह में पहले पचास,फिर सौ फिर दो सौ और फिर से सौ की संख्या कर दी। सरकार का भी समझ नहीं आता शादी-विवाह के लिए सौ और धरना प्रदर्शन के लिए नो लिमिट...भई वाह। मिश्रा जी एक दिन बड़े दुखी होकर बोले,

'हमारे यहाँ मोहल्ले में अगर कोई जोर से छींक दे तो पचास लोग तो ऐसे ही खड़े हो जाये।'

कह तो सही ही रहे थे। सच बता रहे बड़ी अजीब सी फीलिंग आती थी...पचास वाले में तो हम होंगे नहीं पर कम से कम सौ वाले में तो होंगे ही. ..पर अब ये पता नहीं कि हम एक नम्बर पर होंगे या निन्यानबे। ये संख्या का सवाल ट्रिग्नोमेट्री के सवाल से भी ज्यादा कठिन हो गया था।

मिश्रा जी का धैर्य की सीमा जवाब देने लगी थी- ''भाभी जी!!!..अब इस सौ की संख्या में हलवाई, वेटर, नाऊ, पंडित जी साज-सज्जा और बैंड बाजा वाले भी होंगे कि नहीं ...ये पता लगाने के लिए भी आदमी दौड़ाना पड़ता है।'

हम तो पहले से ही दुखी और असमंजस की स्थिति में थे कि मिश्रा जी की बिटिया की शादी में हम को बुलाया भी जाएगा कि नहीं। ऊपर से लोगों ने भी इस मौके पर आग में घी डालने का पूरा काम किया... हमारे दूर के मित्र ने सोशल नेटवर्क पर एक सन्देश डाला...ईश्वर की असीम अनुकम्पा जगतजननी माँ विंध्यवासिनी के आशीर्वाद और मेरे पिछले जन्म के पुण्य कर्मों के कारण तीन शादियों के मेहमान सूची में मेरा नाम टहप पचास में आ गया है। सच बता रहे ऐसी फीलिंग आ रही थी कि बस प्रशासनिक सेवा की प्रवेश परीक्षा का अंतिम चरण में बस हमारा चयन होते-होते रह गया।जिन लोगों को कार्ड मिला वो तो चौड़े हुए घूम रहे थे पर जिन्हें नहीं मिला...सस्ते में निपट लिए२ पैसा बच गया...जैसे संवादो से कोरोना को मन ही मन कोसते रहे।

एक दिन दूध की थालियाँ खरीदते वक्त मिश्रा जी हमारे पतिदेव से टकरा गए। दुआ-सलाम के बाद बिटिया की शादी का भी जिक्र छिड़ गया।

'मिश्रा जी!!!...बिटिया की शादी की तैयारी कैसी चल रही है। अब तो सरकार ने भी लिमिट कर दी है,चलिए अच्छा है एक तो कमाई-धमाई नहीं है, इसी बहाने कुछ पैसा तो बचेगा।'

हमारे पतिदेव भी बोलने से पहले एक बार भी नहीं सोचते, मिश्रा जी तो पहले से ही जले बैठे थे।

'कितना पैसा बचा ये तो लड़की वाले ही जानते हैं... जानते हैं जायसवाल जी...लड़के वाले भी कम नहीं है बोले- भाईसाहब तीन सौ बाराती

की बात हुई, अब तो सरकार भी पाबंदी लगा दी है। बजट तो आपका पहले से ही तय था...ऐसा कीजिए अपनी बिटिया के नाम की एफ डी कर दीजिए।'

बिटिया की विदाई से पहले ही मिश्रा जी की आँखों से आँसू छलक आये। आखिर ये कैसे रिश्तेदार थे जो रिश्ता जुड़ने से पहले ही मोलभाव कर रहे थे, मिश्रा जी का गुस्सा जायज था...पर हमारा गुस्सा किसी को नहीं दिख रहा था।

अंत तक असमंजस की स्थिति बनी ही रही, गुस्सा तो बहुत आ रहा था, बेइज्जती भी बाल्टी भर-भर हो रही थी.. पर कर भी क्या सकते थे। हम तो निन्यानबे तो क्या एक सौ निन्यानबे नम्बर पर भी दूर-दूर तक नहीं थे। लोगोटियाँ यार, चड्डी-बड्डी, खाटी का दोस्त और दूसरा घर जैसी उपाधियों का लह्लीपह्प दिखाने वाले रिश्ते हाथ में लह्लीपह्प की डंडी पकड़ाकर कही गायब हो गए थे।

मिश्रा जी की परेशानी बढ़ती ही जा रही थी। ट्रेन, बस और उड़नखटोला सब बन्द, अब करे तो करे क्या...। मिश्रा जी के दूर के फूफा जी अचानक से कुछ ज्यादा ही दूर नजर आने लगे। फूफा जी मन ही मन कुलबुलाये भी बहुत थे, महीनों से तैयारी कर रखी थी। एक दिन वो मिश्रा जी पर फोन पर ही बिफर पड़े- 'क्या अब बड़े-बूढ़ो के आशीर्वाद के बिना बहू-बेटियाँ विदा होगी।'

पर कर भी क्या सकते थे। मिश्रा जी बीस साल पहले बनवाई उनकी शेरवानी की कल्पना कर-कर मन ही मन मुस्कुरा रहे थे, पहननी तो उनको वही शेरवानी ही थी फिर काहे की तैयारी।

रिश्तेदारों को कार्ड सबसे पहले चाहिए होता है पर काम की उम्मीद उनसे न करो। धेले भर का भी काम उनसे न होगा...और फुला-फुली अलग से।

'अपनी भौजाईयों से हा-हा-ही-ही करने की फुर्सत मिले तब न सेवा-सत्कार करेगी। बुलाने को तो बुला लिया पर बताओ...चाय नौ-नौ बजे तक मिल रही। चाय के बिना प्रेशर नहीं बनता, अब इनको कौन समझाए।'

इस कोरोना ने ऐसे नखरीले रिश्तेदारों से कुछ हद तक बचा भी लिया। लॉकडाउन और शादी...ऐसा लगता है जैसे किसी फिल्म का टाइटल हो- 'मैं

अनाड़ी तू खिलाड़ी!' ...मिश्रा जी को इस कोरोना ने कुछ ऐसा ही छकाया था। बिटिया की शादी सर पर कार्ड कैसे छापेंगे और छप भी गए तो बटेंगे कैसे! हाथ में दो किलो मिठाई के साथ बहन-बेटियों के दरवाजे पर कार्ड पहुँचने-पहुँचाने का रिवाज ही खत्म कर दिया इस कोरोना ने,

मिश्रा जी का लड़का थोड़ा-थोड़ा यो-यो टाइप था...घर के इस इकलौते कुल दीपक,चिराग का भी क्या कहना ...लंबे और बिखरे हुए बाल हफ्तों से मैली टी शर्ट और बरमूडा लादे... जिनका नहाना, धोना, खाना, पीना सब सोशल नेटवर्किंग पर ही होता है उनकी उंगलियों ने फटाफट एप्प डाऊनलोड किया और फटाफट कार्ड हाजिर...कोरोना काल ने सोशल नेटवर्किंग के नाजुक कंधों पर इतना बोझ लाद दिया कि पूछिये ही मत... मिश्राइन अपने नौनिहाल की बलायें लेती नहीं थक रही थी।

'देख लो जी बार-बार कहते रहते हो ये दिन भर लैपटॉप पर जोक जैसा चिपका रहता है। देखो कितना पैसा बचा लिया आपका...आप तो बस।'

मिश्रा जी का सीना भी गर्व से 32 से 42 इंच का हो जाता ...इस लहक डाउन में कुछ कमाई -धमाई तो है नहीं चलो कुछ तो बचे पर मिश्रा जी फिर से सोच में पड़ गए कि जिस देश में कार्ड भेज दिया तो किसके हाथ भेजा, स्टाफ आया था कि खुद...स्टाफ आया था तो डायलॉग ये कि नौकर-चाकर के हाथ भेजवायेंगे तब थोड़ी जाएंगे। खुद आये तो कितनी बार मनुहार किया और आने वाले ने गलती से अपनी व्यस्तता का रोना रो दिया तो दाँत निपोर कर कहेंगे- अरे घर की ही बात थी कार्ड-शार्ड की फारमेलटी में क्यों पड़ गए...बस एक बार फोन घुमा दिए होते। इन्हीं लोगों को सिर्फ फोन कर दो तो कहते हैं दस दिन पहले एक बार फोन करके सूचित तो किए थे...बिना कार्ड के भला कौन जायेगा।

अपने बाल-गोपाल द्वारा बनाये गए निमंत्रण पत्र को सो कॉल्ड मेहमानों को मिश्रा जी ने बड़े शान से चिपका तो दिया पर भरम की स्थिति अब भी

बनी हुई थी,कि बिना मान-मनुहार और देशी घी की मिठाई के डिब्बों के बिना रेडीमेड कार्ड भेजने भर मात्र से कोई आएगा भी या नहीं!

सच पूछिए कभी-कभी बड़ी दया आती है जिन रिश्तेदारों की संख्या पचास और सौ के बाद आती थी...जीवनभर जो रिश्तेदार फूटी आँख न सुहाते थे उन्हें मजबूरी ही में ही सही निपटाने के चक्कर में ही पचास और सौ की संख्या तो चुटकियों में पार हो जाती है। अब इन्हें बुला भी लिया तो पहले कोरोना की जांच कराओ२ अगर गलती से एक-आध कोरोना पॉजिटिव निकल आये तो हो गई छुट्टी..

कोरोना की डगर इतनी सरल नहीं थी, उड़नखटोले से आये मेहमानों के हाथों पर एक ठप्पा लगा दिया गया और उन्हें अज्ञातवास मेरा मतलब कोरोनटाइन कर दिया गया, बड़े-बड़े शहरों में डिस्को थेक और पब में घुसने से पहले हर महानुभावों के हाथों पर भी कुछ ऐसे ही ठप्पे लगाए जाते हैं।मिश्रा जी की छोटी बिटिया अपने ताऊ जी की बड़ी लाड़ली थी। वो तो बस इसी बात पर फैल गई।

'पापा!!!...ताऊ जी के हाथ पर वैसा ही ठप्पे के निशान हैं जैसा भैया के हाथ पर भी कभी-कभी देखने को मिल जाता है। आप ने ताऊ जी को 15 दिन अलग ठहरने की व्यवस्था कर दी है पर भइया के लिए कभी नहीं सोचा!'

अब मुँह छुपाने की बारी घर के चिराग की थी। मिश्रा जी जलती निगाहों से अपने कुल दीपक को देख रहे थे और आँखों ही आँखों मे ये पूछ रहे थे, तो ये हो रही है कंबाइन स्टडी...।

शादियों में जनवासे का चलन तो सुना था पर जनवासे का नया नाम कोरोनटाईन होगा ये नहीं सोचा था...मिश्रा जी भी अब क्या कर सकते थे।सरकार खुद ही कन्फ्यूज हो गई है, रोज कोई न कोई एडवाइजरी जारी हो जाती है और दूसरे दिन अखबारों में मोटी-मोटी लाइनों में लिखा होता है२ सरकार के दिशा-निर्देश... शादी-विवाह के लिए नई गाइडलाइंस जारी शादी-विवाह से जुड़े हुए लोगों के होंगे कोविड टेस्ट...बैंड वालों, कैटरर्स, डेकोरेशन,डी जे और मेहमानों के भी होंगे कोविड टेस्ट।

सरकार तो सरकार लोगों का भी समझ नहीं आ रहा निमंत्रण पत्र पर कुछ ऐसा लिखते हैं कि पूछो ही मत ... श्रीमती एवम श्रीमान प्रकाश चन्द्र, सपरिवार२ नोट-दो के बाद जितने भी आये वो खुद ही देख ले...अरे भाई बुला रहे हो या डरा रहे हो। एक महाशय तो और भी समझदार निकले कार्ड के नीचे एक लाइन और भी चिपका दिए- 'स्टे होम, स्टे सेफ' ...सुरक्षित तो हम पहले भी थे पर आप बुला रहे हो या मना कर रहे, पहले ये तो तय कर लो। शायद ऐसी ही गलतफहमी मिश्रा जी के घनिष्ठ मित्र को भी गई और उन्होंने अपने समस्या के निवारण के लिए मिश्रा जी को फोन घुमा दिए, हम छत पर कपड़े सुखाने गए थे ...मिश्रा जी किसी से जोर-जोर से बतिया रहे थे

'शुक्ला जी!!...बिटिया की शादी में आ रहे हैं न आप?'

'भाई साहब!!!..आने को तो आ जाये पर आपका परिवार ही इतना लंबा-चौड़ा है सौ तो ऐसे ही समा जाएंगे।'

सच बता रहे हैं लोग जेम्स बांड 007 के भी अब्बा हो गये...क्या योजना बना रहे हैं। मिश्रा जी के चेहरे पर एक बार फिर से कुटिल मुस्कान खिल गई- ''भाईसाहब आप ,बिल्कुल चिंता न करिए...सब इंतजाम हो गया ...पुलिस की चौकिंग बड़ी तगड़ी है पर हम भी कोई कम खिलाड़ी थोड़ी है। हमें भी डर और चिंता है कि बिटिया की डोली उठने से पहले पुलिस वाले हमें ही न उठा ले जाये। आप ऐसा कीजिये भाभी जी और एक बच्चे को...पहले भेज दीजिएगा जब तक वो खा-पी कर निपटते है तब तक आप गाड़ी में बैठे रहियेगा...और जब भाभी जी बच्चे के साथ खाकर आ जाये तब आप धावा बोल देना...प्रॉब्लम सॉल्व।'

सच बता रहे मिश्रा जी की योजना को सुनकर उनके चरण स्पर्श करने का मन कर गया। छत से उनका चेहरा तो नहीं दिख रहा था पर उनकी प्रकाशपुंज युक्त अलौकिक छवि आँखों के सामने से गुजर गयी।

कल ही तो मिश्रा जी बड़े व्यथित होकर कह रहे थे- 'भाभी जी!!... शादी की परमिशन लेने जाओ बाबू साहब लोग दुनिया भर के नियम-कानून की दुहाई देने लगते हैं। आखिर उन्हें भी तो ऊपर वाले को मेरा मतलब अपने से बड़े बाबू साहब लोगों को भी तो जवाब देना होता है। कुछ भी कर लो कित्तों

सर पटक लो परमिशन तो सौ मेहमानों तक की ही मिलती है.... और इन्हीं बाबू साहब लोग से धरना प्रदर्शन की परमिशन लो तो अनलिमिटेड लोग आ सकते हैं....'

हम तो बचपन से ही बहुत भावुक किस्म के इंसान रहे हैं लोगों का दुःख हमसे देखा नहीं जाता। चलते-चलते मिश्रा जी को एक मशवरा दे डाले- 'भाईसाहब!!...अगर सीधी उंगली से घी न निकले तो उंगली टेड़ी कर देनी चाहिए.. ये कहावत यूँ ही नहीं बनी। आप एक परमिशन पत्र लिखिए... और उस परमिशन पत्र में अपने मनभावों को कुछ इस तरह से प्रकट कर लिखे..

सेवा में,
थानेदार साहब महोदय,

विषय : दुल्हन लाने के लिए धरना प्रदर्शन करने की अनुमति के सम्बंध में,

विनम्र निवेदन है कि मेरी सगाई हुए तीन माह बीत चुके हैं, और मेरे होने वाले ससुर मेरी होने वाली पत्नी से दिनांक 20.12.2020 को मिलने को बोल रहे थे। लेकिन अचानक आज चार दिन पहले ही वो अपने वायदे से मुकुर गए। ऐसी परिस्थिति में मुझे अपनी भावी जीवनसंगिनी के लिए धरना प्रदर्शन करना है। इस शुभ कार्य को सम्पादित करने के लिए मैंने 'आनन्दम्' माँगलिक रिसोर्ट स्थान निश्चित किया है।इस अवसर पर वहाँ मैं, मेरे घर वाले तथा कुछ सगे-संबंधी और मित्र भी प्रदर्शन में मेरा साथ देंगे।

अतः आप मुझे दिनांक 20.12.2020 को धरना प्रदर्शन करने की अनुमति प्रदान करें....मैंने इस आवेदन पत्र की एक प्रति तहसीलदार साहब को भी प्रेषित कर दी है।

संभ्रांत नागरिक

‘उम्मीद करती हूँ इस पत्र से कुछ काम बन जाये।’

पर मिश्रा जी परेशानियां सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती ही जा रही थी- ‘क्या बताए भाभी जी!!...कोरोना ने घर-परिवार सब की जान आफत में डाल दी है। कोरोना के चक्कर में हमारी अम्मा तो यही सोच-सोच दुबली हुई जा रही थी घर की पहली शादी है दुनिया भर के लोगों को आज तक व्यवहार दिए हैं ...जब अपने घर की शादी पड़ी, लोगों की व्यवहार लौटाने की बारी आई... तो किसी को बुला ही नहीं सकते। जौनपुर वाली जीजी की लड़की की शादी में दो साड़ी, एक झुमका और पाँव पूजन के समय स्टील का ड्रम दिए थे और खिचड़ी खाने के समय लड़के को पाँच सौ एक का लिफाफा... शादी बीतने के बाद कौन देता...जब पूड़ी नहीं खाये तो काहे का न्योता...कह तो अम्मा सही ही रही थी।’

मिश्रा जी भी अपनी जगह ठीक ही थे, एक तो कोरोना काल मे ढेले भर की कमाई नहीं.. ऊपर से शादी। रिश्तेदारों के यहाँ बढ़-बढ़ कर न्योता दिया है किसी के यहाँ अंगूठी, किसी के यहाँ वाशिंग मशीन तो किसी के बक्सा- जब कोई आयेगा ही नहीं तो वो भला क्या देगा...इस महामारी के चक्कर में वापसी मिलने की रही-सही उम्मीद भी जाती रही!

खैर छोड़िए... हमें अभी तक मिश्रा जी की बिटिया की शादी का न्योता नहीं मिला था, पर हमने भी उम्मीद नहीं छोड़ी थी। इन बीते महीनों में हमारे कान बेसुरे ढोल पर दो ढक्कन चढ़ाए नागिन डांस करते जीजा और फूफा लोग के नृत्य कला प्रदर्शन को देखने के लिए बुरी तरह कुलबुला रहे थे...कपड़ों की अलमारी चीख-चीख आवाज दे रही थी ...अम्मा जिंदा हो न कि निकल ली। इतना मजबूर तो हम जीवन में कभी भी न हुए थे। गिनती का महत्व जीवन मे इतना होगा कभी सोचा न था।

शादी खुद एक महामारी से कम है क्या, जिसकी वैक्सीन आज तक नहीं बनी और न बनेगी। खैर जिनकी न हुई वो भी चख ही ले। अकेले हम ही क्यों भुगत-भोगी रहे। वैसे भी हम बचपन से ही उसूलों पर चलने वाले हैं..

हमारा तो जीवन का एक ही उसूल है ...हम तो डूबे है सनम तुम्हें भी ले डूबेंगे।

जिन्दगी भर बी पॉजिटिव का आलाप करने वाले लोग कोरोना पॉजिटिव का नाम सुनते ही गधे का सर से सींग की तरह गायब हो जाते है। हमारे घर की पीछे वाली गली में पोपले मुँह वाली अम्माजी रहती है। मुहल्ले में किसी के घर भी शादी हो अम्मा जी न आये, हो ही नहीं सकता। कदम-कदम पर नियम कानून बताने वाली पोपले मुँह वाली अम्मा जी भी आजकल मुँह पर ताला मार कर बैठी है। कही पहले की तरह कोई कह न दे- 'अम्मा जी...आप भी चले चलो आखिर कौन बतायेगा ये दुनिया भर के रीति-रिवाज!'

पर अम्मा जी टस से मस न हुई- 'हम कही न जाएंगे...कुछ हो-हवा गया तब...अभी उम्र ही क्या है हमारी...अभी तो दुनिया भी देखनी है।'

अब अम्मा जी को कौन बताए कि- 'अम्मा जी कब्र में पैर लटकाये बैठी हो... दोनों हाथ-पैर की रेखायें भी गिन ले तो भी कम पड़ जाए। खैर भगवान सबकी उम्र लम्बी करें।'

मिश्रा जी की बिटिया की शादी पास आती जा रही थी और हमारी उम्मीद का दामन दूर होता जा रहा था। शादी-विवाह में लड़के-लड़कियों को मैचिंग लहंगा, दुपट्टा, ब्लाउज, जूती, पर्स, पगड़ी, शेरवानी की चिंता करनी पड़ती थी पर अब तो एक और चलन प्रारम्भ हो गया...मैचिंग मास्क। हमारे ड्रेस डिजाइनर भाई लोग भी परेशान, उनकी अनदेखी बचत में भी लोग सेंध लगाने को खड़े हैं२ नाश हो मुये कोरोना का। एक तो मुश्किल से कुछ कमाई-धमाई शुरू हुई तो वहाँ भी!

आखिर वो दिन भी आ ही गया ...जिसका इंतजार हर पिता को होता है। बिजली के बल्ब और फूलों की लड़ियों से मिश्रा जी का घर दूर से ही चमक रहा था। मास्क पहने बराती ऐसे लग रहे थे... मानो वो बरात में नहीं गाँव लूटने आये हो। सच पूछिए तो मास्क भी एक टास्क बन कर रह गया है। बरातियों को थोड़ी-थोड़ी देर में सेनेटाइजर ऐसे दिया जा रहा था...जैसे सेनेटाइजर नहीं पंचामृत बांटा जा रहा है।लोग ऐसे आगे बढ़-बढ़ कर हाथ आगे बढ़ाते हैं जैसे पुण्य की गठरी में एक और जुड़ने से न रह जाये। कुछ बराती

तो ऐसे थे कि अपने वाले से एक बार फुच करके ही सेनेटाइजर प्रयोग करते पर मुफ्त में मिला तो फुच-फुच-फुच।

मिश्राइन घबड़ाई-घबड़ाई सी इधर-उधर दौड़ रही थी। हम दूर खड़े तमाशा देख रहे थे ...क्योंकि निमंत्रण पत्र हमे अंत तक नहीं मिला। छत से ही शादी का मजा ले रहे थे। मिलनी की रस्म में तो इतनी गड़बड़ी हुई कि पूछिये ही मत...समधी साहब के फूफा और जीजा जी भी बिल्कुल कम न थे।

कोई काम बता दो तो कोरोना और दो गज दूरी का राग अलापने लगते पर जब मिलनी का वक्त आया तो स्पाइडर मैन की तरह भीड़ को चीरते हुए नकाबपोश जीजा और फूफा... 'हम यहाँ हैं!' कहकर अपनी उपस्थिति दर्ज कर दी। अब इतनी मंहगाई में जब सोने का दाम आसमान छू रहा है वहाँ अंगूठी न सही ग्यारह-इक्कीस सौ का नकद पुरस्कार मेरा मतलब नकद व्यवहार मिल जाये तो क्या बुरा है।

दरवाजे पर बारातियों के तापमान नापने के चक्कर में समधी साहब के फूफा जी नाराज हो गए- 'बरातियों का स्वागत माथे पर बंदूक तान कर करने का कौन सा रिवाज है।'

मिश्रा जी ने कितनी मुश्किल से समझाया उनको।

इस मास्क के चक्कर में सबसे ज्यादा फजीहत अगर किसी की हुई है तो वो लड़की वालों की हुई। दरवाजे पर मिलनी के समय माननीय लोगों को नेगचार दिया... पर मास्क के चक्कर में मंडप के नीचे स्वागत के समय किसी को तो दो बार तो किसी को एक बार चवन्नी भी न मिल पाई...समधी साहब के फुले हुए फूफा जी गुस्से में और भी फुल गए...मिश्रा जी की सारी रात उन्हें मनाने में ही गुजर गई।

मुश्किलें अभी भी मुँह बाएँ खड़ी थी। पंडित जी धोती से मैचिंग मास्क लगाए ...दो गज की दूरी से स्वाहा-स्वाहा कर रहे थे। कोरोना काल मे पंडित जी भी बड़े अपडेट हो गए हैं ...पंडित जी विवाह की शुरुआत में वर-वधू को टीका न लगाएं ऐसे कैसे सम्भव है। मिश्रा जी की बिटिया की शादी में क्वालिफाइड और डिग्रीधारी पंडित जी ने इस का भी तोड़ निकाल लिया। श्री 1008 पंडित

जी ने सेल्फी स्टिक में कान खोदने वाले रुई धारी यंत्र को आगे टिका दिया और फिर क्या टीकाकरण शुरू...।

पंडित जी पूरी तरह अस्त्र-शस्त्र से लैस थे...मुँह पर मास्क, हाथ में ग्लव्स और कुर्ते में सेनेटाइजर... जिसे वो थोड़ी-थोड़ी देर में निकालते और जजमान से प्राप्त नकद धनराशि पर फुच-फुच कर छिड़कते और अपने कुर्ते में धीरे से सरका देते। पंडित जी की इस गतिविधि को देख एक शरारती तत्व ने एक प्रश्न उनकी तरफ उछाल दिया-

'पंडित जी!'

'बोलो बच्चा!'

'पडित जी, नोट में भी तो कोरोना वायरस हो सकता है ?'

लड़के की धृष्टता पर पंडित जी को क्रोध तो बहुत आ रहा था पर उन्होंने अपने क्रोध पर नियंत्रण करते हुए कहा- ''पुत्र! नोट जिस स्याही से छापी जाती है उसके सम्पर्क में आकर सारे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और वैसे भी मैं अग्नि के निकट बैठा हूँ जहाँ सारे कुत्सित विचार क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं फिर इस तुच्छ कीटाणु की क्या बिसात!'

धन्य है ऐसे विचार आते कहाँ से है, ये सोचने का विषय है। खैर... सदरी वाले सज्जन पुरुष ये कह कर तो निकल लिए... दो गज की दूरी, मास्क है जरूरी, पर भाई कोई उनसे ये तो पूछे की कथनी और करनी में बड़ा फर्क होता है।

इधर शादी का कार्यक्रम चल रहा था, उधर बराती जीमने के लिए पहुँच गए। दो गज की दूरी, मास्क है जरूरी... एक बड़ी समस्या बन चुकी है। आखिर आप ही बताइए...खाना परोसने के लिए मिश्रा जी दो गज का चम्मच, पोंना, कलछुल कहाँ से लाते। ये समस्या पूरी शादी में बनी रही... मिश्रा जी सबसे खाने के लिए लिए मनुहार कर रहे थे। तभी मिश्रा जी के बेटे ने एक व्यक्ति की तरफ इशारा किया। मिश्रा जी सोच में पड़ गए ..ये तो बराती नहीं लग रहा क्योंकि बरात में तो सबने एक जैसी पगड़ी पहन रखी है पर इसने नहीं.... आजकल तो कॉलेज भी बन्द है तो हॉस्टल वाले लड़के भी नहीं हो

सकते फिर, जनाब मिश्रा जी की शादी में मास्क पहनकर बिन बुलाए मेहमान बनकर पहुँच गए थे।

इमरती के स्टॉल के सामने खड़े वो तीन इमरती उड़ाने के बाद चौथी की तरफ हाथ बढ़ाने ही वाला थे कि मिश्रा जी ने पीछे से पकड़ लिया और बोले- 'हम तो लड़की वाले हैं और ये लड़के वाले... आप किसकी तरफ से हो ?'

अब जनाब का हुनर तो देखिए, मिश्रा जी की आँखों में आँखें डालकर बड़े बेशर्मी से बोले- 'मिश्रा जी! हम गिनती करने वाले हैं। शादी में काफी अच्छा इंतजाम किए हैं पर आपकी शादी में पच्चीस लोग ज्यादा हैं, चालान कटेगा, नहीं तो दूल्हा-दुल्हन की पहली रात जेल में होगी। भई एक दिन तो गुजारिये हवालात में...!'

मिश्रा जी को ए.सी. कमरे में भी पसीने आ गया। मिश्रा जी ने दूल्हे की कुर्सी पर बैठाकर बिटिया की अम्मा के हाथों से जनाब को खाना खिलवाया और फिर चलते-चलते ग्यारह सौ का लिफाफा दिया सो अलग। मिश्रा जी अब कोई भी गड़बड़ नहीं होने देना चाहते थे। चालान कटने के डर से वो फूंक-फूंक कर कदम रख रहे थे। बिटिया के जयमाल के समय डंडियों के सहारे वर-वधू ने एक-दूसरे को माला पहनाई गई। दूल्हे मियां शायद तीरंदाजी के शौकीन थे ...माला एकदम टारगेट को छूते हुए बस निकलने ही वाली थी कि बड़ी अदा से दुल्हन ने संभाल लिया। बस समझो इज्जत बच गई। वरना माला पड़ोस की गुप्ता जी के बेटी के गले मे पड़ जाती।

मिश्रा जी अब किसी भी तरह का रिस्क नहीं लेना चाहते थे। छायाकार महोदय को उन्होंने पूरी शादी में परेशान करके रख दिया... दूल्हा-दुल्हन ने दो गज के मंत्र को कुछ इस तरह से घोंट कर पिला दिया कि क्या कहे... कभी दूल्हा फ्रेम से गायब तो कभी दुल्हन। अरे भाई!!... क्यों बच्चे की जान लिए पड़े हो।

एक तो आजकल लड़कियाँ अपनी विदाई में वैसे भी नहीं रोती, आखिरी मेकअप के नाम पर जो महीनों पहले से ट्रीटमेंट और हजारों रुपये फूंके है, उसे वो यूँ ही जाया नहीं होने दे सकती और अब तो कोरोना का भी बहाना मिल

गया...आखिर सदरी वाले सज्जन पुरुष की बात का भी तो मान रखना था। बिटिया अपनी दादी से गले मिलने के लिए आगे बढ़ी ही थी कि मिश्रा जी ने डपट दिया।

सच बताए तो कोरोना काल में सबसे ज्यादा घाटा अगर किसी का हुआ तो वो उन लड़के-लड़कियों का हुआ, जो शादी में जाते ही इसलिए है कि आईं टॉनिक मिल सके ...बहुत सारे लड़के-लड़कियाँ तो इतने बड़े दिल के होते हैं जो अपने माता-पिता को अपने लिए योग्य वर योग्य वधू के ढूढंने के झंझट से भी बचा लेते हैं। यानी एक शादी के साथ दूसरी शादी मुफ्त-मुफ्त...मुफ्त! ये नौजवान आँखों ही आँखों मे मोटा -मोटा उस व्यक्ति का खाका भी खींच लेते हैं। कुछ तो सपनें में स्विट्जरलैंड की हसीन वादियों में एक-आध रोमाँटिक गाना भी गाकर आ जाते हैं पर उन्हें मास्क के नीचे कौन है पता ही नहीं चलता कि वो करिश्मा कपूर है या शाहरुख खान या फिर कांता बाई और रामू काका..।

सच-सच बताइए इस कोरोना का कोई घर-परिवार, बहन, बेटी, ताऊ, चाचा या दूर के मौसा नहीं है क्या...ऐसा आया है कि जाने का नाम ही नहीं ले रहा। भाइयों और बहनों आप बिल्कुल भी परेशान मत होइए, हम भी आप लोगों की तरह ही न पचास में और न ही सौ की संख्या में गिने गए। सच मानिए, आजकल बस एक ही गाना याद आ रहा है- 'ये दुनिया ये महफिल मेरे काम की नहीं!'

–लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश

मीडिया और स्त्री

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-1-0

संस्करण : 2014, मूल्य : 165/-

कहानी

सुंदरी

✍अनिल कुमार पाण्डेय

“हमार बिटिया के ऊपर हवइ। जेसी मर्जी बोलइ, जेकरे साथे रहइ के मन करे रहइ्र हम कभउ न रोकब। जेका नीति सिखावे के होइ उ आपन नियति बदलइ्र जमाना बदलि गवा हवइ। लडकन जब घूमथेन तब त नाइ केहू रोकै बिना आवत हइ? हम अपने लडकिन के कभउ न रोकै आउब। केहू के अच्छा लगै चाहे बुरा...हमरे लुवाठे से....” गुस्से में तमतमाते हुए सुंदरी ने कहा। सामने बैठे तमाम लोग बस उसे सुने जा रहे थे। बोलने की हिम्मत किसी की न पड़ी।

आज कई दिन से वह लगातार अपनी लड़कियों के विषय में सुनती आई थी्र कोई बदचलन कहता था तो कोई आवारा। चोरी-छिपे कहने वालों में कई लोग आज उसके सामने बैठे थे। जो कोई कुछ भी कहता था, देर-सबेर पता तो चल जाता था उसे, लेकिन प्रत्यक्ष किसी की हिम्मत नहीं होती थी कुछ कहने की। जिस नंगे यथार्थ का सामना सुंदरी ने अपने जीवन में किया, उसके सामने किसी नैतिकता में इतनी क्षमता कहाँ होती कि वह आँख दिखा सके।

लोगों की दृष्टि में और खुद सुंदरी की नजर में भी उसका जीवन अराजक ही रहा था शुरू से। सामाजिक मर्यादा जैसे शब्द उसे परेशान करते थे। वह नहीं मानती थी कोई बंदिश। नैतिकता के नाम पर जो त्यौरियां चढ़ाती कि सामने वाले कई बार मुश्किल में पड़ जाते। मुक्त ख्याल की औरत थी। पति के रहते हुए भी एक-दो प्रेमियों से सम्पर्क बनाए रखना उसका अपना स्वभाव था। मायके में तो यह आम बात थी, इधर ससुराल में भी यही स्थिति बन गयी थी उसकी।

युवाओं से लेकर बुजुर्गों तक की निगाह रहती थी उस पर। देखने में बला की खूबसूरत थी। लोग तो कहते हैं कि जवानी का जोश इश्क में भीगने के बाद स्थायित्व पाता है, लेकिन सुंदरी के सन्दर्भ में ऐसा नहीं था। इसलिए भी क्योंकि वियोग-अवस्था को कभी झेला नहीं उसने। फिल्मों में दिखाए जा रहे प्रेम-मिलन के दृश्य उसे रुचिकर लगते, लेकिन वियोग-दृश्य उसे बनावटी लगते थे। प्रेम में उसने हर समय बसंत ही देखा, पतझड़ कभी आसपास भी नहीं फटका।

आज जब सब पर अपना क्रोध निकाल रही थी तो ऐसे ही नहीं डांट रही थी वह। अनुभव यदि स्वयं को परिपक्व बनाता है तो परिवेश में इज्जत भी देता है। यही इज्जत सबको सुनने के लिए विवश कर रही थी। नीति, नियति और चरित्र से कहीं अधिक जरूरी होता है संघर्ष। समाज में रहते चरित्र का कितना भी गिरा कोई क्यों न हो, लेकिन यदि अनुभव के माने में हर घाट का भुक्तभोगी हो तो उसकी इज्जत बुरे तो करते ही हैं, भले भी करने के लिए विवश हो जाते हैं। एक तो आसपास के लोगों के विषय में, कौन किस क्रिया में माहिर है या लिप्त है, अच्छी जानकारी थी सुंदरी को। दूसरे, मुक्त-जीवन को वह अपना अधिकार मानकर चलती थी। क्या पहनना है? कैसे रहना है? किसके साथ रहना है और किन शर्तों पर रहना है? इन विषयों पर कभी किसी का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं किया था सुंदरी ने।

प्रेम मुक्त होता है तो होता है, सुंदरी का यही मानना था। न उम्र से कोई मतलब न जाति की कोई चिंता। एकदम दिल का मामला। किसी पर आ गया तो आ गया। आता भी एकदम निराले अंदाज में है। सुंदरी की नजर में प्रेम में होना मायने रखता है, कोई क्या है इससे मतलब नहीं होता। 'है' यही सबसे बड़ी बात होती है।

इधर सुंदरी ने अपने ही परिवेश के बीस वर्षीय लड़के को मौके-बेमौके ताकना-झांकना शुरू कर दिया है। सुंदर नाम का युवक है। उसके घर से कोई

दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर रहता है। है तो स्वजातीय ही, न भी होता तो कोई दिक्कत न थी, क्योंकि मामला दिल का है। उस दिल का, जो बुजुर्ग होने के बाद भी युवा बने रहना उचित मानता है। लड़का वैसे तो कुछ नहीं करता है लेकिन गाँव में होने वाले कबड्डी का जुनूनी खिलाड़ी है। वह जिस समय मैदान में उतरता है, अच्छे-अच्छों का ठिकाना लगना तय माना जाता है। देखने और निहारने के लिए दूर जाने की जरूरत भी नहीं होती है। सुंदरी के देवर की दांत-काटी दोस्ती है उसके साथ। घर का आवारा जरूर है, लेकिन दिल का बहुत साफ है।

सुंदरी के प्रेम में होने का एहसास सुंदर को कई अवसरों पर हुआ, लेकिन समझते हुए भी न समझने का खेल खेलता रहा। उसने कहीं सुन रखा था कि प्रेम में पड़ी स्त्री को जितना अधिक उपेक्षित करोगे, उसका आकर्षण भावी प्रेमी पर उतना ही मजबूत होगा। वह सुंदरी से जैसे और जितना ओझल होकर रहने का प्रयास करता, सुंदरी उतना ही सुंदर के सामने होने कि कोशिश करती। यह खेल चलता रहा। कई मौके आए जब सुंदरी उसे कह सकती थी प्रेम में होने की बात, लेकिन सुंदर की उदासीनता उसे बदनामी को लेकर डराती थी। कई ऐसे भी मौके आए जब सुंदर सुंदरी को अपनाने का अभिनय कर सकता था, लेकिन भविष्य के प्रेम की मजबूती के प्रति आशंकित सुंदर ऐसा करने से रोकता रहा स्वयं को।

सुंदरी अपनी सारी कोशिशों में असफल रही तो सुंदर सफल। अब सुंदर का अगला गेम प्लान था सुंदरी को तड़पाते हुए उसके प्रेम में होना। इस प्लान को सफल बनाने के लिए कुछ दिन आना भी छोड़ दिया सुंदर ने उसके घर के आसपास। सुंदरी हताश और परेशान होकर अपने पड़ोस की ही दो लड़कियों, गुजरी और सुमित्रा, से संपर्क साधना शुरू किया। यह मामला इक्कीसवीं सदी के पहले दशक का था तो चिट्ठी-पत्री के दिन अभी गए नहीं थे। पूरे प्रचालन में थे। गुजरी को चिट्ठी लिखना आता था। सुमित्रा के पास प्रेम का अपना अनुभव था।

एक दिन गुजरी बैठी कुछ विचार कर रही थी, तभी सुंदरी का प्रवेश होता है उसके घर।

‘‘आवा दी! आजकल एकदम व्यस्त हो गई बाटू, लागत है?’’ गुजरी ने प्रश्न भरी निगाहों से देखते हुए बोला तो सुंदरी एक क्षण के लिए सोच में पड़

गयी और फिर स्थिति स्पष्ट करते हुए बोली, ‘‘नाहीं बहिनी, कहाँ व्यस्त होबे हम? तोहर भैया बाहर गवा आहेन ता तनी अनमन से जियरा भा बा।’’

‘‘अरे ता अनमन काहें के? बाकी ता बटबे करेन?’’ गुजरी ने छेड़ते हुए पूछा।

‘‘बाकी सब उफ्फरि परे गयें। आजकल कवनों नहीं हैं गुजरी।’’ धीरे-धीरे बैठते हुए सुंदरी ने अपने मन में उठने वाले भावों को रखते हुए कहा।

कुछ देर चर्चा-परिचर्चा चलती रही गाँव-घर के खबरों को लेकर।

सुंदरी ने आसपास देखा, कोई नहीं था तो अपने मन की बात कहना उचित समझा गुजरी से ‘‘गुजरी! तोका पता बा, सुंदर के चाहइ लगी हयी। पर उ मुँहझौंसा कब्जे में नहीं आवत। कुछ करो गुजरी हमरे खातिर! हमका उ बहुत अच्छा लागत हइ।’’

‘‘अरे त यह्या करे के का बा? एक पत्र लिखि देहे से तो ऊ चक्कर काटे लगिहैं बचऊ। इजाजत द्या दी। अबहीं शुरू करी?’’ बड़े आत्मविश्वास से कहा गुजरी ने तो सुंदरी भी स्वयं को रोक न सकी।

प्रेम-पत्र तैयार होने लगा। कुल दो घंटे लग गए पूरे चिट्ठी तैयार होने में। अब समस्या आई कि सुंदर के पास चिट्ठी लेकर कौन जाए? दोनों ने तय किया कि इसके लिए सुमित्रा को चुना जाए। सुमित्रा पहले तो ना-नुकुर करती रही लेकिन बात सुंदरी की थी, तो टाल न सकी। ले देकर पत्र पहुंचाया गया सुंदर के पास। सुंदर ने पहले तो पत्र को गंभीरता से लिया नहीं, लेकिन जब सुमित्रा चली गयी तो वह पत्र में बहुत देर तक खोया रहा। इतना कि उसे यह भी नहीं पता चला कि वह कहाँ पड़ा हुआ है?

पहले प्रेम का अंकुरण जब हृदय में होता है तो बहुत देर तक हलचल मचाए रखता है हृदय में। पैर जमीन पर नहीं रहते यह तो सबको पता है लेकिन आसमान भी उस समय छोटा हो जाता है, यह वही जानता है जो प्रेम में होता है। सुंदर की स्थिति इस समय यही थी। दिशा-मैदान जाते समय स्वप्नों में खोया

सुंदर खाना खाते समय भी सुंदरी के चेहरे को अपने मस्तिष्क में उठने वाले उफान से अलग न कर सका। रात सोने के समय तकिया भींचे स्वप्नों में खोया तो पता नहीं कब खुली आँखों देखते स्वप्न से साक्षात स्वप्न-दर्शन तक पहुँच गया।

सूरज की किरणें प्रभावी होकर खिड़की से जब सुंदर के चेहरों पर पड़ीं तब उसकी नींद खुली। उठने के बाद काफी देर तक सोचता रहा कि ऐसा क्या था जिसके लिए कल की रात हर रातों से अलग और हसीन हो गयी थी? यह सोच ही रहा था कि सामने बिस्तर पर उसे वह प्रेम-पत्र दिखाई दिया। पहले तो उसे लेकर चूमा और फिर कहीं छुपाकर रखना उचित समझा। गंवई परिवेश में प्रेम में होना तो सरल है लेकिन वर्तमान रहते हुए उमंग में रहना किसी जोखिम से कम नहीं है, सुंदर को यह भी पता था। घर का कोई सदस्य देख ले तो लेनी-देनी पड़ जाए।

कल रात की तरह आज के दिन को भी सुंदर के लिए और हसीन होना था। प्रेम में डूबा सुंदर अब सुंदरी को करीब से देखना चाहता था। जागते आँखों वाले स्वप्न में खोया सुंदर घर से निकल पड़ाद्य दोपहर का समय थाद्य धूप अधिक थीद्य चकाचौंध भरे वातावरण में सुंदरी के चेहरे की आकृति धुंधली-धुंधली-सी प्रतीत हो रही थीं उसे। प्रेम में होने से पहले जिस चेहरे में झुर्रियां और लक्षण के दाग थे, अब उसी चेहरे में करिश्मा और शिल्पा शेट्टी के रूप नजर आ रहे थे। अपनत्व का भाव जहाँ होता है वहां हर चीज सुंदर हो जाती है यह अब सुंदर को और गहरे में महसूस होने लगा था।

इधर सुंदर घर से निकल चुका था सुंदरी से मिलने के लिए और उधर सुंदरी प्रेम-पत्र भेजने के अपराधबोध में पश्चाताप कर रही थी। यह एहसास सुंदरी को था कि प्रेम-प्रस्ताव उसका असफल नहीं जाएगा, लेकिन डर भी था कि कहीं सुंदर यह बात बस्ती में न बिखेर दे? रात से लेकर दोपहर तक कम से कम तीन-चार बार वह गुजरी और सुमित्रा से मिली। बार-बार उसने प्रेम-पत्र का जिक्र किया। सुमित्रा से हर बार वह यही जानने की कोशिश करती रही कि ''सुंदर के मूड कइसन रहा सुमित्रा? कहीं ऊ गुस्सा जइसन त नाइ दिखत रहा?'' सुंदरी का इस तरह परेशान होना स्वाभाविक भी था। ऐसे समय यदि अपने किसी प्रिय की सांत्वना मिल जाए तो व्याकुलता में संजीवनी का कार्य करता है। सुमित्रा उसे ढांढस बँधाना उचित समझती और कहती भी, ''चिंता न करा दी!

तोहें तो पता हवइ पहले से कि प्रेम में इतना त परेशानी झेले के पड़े। हमार जवाब मिलै में त अक्सर महीना लग जात है।''

''हाँ ऊ त है सुमित्रा! पर तोहरे प्रेम में अउर हमरे प्रेम में बड़ा अंतर बाद्य तोहार प्रेम लड़िकाई के प्रेम हवे, अउर हमार प्रेम आधी बीते के प्रेम हवे। तोहार जवाब मिले के पूरी आशा रहे हमार जवाब डूबे की पूरी सम्भावना। बस इही के चिंता बा बाकी त जवन होए देखी जाए।'' आशंका और भय के बीच गहरी सांस लेते हुए सुंदरी ने जवाब दिया सुंदरी को।

सुमित्रा ने अपनी मूक सहमति देना उचित समझा था उस समय। चिंता, स्वाभाविकता और व्यावहारिकता में उलझा मन घर की तरफ मुड़ता तो चाल में विचलन की स्थिति साफ नजर आती।

अभी-अभी उधर से गुजरी और सुमित्रा से मिलकर आ ही रही थी सुंदरी कि आसपास सुंदर की हँसी उसे सुनाई दी। हँसी में उन्मुक्तता होने से जो भय था वह लगभग जाता रहा। विवाद में बोझिलपन होता है न कि उन्मुक्तता यही सोचकर सुंदरी अंदर से खिलखिला उठी। यह खिलखिलाना खिलना भी था एकदम कली की तरह। पहली बार इस तरह से कब खिली थी सुंदरी यह तो उसे याद नहीं, लेकिन पहले प्यार की रोमानियत उस पर जरूर छा गयी, ऐसा आभास उसे हो गया।

इधर बात करते हुए बार-बार सुंदर उस तरफ देख रहा था जहाँ से अक्सर सुंदरी उसे देखा करती थी। सुंदरी को अभी तक सामने न पाकर वह विचलित जरूर हुआ लेकिन चेहरे पर विचलन के उस भाव को बिलकुल न आने दिया। उसके दोस्तों में कबड्डी को लेकर कोई योजना चल रही थी। इस योजना में पूरी सहभागिता दिखाते हुए ताकने-झाँकने की रश्म बीच-बीच में वह अदा करता रहा। कई बार न पाने से कुछ परेशान होता हुआ अबकी बार जब उसने देखा तो सामने मुस्कराते हुए सुंदरी अपने साड़ी के आँचल को मरोड़ते हुए निहार रही थी सुंदर को।

सुंदर की निगाहें एक बार गईं सुंदरी की तरफ वहीं रुकी रहीं। दोनों ने एक दूसरे को एकदम शांत होकर देखा, परखा और फिर आँखें दूसरी तरफ मोड़ते हुए मुस्कराने का प्रदर्शन करने लगे। ये प्रदर्शन इतना प्यारा और आत्मीय था कि दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गए तो बहुत देर तक हुए रहे। देखने और मुस्कराने का यह क्रम उस दिन काफी देर तक चलता रहा, लेकिन मिलन का

सौभाग्य न प्राप्त हुआ। इधर सुंदर दोस्तों से घिरा था तो सुंदरी उधर अपने घर के कामों में। सुंदरी गेहूँ में कंकर निकालने के लिए अंदर गयी तो बहुत देर तक बाहर न आई। फिर, सांझ होने से मिलन की चाह लिए सुंदर भी अपने घर की तरफ मुड़ गया।

जब तक प्रेम की प्रक्रिया में होता है व्यक्ति, सार्वजनिक होता है, बाद उसके एकांत ढूँढता है। वह हो, साथी हो और हो प्रेम, इसके अतिरिक्त किसी तीसरे की उपस्थिति से बचता है वह। तन्हाई तक को नहीं आने देता आसपास। जो सुंदर कभी आते ही घर के अन्य सदस्यों से मिलना उचित समझता था वही सुंदर इधर सीधे सुंदरी की तलाश में रहने लगा। हर समय ऐसे एकांत की खोज करता जहाँ सुंदरी मात्र की उपस्थिति हो। सुंदरी के आसपास रहते हुए तो वह भूल ही जाता था सबके बीच में होने की स्थिति को, इधर सुंदरी से दूर रहने की प्रक्रिया में भी सुंदरी के आसपास रहते हुए पाने लगा वह। घर वाले हैरान थे कि खेलता-खाता सुंदर अचानक गुमसुम कैसे रहने लगा? बहकी-बहकी बातें करना और एकांत न होने की स्थिति में खीझ उठना सुंदर के लिए सामान्य-व्यवहार होता जा रहा था। सुंदर ने कई बार अपनी यथास्थिति का कारण जानना चाहा, लेकिन असफल रहा।

यही स्थिति इधर सुंदरी की थी। प्रेम तो कई लोगों से हुआ उसे और कई बार हुआ, लेकिन ऐसी दीवानगी कभी न जगी उसके मन में। जब भी अपने बच्चों को नहलाने-धुलाने से फुर्सत मिलती वह सोच में पड़ जाती। कई बार जिस समय वह मिलन-स्वप्न में होती सास और पति की तरफ से कोई कार्य कह दिया जाता, तो वह गुस्सा हो जाती। कल्पना सुख से बड़ा कोई और सुख कहाँ हो सकता है... यह अब सुंदरी को लगने लगा था। कई बार करना कुछ होता था कर कुछ जाती थी। कहा कुछ जाता था सुन कुछ लेती थी। प्रेम में आने के बाद व्यक्ति इतना विक्षिप्त क्यों रहने लगता है? क्यों सब कुछ भूलकर मात्र प्रेमी के क्रिया-कलाप पर रीझने लगता है दिल? अपना बेगाना और बेगाना अपना बन हृदय के तार झंकृत करता रहता है, ऐसा क्यों होता है आखिर? ऐसे बहुत-सारे प्रश्न पूरी मासूमियत लिए सुंदरी के दिमाग में चल रहे थे।

प्रेम में दोनों दो धारा होते हुए भी एक थे। एक-सी स्थिति में बहना और एक स्थिति में स्थायित्व पाना, दोनों के स्वभाव में शामिल होने लगा था। इधर बहना तो सीख लिया था दोनों ने लेकिन कोई ऐसा स्थल अभी तक चयनित न किया जा सका था जहाँ दोनों कुछ देर बैठकर एक-दूसरे को निहार सकें। नयन-सुख में डूबे प्रेमी-मन को अब मिलन-सुख की जरूरत महसूस हो रही थी। हालाँकि दोनों ने अपनी तरह से एक-दूसरे को उत्तेजित और विचलित करने की कोशिश की, लेकिन इस कोशिश में अब दोनों को ही अपनी हानि होती नजर आई। सुंदर सुमित्रा की सहायता लेना चाहता था, लेकिन सुमित्रा स्वयं सुंदर की चाह में दीवानी बनी घूम रही थी। जोखिम उठाना ठीक नहीं था इस समय। सुंदरी ने भी कई बार सोचा कि मिलन के लिए गुजरी और सुमित्रा का इस्तेमाल कर ले, लेकिन ऐसा करने की हिम्मत उसकी भी नहीं पड़ी। किसी के प्रेम में जब तक न हों तब तक उसे रिझाने के लिए किसी की भी सिफारिश चल जाती है। प्रेम में होने के बाद खोने का डर बना रहता है और यही डर किसी तीसरे के हस्तक्षेप से रोकता है। यही स्थिति इस समय सुंदर और सुंदरी की थी।

संकोच और मिलन की स्वाभाविक स्थिति में ले-देकर गर्मी का महीना जाने लगा। शरद ऋतु का आगमन हो ही रहा था कि दोनों की नजदीकियां बढ़ने लगीं। यही अवसर होता है जब गाँव में छोटे-छोटे मेले लगने शुरू होते हैं। दोनों ने विचार बना लिया था कि इस मेले का भरपूर फायदा उठाया जाएगा। कई दिनों के बाद सुंदरी घर में अकेली थी। मेले में जाने के उद्देश्य से सुंदर अपने दोस्तों को साथ लेकर जाने आया तो कोई नहीं था घर पर। सुंदरी का हृदय सुंदर को देखते ही धड़कने लगा। पहली बार सुंदर सुंदरी के इतने नजदीक हुआ था। पहला ही अवसर था जब वह किसी स्त्री-शरीर को इतने नजदीक से महसूस कर पाया था। दोनों की साँसें तेज होने लगीं तो पैर डगमगाने लगे।

सुंदरी एकदम करीब आते हुए बोली सुंदर से, ‘‘कइसन हो जानू? प्रेम-पत्र दिहे के बाद ता हमार हालत बिगड़त चला गवा और तूँ... इतना निर्दयी कि कभौं मिलबौ न उचित समझ्या?’’

सुंदर चुप रहा। एकटक देखता रहा सुंदरी को। क्या बोले यह उसकी समझ के बाहर था। सुंदर कुछ बोलने की स्थिति में हो ही रहा था कि उसके कंधे पर जोर डालते हुए सुंदरी ने कहा, ‘‘जवान बाट्या, सुंदर बाट्या, त ई

संकोच कइसन? दूध पियत बच्चा त हया नाइ कि सब तोहें बताई? अब तक शादी भा होते ता..."

इसके आगे कुछ बोलती सुंदरी, सुंदर से बोले बिना रहे न गया, "ता का होइ जात? तोहरे याद में तीन महीना से बुरा हाल होत जात बा। कुछ अच्छा नाइ लागत जब तक तोहका देखि न लेई।"

"प्रेम में ऐसेइ होत ह सुंदर...हमसे पूछा...हमार का हाल बा हमहिंन जान सकित हा।" सुंदरी लंबी आहें भरते हुए सुंदर को एकटक निहारते हुए बोली।

"तोहार हाल का होए...दूसरे के बदहाल कइके खुद ऐश करत बाटू....हमरे ठिन कुँवारी होतू ता पता चलत।" प्रश्न भरी नजरों से प्रतिउत्तर में सुंदर बोला ही था कि सुंदरी का चेहरा लटक गया।

एकदम उदास होते हुए उसने जब कहा कि "इहै त दुःख बा सुंदर कि हम तोहरी कि नाइ नाइं बाटी। चार-चार लड़िकन के पाले-पोसे में जवानी कहाँ गायब होई गई आज तक नहीं पता चला। ऊपर से नशेड़ी पति, मुँह झौंसा प्यार कइसन होत ह अबे तक ओके नाइं पता चल सका। हमरी कि नाइं होत्या त पता चलि जात...."

सुंदर से सुंदरी की ये मायूसी सही न गयी और वह एकदम विक्षिप्त होते हुए बोला, "नाहीं सुंदरी, तूँ अबौ जवान हऊ। के कहत ह कि तू बुढाई गई बाटू? दिल अउ मन जवान होई के चाही जवन तोहरे में अच्छे से बा।" संकेतों में देखते हुए जब सुंदर ने यह बात सुंदरी से कही तो सुंदरी स्वयं में सिमटते हुए लिपट गयी सुंदर से।

सुंदरी का ऐसे लिपटना सुंदर को असहज जरूर कर गया, लेकिन इसका तनिक भी बुरा उसने न माना। जिस शरीर के आकर्षण ने दोनों को मतवाला बना विक्षिप्त अवस्था में लाकर खड़ा कर दिया था, आज वही शरीर गौण हो गया और दोनों एक-दूसरे में मिलन-सुख से रोमांचित हो लिए। काफी देर तक दोनों ने एक दूसरे को स्पर्श करते, मुस्कराते, एक-दूसरे के साथ बिताया, बाद उसके दोनों के घर से बराबर की दूरी पर मौजूद एक छोटे-से तालाब की लताओं की ओट में मिलने का वायदा करते हुए एक-दूसरे से विदा होने का मन बनाया। दिन, समय और जिम्मेदारियाँ निर्धारित की गयीं। इन दोनों की

वर्तमान स्थिति ऐसी थी जैसे हजारों वर्षों से जुदा हृदय मिला था, जैसे हजारों वर्ष के लिए फिर जुदा हो रहा था।

एक तरफ रोमानियत का ज्वार था तो दूसरी तरफ स्थायित्व की लहर। सुंदर जहाँ सुंदरी में रोमांस ढूंढ रहा था, सुंदरी वहीं सुंदर में स्थायित्व तलाशने लगी थी। हैसियत और रुतबे को लेकर व्यावहारिक जीवन में दोनों एक-से थे। अंतर बस इतना था दोनों में कि सुंदरी पर जहाँ परिवार की जिम्मेदारी थी, सुंदर वहीं अभी उस जिम्मेदारी में आने की तैयारी कर रहा था। दोनों के स्वप्न अलग थे, राहें अलग थीं और विश्वास भी अलग था। एक था तो एक-दूसरे से मिलने-जुलने की ख्वाहिश का होना।

पहली मुलाकात में वह बहुत कुछ हो गया था, जिसकी एक प्रेमी-प्रेमिका चाह रखते हैं। दूसरी मुलाकात एकदम नजदीक थी। सुंदरी पहले पहुँच चुकी थी। लतापात के झाँखड में घुसते हुए एक बार तो डरी सुंदरी कि कहीं कोई देख न रहा हो, लेकिन बाद में निर्द्वंद होकर बैठ गयी एक जगह। उधर से सुंदर भी भागा चला आया। मिलन की उत्कंठा में डर की गुंजाईश हो तो भय बना रहता है। हर्ष और भय के मिले-जुले प्रभाव में सुंदर का चेहरा तमतमाया हुआ था। सुंदर जब सुंदरी के पास आया तो उस तमतमाए चेहरे में सौंदर्य की झलक साफ दिखाई दे रही थी सुंदरी को। सुंदरी उठने को हुई कि सुंदर ने मना कर दिया और उसकी गोदी में सिर डालकर लेट गया। ममत्त्व के साथ-साथ प्रेम-हृदय पुलकित हो उठा था उसका, क्योंकि ऐसा बहुत दिन बाद हुआ था जब कोई उसकी गोदी में अपना सिर देकर निर्द्वंद्व दिखाई दिया हो। सिर पर हाथ फेरते हुए सुंदरी ने कहा, ''देखा सुंदर! आज सब कुछ कितना सुंदर लगत बा न? का कभौं हम सोचे रहे कि एक दिन हम अउर तूँ एक-दूसरे से एक प्रेमी-प्रेमिका के रूप में मिलब!''

''नाहीं सुंदरी! कभौं नाइ सोचे रहे। यहिं गोदी में कितना सुकून बा सुंदरी? हमार त मन करत बा कि पूरा जीवन इहीं गोदी में पड़ा रही...'' आँखों में आँख डालते हुए सुंदर ने जवाब दिया।

‘‘सुंदर! ए सुंदर! ई गोदिन नाइ यार! सब कुछ तोहरे अहइ। ई पूरा शरीर सुकून के खजाना हवै जान।’’ शर्म और अधिकार के मिले-जुले भाव में बोलते हुए सुंदरी ने सुंदर को आश्वस्त करना चाहा।

साँझ ढल रही थी। सूर्य धीरे-धीरे ओझल रहा था नजरों से। दोनों के शरीर पर ओंस की बूँदों का प्रभाव स्पष्ट नजर आ रहा था। अब तक वातावरण एकदम शांत हो चुका था। दोनों में हलचल की कमी फिलहाल नहीं थी। दोनों एक-दूसरे के इतने करीब थे कि दूर होने का नाम नहीं ले रहे थे। दोनों को जाना तो था घर, लेकिन एक-दूसरे के आकर्षण में उलझे देखते हुए ऐसा लग रहा था जैसे वही उनका अपना घर हो।

सुंदर को बाहों में कसते और बालों में अपनी उँगलियों को उलझाते हुए सुंदरी ने कहा, ‘‘सुंदर! ओस पड़े लगी। देखत अह्या कि नाइ?’’

‘‘हाँ यार! देखत त बाटी। लेकिन सुंदरी! ई ओस के बूँद पता नाहीं हमका कैसन लगत बाटइ।’’ चिंता भरे स्वर में सुंदर ने कहा तो अपनी बाहों का घेरा ढीला करते हुए सुंदरी बोली, ‘‘कैसन लागत बा?’’

‘‘जइसे ओंस के बूँद न होइके हमार तोहार आँसू के बूँद होई। जितना हम यहिं बूँदन से तरल होत अही लागत बाटइ एक दूसरे के आँसू से भीगत अही।’’ अपनी बात भावुकता में कहते चला गया सुंदर।

‘‘नाहीं सुंदर! अबहीं त हम एक-दूसरे के भये हन। बहुत जीवन बा अबे। तोहका लेके हमरे मन में बहुत कुछ बा सुंदर! अइसन काहें कहत बाट्या?’’ सुंदरी ने लगभग अधीरता में बोलते हुए प्रश्न भरी निगाहों से पूछा सुंदर से।

सुंदर के पास कोई स्थाई जवाब तो था नहीं कि वह सुंदरी को संतुष्ट कर सकताद्य फिर भी अपनी बात स्पष्ट करने की कोशिश करता हुआ बोला, ‘‘सुंदरी हर प्रेम के इहै हश्र होत हइ। सबसे अच्छा उहै हवेन जे प्रेम में नाइं बाटेन। का पता कल हमार बिछुड़न के दिन आवै, अउर इहै आँसू आधार बनै जिए खातिर.....’’

‘‘नाहीं सुंदर! अइसन कुछ न होए। अच्छा उठा अब चला जाई। ओसे में ज्यादा रहे ठीक नाइं होतै सुंदर। भविष्य के का पता? हम आज यहिं झुरमुट में बैठे बाटी का पता कल कौनों महल में रही?’’ सांत्वना देते हुए सुंदरी ने सुंदर से कहा तो सुंदर आसमान की तरफ ताकते हुए उठने की कोशिश में बोला, ‘‘देखा जाएगा सुंदरी! केकरे भाग्य में का लिखा बा ई त समये बताई,

अबहीं हमन के प्रेम-रंग में रंगे रहन दिया जाए। क्यों सुंदरी, है न...” सुंदर के मुख से ये बातें सुनकर सुंदरी उससे लिपट गयी तो दोनों बहुत देर तक एक-दूसरे में खोए रहे। यह खोना सुंदरी के लिए जहाँ अतीत से छुटकारा पाने का पूर्वाभास था तो सुंदर के लिए उज्ज्वल भविष्य के लिए एक आशियाना। दोनों के अपने स्वप्न थे तो यथार्थ भी उनके अपने थे, जिनसे अनजान बनने की कोशिश तो थी लेकिन सफल होने के आसार कम थे। शाम के धुंधलके में दोनों ने जब अपने-अपने घर की तरफ कदम बढ़ाया तो यह आभास होते देर नहीं लगा कि आने वाले दिन ऐसा हो कि हम अलग दिशा में न जाकर एक दिशा की तरफ एक साथ बढ़ें!

जहाँ आने से लोग अक्सर डरते हैं वही स्थान किसी के जीवन का अहम् हिस्सा बन जाता है। इधर लगभग सात-आठ महीने से तालाब के लतापात के झुरमुट सुंदर और सुंदरी के रहने के आशियाने बने हुए थे। घर की भीड़ से निकलकर जिस एकांत की तलाश होती दोनों को, वह यहीं आकर पूरी होती। अब तक गाँव के कुछ लोग इस प्रेम-प्रसंग के हिस्सा बन गए थे। गुजरी और सुमित्रा के लिए यह प्रेम नफे और नुकसान के समीकरण पर आधारित एक गेम था तो कईयों के लिए दिल का मामला। मामला इतना बढ़ गया था कि सुंदरी और सुंदर के बीच की तीसरे की उपस्थिति भी हो गयी थी। आज सुंदरी यही खबर लेकर आई थी सुंदर के लिए कि उसकी बगिया में एक पुष्प-कली की परिकल्पना साकार रूप लेने वाली है। जितना सुंदर देर कर रहा था, सुंदरी उतनी ही अधिक रोमांचित और गर्वित महसूस कर रही थी स्वयं को।

सुंदर अपना एक अलग बाग लगाना चाहता था, जिसके लिए नए वृक्ष की व्यवस्था हो गयी थी। कल उसको देखने वाले आ रहे थे। सुंदर यह खबर आज जल्दी ही सुंदरी को दे देना चाहता था ताकि सुंदर और सुंदरी के बीच के प्रेम-प्रसंग को अब विराम दिया जा सके। जो सुंदरी एक अप्सरा की तरह प्रतीत होती थी सुंदर को, आज वह उम्र-दराज बूढ़ी लग रही थी और जो सुंदर बच्चा लग रहा था सुंदरी को, आज वह प्रौढ़ जिम्मेदार साथी। समय का पहिया जब करवट लेता है तो ऐसे विरोधाभासी वातावरण का सृजन होता है।

सुंदर ने जब तालाब में प्रवेश किया तो उसकी चाल में पहले जैसी तत्परता नहीं थी। सुंदरी पहले से कहीं अधिक व्याकुल होकर मिली सुंदर से। डर तो सुंदरी को भी था कि कहीं सुंदर इस पुष्प-कली को उजाड़ने की सलाह न देने लगे? डर सुंदर को भी था कि कहीं सुंदरी को मेरी सगाई की खबर अच्छी न लगे? डर के केंद्र में समाधिस्थ दोनों ने एक-दूसरे को अपनी हाल-खबर कहने के लिए प्रेरित किया तो मौन ने दोनों में अपनी उपस्थिति बनाए रखी। प्रेम में पड़ने के बाद यह पहला अवसर था जब दोनों चुप थे, मौन थे।

''सुंदर! बोला न...आज इतना चुप चुप काहें बाट्या?'' सुंदरी ने जैसे जगाते हुए कहा सुंदर को।

''नाहीं यार, कहाँ चुप हई....? का बोली....? तुहीं बोला न कुछ?'' प्रश्न-मुद्रा में निहारते हुए सुंदर ने सुंदरी को प्रस्तावित किया।

''सुंदर....!" इतना कहते हुए सुंदरी ने सुंदर के सीने में अपना मुँह छिपा लिया।

कुछ देर के लिए सुंदर डर गया कि कहीं किसी को कुछ पता तो नहीं चला गाँव मेंद्य, ''क्या हुआ...? किसी को कोई खबर लगी क्या हमारे बारे में...बोला सुंदरी! बोला.....का भवा...'' एकदम चिंता में डूबते हुए प्रश्न पूछने लगा सुंदर।

''नाहीं जान! पता केके चली? चलिन जाई त केउ का करि लेई? प्यार किहे बाटी हम पचे, कौनों चोरी थोरिकऊ न कहे बाटी....?'' सुंदरी गंभीर होते हुए बोली।

''ऊ त ठीक बा सुंदरी, पर....'' जुबान को गले में फँसाते हुए सुंदर कुछ कहना चाहा लेकिन बात को काटते हुए सुंदरी बोलने लगी, ''पर का सुंदर...अब हमे पंचन के डरि के रहे के कौनों जरूरत नाइ बाद्य देखा जान! हमन के साल भर से लुकाछिपी मिलत हई, अब बात आगे बढ़ गवा बा। तोहे पता बा सुंदर....?'' सुंदरी ने सुंदर की आँखों में आँखें डालते हुए पूछा तो बहुत अधिक विक्षिप्त होते हुए सुंदर बोला, ''सुंदरी पता बा। कल हमार देखुवार आवत आहेन। पिता जी आजुवइ संदेश दिहेन हं। घर में सब तैयारी करत बाटेन।''

सुंदर के मुख से यह सब सुनते ही सुंदरी अवाक् रह गयी। उसके पैर से तो जमीं ही खिसक गयी। आँखों में आंसू का सैलाब भरे हुए वह फफककर

रो पड़ी, ''नाहीं सुंदर, अइसन न करा जान....हम तोहरे बिना कैसे जियब बतावा....? सब कुछ तो सौंप दिहे तोहका....ई शरीर के जर्रा-जर्रा तो तोहर होई गवा बा सुंदर...अउर तोहका का चाहे?''

''सुंदरी तोहार भरा-पूरा परिवार बा तूँ ओकर ख्याल दा। प्यार मौज-मस्ती बिना होत ह शादी बिना थोड़ी न। फिर कितना उमर बा तोहार? सब का कहिहैं हमका कभौं इहौ त सोचे होतु...'' कौन कहे सांत्वना देने के लिए सुंदर उलटे कोसने लगा सुंदरी को।

''सुना सुंदर! सुना जान! हम तोहार बच्चा के माई बने वाली बाटी। देखा अबहीं इहै खबर आज हम तोहका देवे आई रहे...सुंदर हम अब घर ना जाई सकब। जाबो करब त कल के निकालि उठब सुंदर....सुंदर अइसन न करा जान....'' सुंदरी रोये जा रही थी तो रोये जा रही थी।

रो तो सुंदर भी रहा था, लेकिन सुंदरी की स्थिति पर नहीं अपने भाग्य या दुर्भाग्य पर। वह नहीं जानता था कि बचपने की दिल्लगी इतनी बड़ी जिम्मेदारी में बदल जाएगी और न ही तो सुंदरी को भविष्य के इस आघात का कुछ पता था कि हँसते-खेलते युवा के साथ बिताए दिन पहाड़ बनकर टूट पड़ेंगे उस पर। दोनों ने एक-दूसरे को समझाया। दोनों ने एक-दूसरे को संभालने की कोशिश की। बात जितनी बननी थी, उससे कहीं अधिक बिगड़ती गयी। सैकड़ों रातों को हसीन बनाने वाला तालाब आज दोनों के अस्तित्व पर हँस रहा था और लतापात के पेड़ मुस्करा रहे थे। दोनों रो रहे थे। ओस की बूंदे गिरने लगीं थीं। आज इन बूँदों से बचने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। उपाय आया भी तो दोनों एक दूसरे पर बरसकर टूट पड़े थे। जिन हाथों और बाहों से प्रेम की बारिस होती थी रोज, आज उन्हीं हाथों के बाहों से दोनों एक-दूसरे को क्षत-विक्षत करने पर तुले थे। बहुत देर तक लड़ाई होती रही। चोट दोनों को लगी। शरीर पर लगने वाली चोट ने उतना अधिक परेशान नहीं किया, जितना परेशान हृदय पर लगने वाले चोट ने किया।

चलते-चलते सुंदरी की सुंदर के लिए चेतावनी थी, ''देखा सुंदर! अगर तूँ शादी के इनकार न किह्या त देखि लिह्या कल वहीं भरी समाज में तोहार इज्जत उतारब हम...हमार त जवन जाई के रहा गवा अब कुछ बचावे के रहि नाइ गवा बा लेकिन तोहऊँ के हम बचे न रहे देब...बर्बाद कै देब बच्चू राम.. .हलके में लिह्बौ न किह्या हमका....।''

"अगर आसौ-पास दिखाई दिहू तूँ त समझि लिहू...मामूली हमहूँ के न समझू...हम इतनौ नाइं अँधा अही कि तोहे जैसन रंडी-पतुरिया के जाल में फंसि जाब...समझी लिहू...।" एकदम आक्रोश में और हाँफते हुए बोला सुंदर।

मामला अब इतना बिगड़ चुका था कि दोनों ने अपने-अपने घर की तरफ रुख किया, लेकिन एक होकर नहीं खण्ड-खण्ड बंटकर। यह बँटना महज अलग होना नहीं था, होते हुए भी इस जमीं पर न होने के समान था।

सुंदर ने आज रात खाना नहीं खाया। घर पर परिवार के सदस्यों से भी लड़-झगड़ लिया बात-बात में। सबने सोचा क्या पता शादी को लेकर कुछ दिमाग में आया हो, इसलिए खीझा हुआ है। यह किसी को नहीं पता था कि सुंदरी मेन वजह है इन सब बातों के पीछे। सुंदर जब एक बार लेटा तो फिर दुबारा एक बार भी नहीं उठा रात में। बीच-बीच में कई बार जागकर बड़बड़ाते हुए जरूर सुना गया उसे।

इधर अपमान और तिरस्कार से बुरी तरह टूट चुकी सुंदरी ने बच्चों को खिलाने-पिलाने के बाद खाट का सहारा लिया तो देर रात तक नींद नहीं आई। अब वह अपने अस्तित्व को लेकर चिंतित थी। पति बिलकुल उससे बात नहीं करता था तो बच्चे ने भी एक-दो दिन से भला-बुरा कहना शुरू कर दिया था। सास-श्वसुर का शक भी अब विश्वास में बदलता जा रहा था। क्या करे और क्या न करे पूरी रात सुंदरी को यह चिंता सताती रही। अंत में उसने निर्णय लिया कि सुंदर की शादी वह नहीं होने देगी। जल्दी सुबह उठकर वह सुमित्रा के पास गयी। गुजरी को बुलवाकर एक पत्र लिखवाया और उसमें यह संदेश भिजवा दिया कि आज जब देखुआर आएँगे तो वह भी वहीं तांडव मचाएगी।

सुमित्रा ने जिस समय सुंदर को पत्र दिया, उस समय सुंदर किसी सदमें में पड़ा पश्चाताप की अग्नि में जल रहा था। पत्र देखते ही उसने झट से खोला तो चेतावनी देख उसके पैरों तले से जमीं खिसक गई। वह आसमान की तरफ देखते हुए जमीं पर धम से बैठ जाता है। उसके बैठने में कितनी पीड़ा और तड़प कितनी थी, इसे सुमित्रा ने गहरे में महसूस किया था।

बाजे बज रहे हैं। बच्चे नाच रहे हैं। घर के सभी सदस्य तैयार होने में व्यस्त हैं तो सुंदर सुमित्रा के माध्यम से सुंदरी को मानने में। दोपहर बारह बजे के आसपास देखुआर की गाड़ी आने की खबर लगी तो घर के लोग बहुत खुश हुए। चाय-नाश्ता-पानी का इंतजाम होने लगा। किसी भी रूप में सुंदरी के न समझौता करने की शर्त पर सुंदर हताश और परेशान हो गया। अंततः उसने अपने परिवार वालों के पास जाकर सुंदरी से संबंधित सारे वाकया की जानकारी देना उचित समझा।

उधर से देखुआरों की गाड़ी आई और इधर से सुंदरी बोरिया-बिस्तर लेकर धमक पड़ी। सुंदर के बताए किस्से को सुनकर परिवार वालों का खून पहले ही खौल रहा था, जैसे ही सुंदरी को देखा तो खींचकर एक कमरे में बंद कर दिया। इधर देखुआरी की रस्म-अदायगी हो रही थी तो उधर सुंदरी की पिटाई।

''हमार लड़का के जीवन बर्बाद कई दिहू तू भातारकाटी! अब का लेवे आई बाटू राण? बच्चा हवइ ऊद्य ओका बख्शि द हे चुड़ैलियऊ?'' सुंदर माँ ने सुंदरी को मारते हुए चीखकर बोली तो लगा जैसे खा जाएगी सुंदरी को।

''हम ओकर जीवन नाइ बर्बाद केहे हे छिनार हरे....! अरे मोरी माई. ..हमका का मारत अहू...अपने पिलौनउ से पूछे होतू.....अरे मोरे माई.....अरे माई रे.....अरे बाप्पा हो......अरे माई रे माई रे माई...'' सुंदरी दहाड़ मार कर रोए जा रही थी और सुंदर के घर वाले उसे निर्दयता से पीटे जा रहे थे। सुंदरी का प्रतिरोध कम होने का नाम नहीं ले रहा था।

यातना में जिद और बढ़ती है और यही हो रहा था सुंदरी के साथद्य वह पूरे दम से चीखते हुए बोली, ''हम काहें बर्बाद करी ओकर जीवन? ऊ त हमहिन के लूटेस ह। सब त लूटि लिहेस मुँहझौंसा रे....! हे रणऊ हरे.....! हे बेटवा चबउनिउ हरे...! ऊ दहिजरा कहाँ मरि गवा रे.......अरे माई रे माई.. ..अरे बप्पा रे.....''

सुंदरी चीख रही थी, चिल्ला रही थी, सुंदर को बुला रही थी, बार-बार बुला रही थी लेकिन किसी ने ध्यान नहीं दिया। ध्यान दिया तो बस इस बात पर कि किसी तरह वह अंततः बोल दे कि सुंदर से कोई संबंध नहीं रखेगी। सुंदरी ने ऐसा नहीं बोला तो अंत तक नहीं बोला।

सुंदर के घरवालों द्वारा इतनी बुरी तरह और निर्दयता से मारा-पीटा गया सुंदरी को कि उसने कोख में पल रहा चार महीने का बच्चा खो दिया। दर्द और पीड़ा से बिलबिला उठी सुंदरी, फिर भी किसी ने उसकी यथास्थिति पर ध्यान नहीं दिया। दो दिन से बगैर कुछ खाए-पिए सुंदरी जब तक पिटकर उनके चंगुल से मुक्त होती तब तक देखुआरों की गाड़ी जा चुकी थी। गाँव वालों को भी इस बात की भनक न लगने पाई। दर्द से कराहते और बेहोश पड़ी सुंदरी रात के धुंधलके में घर से बाहर निकाल दी गयी। जिस समय उसे मारकर भगाया जा रहा था, अपना गिरा हुआ बच्चा उठाना वह नहीं भूली।

रात के तीन बज रहे हैं और सड़क के किनारे लगे एक बगीचे में खून से लथपथ सुंदरी कराह रही है। दो दिन से बगैर कुछ खाए-पिए तो आदमी वैसे ही अचेत हो जाता है, सुंदरी के साथ तो पूरी की पूरी यातना घटी हुई है। सुबह पांच-छह बजे तक किसी ने आते-जाते उसके ऊपर एक कथरी (कंबल जैसा) डाल दिया है, उसी में लिपटी अपने खोए हुए चार महीने के बच्चे को बगल में रखे दर्द से तड़प रही है सुंदरी। सुबह हुई तो दिशा-मैदान के लिए लोगों का आना जाना शुरू हुआ। औरतें पहले तो डर कर भागीं, लेकिन जब कराहती और रोती औरत की आवाज पड़ी उनके कान में तो एक-एककर आने लगीं सहायता के लिए।

अगर किसी पुरुष का सीधा हस्तक्षेप न हो तो पुरुषों की अपेक्षा औरतों में सहयोग की भावना कुछ अधिक होती है। जो बागीचा अभी तक सुंदरी के उजड़े जीवन की दास्ताँ लिए मुर्दाघाट-सा प्रतीत हो रहा था, सुंदरी के लिए वही बगीचा अब संवेदना का लोक-आचार बन चुका था। दूर-दूर तक खबर फैलती गयी। किसी ने 'कुछ सुना, कुछ और उड़ा दिया' की तर्ज पर खबर को फैलाया तो किसी ने अलग से कुछ और कहानियाँ चिपकाकर पूरे गाँव में ढिंढोरा पीट दिया।

सुंदरी के घर खबर दी गयी तो किसी ने भी आने से मन कर दिया। पति ने एकदम से अपने बच्चों को रोका तो सास-श्वसुर ने जीभर गालियाँ दी। देवरों ने लज्जा से कुछ न बोलना ही उचित समझा। लोगों की निगाह में यह

महज सुंदरी का मामला नहीं था, अपितु पूरे परिवार और खानदान के इज्जत का सवाल था। कोई भले न गया सुंदरी के पास, लेकिन सास से न रहा गया। वह खबर सुनते ही सबके चोरी साल ओढ़े पहुँच गयी। देखते ही पहले तो दसियों गाली सुंदर और उसके परिवार को दिया फिर सुंदरी को गाली देते हुए कहा, ''का जरूरत रही रणऊ तोहका ई सब करे के? अबे तक अघानि नाइं रहू हरिजइयऊ? भरि गा तोहार मन, होई गऊ मस्त नाक कटवाइ के? मरि काहें नाइ गऊ कुलबोरनी?''

प्रश्नों और गालियों की बौछार में सुंदरी ने दर्द और दुःख के दबाव में इतना भर कहते हुए आँख मूँद लिया कि ''मरि त तोहऊँ के जाई के रहा, काहें जियत बाटू? तूँ काहें कटाए रहू नाक? का हम जाने रहे मुँहझौंसा के....'' दर्द की कराह से सुंदरी का गला रुंधा जा रहा था। बहुत मुश्किल से वह देख पा रही थी सबको और उससे कहीं अधिक मुश्किल से कुछ बोलने में समर्थ हो पा रही थी।

सुंदरी की हालात को देखते हुए किसी ने सलाह दी एक डॉक्टर को बुलाने की ताकि जल्दी उसे आराम हो सके। गाँव का ही हरिहर दौड़ा-दौड़ा सड़क पर गया तो डॉक्टर ने आने से यह कहते हुए मना कर दिया कि ''बदचलन के दवा हम न देबे। जा बोलि द्या, अउर फिर यहर ना आया।''

हरिहर को डॉक्टर का यह कहना उचित न लगा। उसने तुरंत प्रतिवाद करते हुए कहा, ''भूलि गया का डॉक्टर, जब आशिकी के चक्कर में खदेरा गवा रह्या गाँव से? हमहिन रहे जवन तोहका बचाए रहे?'' हरिहर का गुस्सा और प्रतिवाद का जवाब डॉक्टर के पास नहीं था तो उसने पीछे-पीछे होना ही उचित समझा।

सुखी वर्तमान के दायरे में रहते हुए हम अक्सर अपने दयनीय अतीत को भूल जाते हैं। इस समय जितने भी लोग गाँव के आए थे सुंदरी को देखने या कोसने उनमें से अधिकांश किसी न किसी रूप में ऐसे कांड कर चुके थे। इधर डॉक्टर दवा दे रहा था तो उधर से एक बुढ़िया की आवाज ऐसी सुनाई दी सबको जिसका अपना अतीत सुंदरी के वर्तमान से किसी मायने में कम न था, ''अरे मारा हरजाई के...नाक कटाई देहेस...सोन जैसन बच्चन के जिनगी खराब कै दिहेस ई...एका दवाई नाइ जहर द्या जहर...।'' हाँफते और गरियाते हुए जब वह आ रही थी तो उसके हमउम्र बुजुर्गों की निगाह उसी पर जाकर

अटक गयी। लगभग के मुँह से यह कहते सुना गया कि ''सुपवा बोले त बोले चलनियौ बोले, जेकरे बत्तीस छेद।''

दवा लेने के बाद सुंदरी को कुछ आराम मिला। धीरे-धीरे भीड़ जाती रही और आती रही। जितने लोग जाते उतने लोग आ जाते। वह दिन इसी गहमागहमी में बीता। सुंदरी न घर गयी और न ही कहीं अन्य जगह। देर रात जब कोई नहीं था तो उसका पति उसके लिए खाना पकाकर लाया और उसे खिलाते हुए घर चलने के लिए निवेदन करने लगा। सुंदरी तैयार न हुई। बच्चों का वास्ता दिया और अपने पति को वापस जाने के लिए दबाव बनाती रही।

प्रेम जितना आनंद देता है, दुःख भी उतना ही देता है। संघर्ष के क्षणों में जो प्रेम किसी प्रेरणा और प्रोत्साहन से बढ़कर होता है, वही प्रेम अपनी दुर्गति में शरीर के सड़े हुए अंग के सामान हो जाता है। न काटकर अलग होते बनता है और न अपने शरीर से लगाए रखना उचित। आज जो घाव सुंदरी के हृदय में लगा है वह पूरे जीवन टीस बन सालता रहेगा उसे। प्रेम के उन्माद में एक-एक क्षण कितना व्यस्त था, सुंदरी उसे याद कर रही है। प्रेम में उजड़ने के बाद एक-एक पल कितना पहाड़ हो गया है, सुंदरी उसका एहसास कर रही है। याद और एहसास के बीच मन जिस तरह से त्रिशंकु बन झूल रहा है, दरअसल वही सुंदरी की यथास्थिति थी इस समय।

वैसे भी व्यक्ति के पास जब कुछ नहीं रहता तो दो ही रास्ते बचते हैं- एक आत्महत्या का तो दूसरा नयी दुनिया-निर्माण में संघर्ष का। सुंदरी तो ऐसे मोड़ पर खड़ी थी जहाँ सारे रास्ते बंद थे। निर्माण के संघर्ष से कहीं अधिक लुभावनी होती है आत्महत्या की राह, सुंदरी को इस समय यही राह सबसे आसान और मुक्तिकामी प्रतीत हो रहा है। वह जितने कदम बढ़ रही है, उसे ऐसा लग रहा है जैसे मृत्यु उसे करीब से बुला रही हो। देस-दुनिया की रवायतों को देखते-झेलते कितना तो थक चुकी है वह। कितनी तो मायूस हो चुकी है लोगों में रहते-कुढ़ते। एक पल के लिए खड़े होकर सुंदरी सोच रही है कि प्रेम का अलाप नाहक लोग करते हैं। घृणा से कितने भरे हुए हैं लोग, पता तो पहले

भी समय-समय पर चलता रहा है सुंदरी को लेकिन आज जो उदहारण उसे मिला सबसे अधिक बर्बर, क्रूर और निरंकुश समय में होने का एहसास दे गए। सुंदरी फिर भी मृत्यु की तरफ नहीं जाना चाहती। ऐसे कितने ही क्षणों में उसने हिम्मत नहीं हारी और बार-बार उजड़ने के बाद भी दूब की मानिंद अपने जीवन को हरा-भरा करती रही। आज फिर उसने दबी जुबान ही सही जीवन के संघर्ष में आना उचित समझा।

लगभग एक हफ्ते बीत गए ऐसी दशा में रहते हुए। अब वह धीरे-धीरे सामान्य होने लगी। गाँव में जिसे जो कहना था कह चुका। पति सबसे यही कहता कि नहीं लाऊंगा उसे, लेकिन देर रात आकर उसे खाना खिलाता। बगल लेटे हुए उसकी सेवा करता और फिर देर रात ही वापस अपने घर आता। दस दिन बीतते-बीतते उसने सुंदरी को उसके मायके छोड़ दिया और आना-जाना लगाए रखा।

जीवन के नंगे यथार्थ को जो भोग चुका वह न तो दिखावटी आदर्श में विश्वास रखता है और न ही तो बनावटी वसूलों में आस्था। जब भी कोई नैतिकता और आदर्श की बात करता है उसके सामने वह भड़क उठती है। इन दिनों सुंदरी बच्चों को जीवन जीना सिखाने में व्यस्त है, नैतिकता की खाल ओढ़कर तिल-तिल मरना नहीं। इसीलिए उसने खुला परिवेश दे रखा है बच्चों को ताकि कोई इच्छा इसलिए न अधूरी रह जाए कि उसे अच्छा बनना है। अच्छे-अच्छों की नैतिकता रोज देख ही नहीं रही है सुंदरी, बल्कि दिखा भी रही है लोगों को!!

–सहायक प्राध्यापक, हिंदी–विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

मिरॅकल

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-2-7

संस्करण : 2014, मूल्य : 180/-

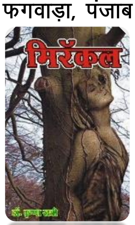

कहानी

रजनीगंधा मुरझा गए...

महेश कुमार केशरी

'पापा लाईट नहीं है, मेरी ऑनलाइन क्लासेज कैसे होंगी... ? कुछ दिनों में मेरे सेकेंड टर्म के एग्जाम शुरू होने वाले हैं.. कुछ दिनों तक तो मैनें अपनी दोस्त नेहा के घर जाकर पावर बैंक चार्ज करके काम चलाया.. लेकिन अब रोज-रोज किसी से पावर बैंक चार्ज करने के लिए कहना अच्छा नहीं लगता.. आखिर, कब आयेगी हमारे घर बिजली ?' संध्या अपने पिता आदित्य से बड़बड़ाते हुए बोली।

'आ जायेगी बेटा, बहुत जल्दी आ जायेगी!' आदित्य जैसे अपने आपको आश्वस्त करते हुए अपनी बेटी संध्या से बोला। लेकिन, वो जानता है कि वो संध्या को केवल दिलासा भर दे रहा है। सच तो ये है कि अब मखदूमपुर में बिजली कभी नहीं आयेगी। सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर ही बिजली विभाग ने यहाँ के घरों की बिजली काट रखी है। पानी की पाइपलाइन खोदकर धीरे-धीरे हटा दी जायेगी... और धीरे-धीरे मखदूमपुर से तमाम मौलक नागरिक सुविधाएँ स्वतः ही खत्म हो जायेंगी। ....और, सर से छत छिन जायेगी..! फिर वह, सुलेखा, संध्या, सुषमा और परी को लेकर कहाँ जायेगा ? बहुत मुश्किल से वह अपने एल. आई. सी. के फंड़ और अपने पिता बद्रीप्रसाद जी के रिटायरमेंट से मिले पंद्रह-बीस लाख रुपये से एक अपार्टमेंट खरीद पाया था। तिनका-तिनका जोड़कर जैसे गौरैया अपना घर बनाती है.!!.सोचा था कि, अपनी बच्वियों की शादी करने के बाद वो आराम से अपनी पत्नी सुलेखा के साथ रहेगा.. बुढ़ापे के दिन आराम से अपनी छत के नीचे काटेगा... लेकिन, अब ऐसा नहीं हो सकेगा, उसे ये घर खाली करना होगा ..नहीं तो.. नगर निगम वाले आकर जे. सी बी. से तोड़ देंगे!

वह दिल्ली से सटे फरीदाबाद के पास मखदूमपुर गाँव में रहता है। पिछले बीस-बाईस सालों से मखदूमपुर में तीन कमरों के अपार्टमेंट में वो रह रहा है। बिल्ड़र संतोष तिवारी ने घर बेचते वक्त ये बात साफ तौर पर नहीं बताई थी- ये जमीन अधिकृत नहीं है... यानी वो निशावली के जंगलों के बीच जंगलों और पहाड़ों को काटकर बनाया गया एक छोटा सा कस्बा जैसा था जहाँ आदित्य रहता आ रहा था। हालांकि, वह अपार्टमेंट लेते वक्त उसके पिता श्री बद्री प्रसाद और उसकी पत्नी सुलेखा ने मना भी किया था- 'मुझे तो ड़र लग रहा है। कहीं.. ये जो तुम्हारा फैसला है, वो कहीं हमारे लिए बाद में सिरदर्द ना बन जाये।'

तब उसी क्षेत्र के एक नामी-गिरामी नेता रंकुल नारायण ने सुलेखा, आदित्य और बद्री प्रसाद को आश्वस्त भी किया था- 'अरे, कुछ नहीं होगा। आप लोग आँख मूंदकर लीजिए यहाँ अपार्टमेंट... मैंने खुद अपने रिश्तेदारों और दोस्तों को दिलाया है यहाँ अपार्टमेंट... मैं पिछले पंद्रह-बीस सालों से यहाँ विधायक हूँ। चिंता करने की कोई बात नहीं है।' रंकुल नारायण का बहनोई था बिल्ड़र संतोष तिवारी। ये बात अगले आने वाले विधानसभा चुनाव में पता चली थी, जब अनाधिकृत कॉलोनी के टूटने की बात आदित्य को पता चली! रंकुल नारायण ने उस साल के विधानसभा चुनाव में, सारे लोगों को आश्वासन दिया था कि 'आप लोगों को घबराने की कोई जरूरत नहीं है। आप लोग... मुझे इस विधानसभा चुनाव में जीतवा दीजिये.. फिर मैं असेंबली में मखदूमपुर की बात उठाता हूँ, कि नहीं.. आप खुद ही देखियेगा..! कोई नहीं खाली करवा सकता, ये मखदूमपुर का इलाका... हमने आपके राशन कार्ड बनवाये... हमने आपके घरों में बिजली के मीटर लगवाये...यहाँ कुछ नहीं था... जंगल था जंगल! लेकिन हमने जंगलों को कटवाकर पाईपलाइन बिछाया। आप लोगों के घरों तक पानी पहँचाया... ये कोई बहुत बड़ी बात नहीं है.. अनाधिकृत को अधिकृत करवाना! असेंबली में चर्चा की जायेगी... और कुछ उपाय कर लिया जायेगा। इस मखदूमपुर वाले प्रोजेक्ट में मेरे बहनोई का कई सौ करोड़ रुपया लगा हुआ है। इसे हम किसी भी कीमत पर अधिकृत करवा कर ही रहेंगे। और अंततः रंकुल नारायण की बातों पर लोगों ने विश्वास कर उसे भारी मतों से जीतवा दिया था। और रंकुल नारायण के विधानसभा चुनाव जीतने के साल भर बाद ही सुप्रीम कोर्ट का ये आदेश आया था कि मखदूम पुर कस्बा बसने से निशावली के प्राकृतिक सौंदर्य और पर्यावरण को बहुत ही नुकसान हो रहा है... लिहाज.. जो

अनाधिकृत कस्बा मखदूमपुर बसाया गया है, उसे अविलंब तोड़ा जाये.. और डेढ़-दो महीने का वक्त खुले में रखे कपूर की तरह धीरे-धीरे उड़ रहा था।

'पापा... ना हो तो आप मुझे मेरी दोस्त सुनैना के घर छोड़ आईये.. वहाँ मेरी पावरबैंक भी चार्ज हो जायेगी और मैं सुनैना से मिल भी लूंगी। मुझे कुछ.. नोटस भी उससे लेने हैं।'

आदित्य को भी ये बात बहुत अच्छी लगी। सुनैना के घर जाने वाली. .. बच्ची का मन लग जायेगा.कोविड़ में घर में रहते-रहते बोर हो गई है। आदित्य ने स्कूटी निकाली और गाड़ी स्टार्ट करते हुए बोला- 'आओ बेटी, बैठो!'

थोड़ी देर में स्कूटी सड़क पर दौड़ रही थी। संध्या को सुनैना के घर छोड़कर कुछ जरुरी काम को निपटाकर वो राशन का सामान पहुँचाने घर आते ही पार्श्व जीवन में चला गया।

'मैं क्या करूं सुलेखा... तीन-तीन जवान बच्चियों को लेकर कहाँ किराये के मकान में मारा-मारा फिरूँगा। ...और अब उम्र भी ढलान पर होने को आ रही है... आखि, बुढ़ापे में कहीं तो सिर टिकाने के लिए ठौर चाहिए ही। कुछ मेरे एल.आई.सी. के फंड हैं, कुछ बाबूजी के रिटायरमेन्ट का पैसा पड़ा हुआ है, जोड़-जाड़कर कुछ पंद्रह-बीस लाख रुपये तो हो ही जाएँगे, कुछ संतोष तिवारी से नेगोशियेट (मोल- भाव) भी कर लेंगे..' और तब आदित्य ने बीस लाख में वो तीन कमरों वाला.. अपार्टमेंट खरीद लिया था. बिल्ड़र संतोष तिवारी से।

तब सुलेखा ने आदित्य को मना करते हुए कहा था- 'पता नहीं क्यों ये संतोष तिवारी और रंकुल नारायण मुझे ठीक आदमी नहीं जान पड़ते। इन पर विश्वास करने का दिल नहीं करता है।' लेकिन, आदित्य बहुत ही सीधा-सादा आदमी था। वह किसी पर भी सहज ही विश्वास कर लेता।

तभी उसकी नजर अपनी पत्नी सुलेखा पर गई, शायद आठवाँ महीना लगने को हो आया है। पेट कितना निकल गया है। उसने देखा सुलेखा नजदीक के चापाकल से मटके में एक मटका पानी सिर पर लिये चली आ रही है। साथ में उसकी दो छोटी बेटियाँ, परी और सुषमा भी थीं, वो अपने से ना उठ पाने वाले वजन से ज्यादा पानी दो-दो बाल्टियों में भरकर नल से लेकर आ रही थीं। आदित्य ने देखा तो दौड़कर बाहर निकल आया और, सुलेखा के सिर से मटका उतारते हुए बोला- 'पानी नहीं आ रहा है क्या ?'

उसका ध्यान बिजली पर चला गया। बिजली तो कटी हुई है, आखिर पानी चढ़ेगा तो कैसे ? मोटर तो बिजली से चलती है ना!

'नहीं, पानी कैसे आयेगा ? बिजली कहाँ है... एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानोगे ना! ना हो तो मुझे मेरे पापा के घर कुछ दिनों के लिए पहुँचा दो। जब यहाँ कुछ व्यवस्था हो जायेगी तो यहाँ वापस बुला लेना! बच्चा भी ठीक से हो जायेगा और मुझे थोड़ा आराम भी मिलेगा। यहाँ इस हालत में मुझे बहुत तकलीफ हो रही है। पानी भी नहीं आ रहा है, बिजली भी नहीं आ रही है..!' सुलेखा चेहरे का पसीना पल्लू से पोंछते हुए बोली।

अभी तक सुलेखा और बेटियों को 'घर टूटने वाला है', ये बात जानबूझकर, आदित्य ने नहीं बताई है। खामखा वो परेशान हो जायेंगी!

'हाँ पापा घर में बहुत गर्मी लगती है, पता नहीं बिजली कब आयेगी... हमें नानू के घर पहुँचा दो ना पापा!' परी बोली।

'हाँ बेटा, कोविड़ कुछ कम हो तो तुम लोगों को नानू के घर पहुँचा दूंगा।' आदित्य परी के सिर पर हाथ फेरते हुए बोला।

'तुम हाथ-मुँह धो लो, मैं चाय गर्म करती हूँ।' सुलेखा गैस पर चाय चढ़ाते हुए बोली।

चाय पीकर वह टहलते हुए नीचे बॉलकनी में आ गया। कॉलोनी में कहलोनी को खाली करवाने की बात को लेकर ही चर्चा चल रही थी।

कुलविंदर सिंह बोले- 'यहीं वारे (महाराष्ट्र) के जंगलों को काटकर वहाँ मेट्रो बनाया गया। वहाँ सरकार कुछ नहीं कह रही है, लेकिन हमारी कॉलोनी इन्हें अनाधिकृत लग रही है। सब सरकार के चोंचले हैं, मेट्रो से कमाई है, तो वहाँ वो पर्यावरण संरक्षण की बात नहीं करेगी.. लेकिन हमारे यहाँ निशावली के जंगलों और पर्यावरण को नुकसान पहुँच रहा है। हुँह.. पता नहीं कैसा सौंदर्यीकरण कर रही है सरकार! फिर ये हमारा राशन कार्ड, वोटर कार्ड, आधार कार्ड किसलिए बनाये गये हैं... केवल, वोट लेने के लिए! जब कोई बस्ती-कॉलोनी बस रही होती है, बिल्ड़र उसे लोगों को बेच रहा होता है.. तब सरकारों की नजर इस पर क्यों नहीं जाती ? हम अपनी सालों की मेहनत से बचाई पाई-पाई जोड़कर रखते हैं, अपने बाल-बच्चों के लिए.. और, कोई कारपोरेट या बिल्ड़र हमें ठगकर लेकर चला जाता है... तब, सरकार की नींद खुलती है... हमें सरकार कोई दूसरा घर कहीं और व्यवस्था करके दे, नहीं तो हम यहाँ से हटने वाले नहीं हैं...!'

घोष बाबू सिगरेट की राख चुटकी से झाड़ते हुए बोले- 'अरे.. छोड़िये कुलविंदर सिंह! ये सारी चीजें सरकार और, इन पूंजीपतियों के साँठगाँठ से ही होती हैं। अगर अभी जाँच करवा ली जाये तो आप देखेंगे कि हमारे कई

मिनिस्टर, एम.पी., एम.एल.ए. इनके रिश्तेदार इस फर्जीवाड़े में पकड़े जायेंगे। सरकार की नाक के नीचे इतना बड़ा कांड़ होता है, करोड़ों के कमीशन बंट जाते हैं, और आप कहते हैं कि सरकार को कुछ पता नहीं होता... हैं... कोई मानेगा इस बात को! सब सेटिंग से होता है। नहीं तो इस देश में एक आदमी फुटपाथ पर भीख माँगता है, और दूसरा आदमी केवल तिकड़म भिड़ाकर ऐश करता है... ये आखिर, कैसे होता है... ? सब जगह सेटिंग काम करती है!'

उसका नीचे बॉलकनी में मन नहीं लगा। वह वापस अपने कमरे में आ गया और बिस्तर पर आकर पीठ सीधी करने लगा।

'तुमसे मैं कई बार कह चुकी हूँ, लेकिन तुम मेरी कोई भी बात मानों तब ना... अगर, होटल लाईन नहीं खुल रही है तो कोई और काम-धाम शुरू करो! समय से आदमी को सीख लेनी चाहिए... कोरोना का दो महीना बीतने को हो आया और सरकार,होटलों को खोलने के बारे में कोई विचार नहीं कर रही है। आखिर और लोग भी अपना बिजनेस चेंज कर रहे हैं, लेकिन पता नहीं तुम क्यों इस होटल से चिपके हुए हो ?'

कौन समझाये सुलेखा को, बिजनेस चेंज करना इतना आसान नहीं होता है... एक बिजनेस को सेट करने में कई पीढ़ियाँ निकल जाती हैं। फिर उसके दादा परदादा ये काम कई पीढ़ियों से करते आ रहे थे। इधर नया बिजनेस शुरू करने के लिए नई पूँजी चाहिए, कहाँ से लेकर आयेगा वो अब नई पूँजी ? इधर होटल पर बिजली का बकाया बिल बहुत चढ़ गया है। स्टाफ का दो-तीन महीने का पुराना बकाया चढ़ा हुआ था ही... रही-सही कसर इस कोरोना ने निकाल दी। कुल चार-पाँच महीनों का बकाया चढ़ गया होगा अब तक...। दूकान खोलते-खोलते दूकान का मालिक सिर पर सवार हो जायेगा- दूकान के भाड़े के लिए...। दूध वाले, राशन वाले को भी लॉकड़ाउन खुलते ही पैसे देने होंगे... पिछले बीस-बाईस सालों का संबंध है उनका, इसलिए वे कुछ कह नहीं पा रहे हैं। आखिर वह करे तो क्या करे ? पिछले लॉकड़ाउन में भी.. जब संध्या और सुषमा के स्कूलवालों ने कैम्पस केयर (एजुकेशन ऐप) को लॉक कर दिया था, तो मजबूरन उसे जाकर स्कूल की फीस भरनी पड़ी थी। आखिर स्कूल वाले भी करें तो क्या करें...? उनके भी अपने खर्चे हैं! बिल्डिंग का भाड़ा, स्टाफ का खर्चा और स्कूल के मेंटेनेंस का खर्चा, कोई भी हवा पीकर थोड़ी ही जी सकता है! आखिर कहाँ गलती हुई... उससे, वह इस देश का नागरिक है, उसे वोट देने का अधिकार है, वह सरकार को टैक्स भी देता है... सारी चीजें उसके पास थीं.. पैन कार्ड, राशन कार्ड, वोटर कार्ड, आधार कार्ड। लेकिन जिस घर में वह

इधर बीस-बाईस सालों से रहता आ रहा था, वह घर ही अब उसका नहीं था। घर भी उसने पैसे देकर ही खरीदा था। उसे ये उसकी कहानी नहीं लगती, बल्कि उसके जैसे दस हजार लोगों की कहानी लगती है! मखदूमपुर दस हजार की आबादी वाला कस्बा था। ऐसा शायद दुनिया के सभी देशों में होता है... नकली पासपोर्ट, नकली वीजा... वैध-अवैध नागरिकता... सभी जगह इस तरह के दस्तावेज, पैसे के बल पर बन जाते हैं। सारे देशों में सारे मिडिल क्लास लोगों की एक जैसी परेशानी है, ये केवल उसकी समस्या नहीं है, बल्कि उसके जैसे सैंकड़ों-लाखों करोड़ों लोगों की समस्या है। बस... मुल्क और सियासत दाँ बदल जाते हैं, स्थितियाँ कमोबेश एक जैसी ही होती हैं... सबकी एक जैसी लड़ाईयाँ! बस लड़ने वाले लोग अलग-अलग होते हैं.... जमीन-जमीन का फर्क है, लेकिन सारे जगहों पर हालात एक जैसे ही हैं। आदित्य का सिर भारी होने लगा और पता नहीं कब वह नींद की आगोश में चला गया।

वह सुलेखा और अपनी तीनों बेटियों को अपने ससुर के यहाँ लखनऊ पहुँचा आया था। और बहुत धीरे से इन हालातों के बारे में उसने सुलेखा को बताया था।

'अरे बाबूजी, अब ये रजनीगंधा के पौधे को छोड़ भी दीजिये। देखते नहीं पत्तियों कैसी मुरझा कर टेढ़ी हो गईं हैं। अब नहीं लगेगा रजनीगंधा... लगता है इसकी जड़ें सूख गई हैं। बाजार जाकर नया रजनीगंधा लेते आइयेगा मैं लगा दूंगा।' माली ने आकर जब आवाज लगाई, तब जाकर आदित्य की तंद्रा टूटी- 'ऊं... क्या चाचा... आप कुछ कह रहे थे!' आदित्य ने रजनीगंधा के ऊपर से नजर हटाई।

बीस-पच्चीस दिन हो गये हैं उसे नये किराये के मकान में आये। अगल-बगल से एक लगाव जैसा भी अब हो गया है। शिवचरन, माली चाचा भी कभी-कभी उसके घर आ जाते हैं। इधर-उधर की बातें करने लगते हैं तो समय का जैसे पता ही नहीं चलता। मखदूमपुर से लौटते हुए वह अपने अपार्टमेंट में से ये रजनीगंधा का पौधा कपड़े में लपेटकर अपने साथ लेते आया था। आखिर कोई तो निशानी उस अपार्टमेंट की होनी चाहिए, जहाँ इतने साल निकाल दिए।

'मैं कह रहा था कि बाजार से एक नया रजनीगंधा का पौधा लेते आना। लगता है इसकी जड़ें सूख गईं हैं! नहीं तो पत्ते में हरियाली जरूर फूटती. .. देखते नहीं कैसे मुरझा गयी हैं पत्तियाँ! कुंभलाकर पीली पड़ गईं हैं!. लगता है इनकी जड़ें सूख गई हैं... बेकार में तुम इन्हें पानी दे रहे हो!'

'हाँ चचा, पीला तो मैं भी पड़ गया हूँ। जड़ों से कटने के बाद आदमी भी सूख जाता है... अपनी जड़ों से कट जाने के बाद आदमी का भी कहीं कोई वजूद बचता है क्या..? बिना मकसद की जिंदगी हो जाती है... पानी इसलिए दे रहा हूँ... कि कहीं ये फिर से हरी-भरी हो जाएं...! एक उम्मीद है अभी भी, जिंदा है....... कहीं भीतर..!!'

आदित्य वहीं रजनीगन्धा के पास बैठकर फूट-फूट कर रोने लगा। बहुत दिनों से जब्त की हुई नदी अचानक से भरभराकर टूट गई थी। शिवचरन चाचा उजबकों की तरह आदित्य को घूरे जा रहे थे, उनको कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

–मेघदूत मार्केट, फुसरो, बोकारो (झारखंड) 829144

***

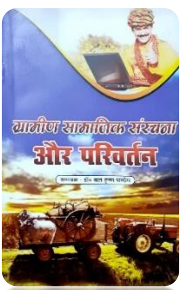

ग्रामीण सामाजिक संरचना और परिवर्तन

डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-929060-6-5

संस्करण : 2015, मूल्य : 200/-

बूंद में सागर

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-8-9

संस्करण : 2019, मूल्य : 200/-

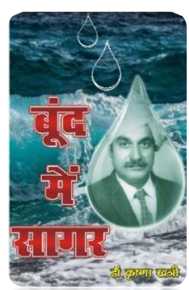

कहानी

अभिनय

राकेश कुमार तगाला

वह आज सुबह से परेशान था। वह पत्र पढ़कर रो रहा था। आखिर मेरा अपराध क्या था? जो मीना ने मेरे साथ ऐसा किया। वह खुद से तरह-तरह के सवाल कर रहा था। काश मैं मर जाता। वह दोबारा पत्र खोलकर पढ़ने बैठ गया।

"रवि, मैं जा रही हूँ। हमेशा-हमेशा के लिए। मुंबई मायानगरी मुझे बुला रही है। मुझे ढूंढने की कोशिश मत करना। तुम्हारा मेरा कोई मेल नहीं है। हमारे रास्ते अलग-अलग हैं। अब हम एक छत के नीचे नहीं रह सकते। वैसे भी तुम जैसे इंसान जीवन में धोखा खाने के लिए ही पैदा होते हैं। तुममें एक अच्छाई भी है। कोई भी तुम्हारे सामने बैठकर थोड़ा गिड़गिड़ा दे, फिर तो तुम गए काम से। तुम खुद को बड़ा दानवीर कर्ण समझते हो। मेरा कोई दोष नहीं, हर आदमी सफल होना चाहता है। सफलता की राह कठिन होती है। उसके लिए कई कठिन फैसले लेने पड़ते हैं। मैंने भी तुमसे अलग होने का फैसला ले लिया। पत्र पढ़कर आँसू मत बहाना। वैसे भी तुम औरतों की तरह, जब देखो गंगा-जमुना बहाना शुरू कर देते हो। तुम बड़े ही मूर्ख हो, समझ रहे हो ना... मैं क्या कह रही हूँ ? मैं फिर कह रही हूँ, मुझें ढूंढने का प्रयास नहीं करना।"

रवि पत्र रखकर फिर से रोने लगा- क्या मैं इतना बुरा हूँ ? फिर मुझसे शादी क्यों की थी... सारे समाज से लड़कर... हमारा समाज अंतरजातीय विवाह स्वीकार नहीं करता। पर तुम अड़ गई थी। तुमने अपने माता-पिता का बहिष्कार कर दिया था। मुझे आज भी वह दिन याद है। हमारे कह्लेज का वार्षिक समारोह, जिसमें तुमने सुंदर भाषण दिया था कि इंसान को आगे बढ़ाने के लिए कठिन से कठिन डगर को पार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। अपना लक्ष्य नहीं छोड़ना चाहिए। तुम्हारा जोशीला भाषण सुनकर कह्लेज के

लड़के-लड़कियाँ कुर्सियों से उठकर खड़े हो गए थे। अध्यापक भी तुम्हारी बहुत प्रशंसा कर रहे थे। सभी तुम्हें बधाई दे रहे थे। मैं भी उसी भीड़ में शामिल था। मुझे कभी नहीं लगा कि तुमने मुझे कभी नोटिस किया होगा। पर तुमने तो मुझे पूरी तरह हैरान दिया था। जब तुमने मेरा नाम पुकारा था- 'मिस्टर रवि, प्लीज रुक जाइए।' मेरे कदम खुद-ब-खुद रुक गए थे, तुम्हारी सुरीली आवाज सुनकर। तुम्हारा सवाल था- 'मेरा भाषण आपको कैसा लगा ?' मैं तुम्हें ही देख रहा था, बिना पलक झपकाए। शायद मुझे उसी समय तुमसे प्यार हो गया था। मन कर रहा था, अभी अपने प्यार का इजहार कर दूं। पर यह समय उचित नहीं था। 'जी, आपका भाषण कमाल का था! आपकी आवाज में कमाल का जोश है! आप तो अच्छी नेता बन सकती हो। आप इतनी सुंदर हो... अभिनेत्री बन सकती हो।' और तुम खिलखिला कर हँस पड़ी थी।

यह हमारी पहली मुलाकात थी। फिर तो हमारी मुलाकातों का सिलसिला चल पड़ा था। कभी कह्लेज कैंटीन में, कभी लाइब्रेरी में, पार्क में, बस में,सिनेमा में। सिनेमा, जब तुमने आमिर खान की फिल्म देखने की बहुत जिद की थी। मेरे लाख मना करने पर भी तुम नहीं मानी थी। क्या नाम था उस फिल्म का- 'अकेले हम अकेले तुम' मैं पीछे नहीं बैठना चाहता था। तुम मुझे खींचकर ले गई थी। पीछे आराम से बैठेंगे, पर मुझे डर था कि जब भी कोई रोमाँटिक सीन आएगा। मनचले सिटी बजाएंगे... और आगे कुछ भी बोल नहीं सका था। तुम पूरी तरह फिल्म में व्यस्त थी। फिल्म पूरी होने के बाद भी, तुम्हारी फिल्म पूरी नहीं हुई थी। सिनेमा से बाहर आने के बाद भी तुम हर सीन पर मुझसे तर्क-वितर्क कर रही थी। पहला सवाल था- क्या मनीषा कोइराला ने प्रेम विवाह करके अच्छा किया? अच्छा छोड़ो यह बताओ क्या आमिर खान का नया लुक तुम्हें पसंद आया ? क्या तुम्हें भी आमिर खान की फिल्म अच्छी लगती है? और ना जानें कितने ही सवाल कर डाले थे ? मेरा सिर चकराने वाला था। मुझे डर था कि कहीं मैं बेहोश ना हो जाऊं ? मुझे चुप देखकर तुम भी चुप हो गई थी। मैंने एक गहरी साँस ली।

मैं वर्तमान में लौट आया था। पत्र फिर से पढ़ना शुरू कर दिया-

"...अगर मुझे ढूंढने की कोशिश की तो तुम्हारे साथ बहुत बुरा होगा। पहली बात तो तुम मुझे ढूढ़ नहीं सकते। माया नगरी बहुत बड़ी है। फिर भी

अगर तुमने मुझे ढूंढ निकाला तो मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूंगी। झूठे रेप केस में, तुम्हें जेल की हवा खिलवा दूंगी।''

जेल की हवा, कोर्ट-कचहरी। वह एक बार फिर अतीत के आगोश में चला गया।

जब हमने कोर्ट-मैरिज कर थी। हम घर से दूर चले गए थे। तुम्हारे माता-पिता ने मुझ पर कोर्ट केस कर दिया था। पुलिस रात-दिन हमारे ठिकानों पर दबिश दे रही थी। मीना, तुम्हारे घर, तुम्हारी सहेली से पूछताछ की जा रही थी। मेरे परिवार का तो बुरा हाल था। पुलिस हर तरह से उन्हें प्रताड़ित कर रही थी। उनके साथ बुरा व्यवहार कर रही थी। जब मैंने कहा था कि हम और अधिक नहीं छिप सकते तो तुमने किस बहादुरी से पुलिस कमिशनर को फोन किया था। और सहयोग की अपील की थी। हम दोनों कोर्ट में आए थे। तुमने किस दिलेरी से अपने परिवार के सामने ही मेरा हाथ थाम लिया था। यह कहकर- 'जज साहब अगर मेरे पति को कुछ भी हुआ तो इसका सारा दोष मेरे परिवार का होगा। वह हमें मारना चाहते हैं।' तुम्हारे पिता जी तुम्हें घूर रहे थे। और तुमने किसी की परवाह नहीं की थीं। तुम तो सिर्फ जीतना चाहती थी। कोर्ट परिसर में तुम्हारी दिलेरी की चर्चा हो रही थी। लोग मुझे भी हाथ मिलाकर बधाई दे रहे थे। और कह रहे थे कि मैं बहुत किस्मत वाला हूँ। जो मुझे मीना जैसी जीवन साथी मिली हैं। मुझे तुम्हारी रुचि का पता था। तुम फिल्मों में काम करना चाहती थी, किसी भी कीमत पर। तुम दिन-रात फिल्मों का बारीकी से अध्ययन करती रहती थीं। फिर मुझसे उनके बारे में तर्क-वितर्क किया करती थी। तुम्हें तो मेरे खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती थी। अहफिस जाते समय जब भी टिफिन के बारे कहता था। तुम मेरे चेहरे पर गुस्सा देखकर भी नहीं डरती थी। बस मुझे पीठ पीछे से अपनी बाहों में भर लेती थी। मेरा गुस्सा तुम्हारा स्पर्श पाकर हवा में हो जाता था। मैं तुम्हारे आगे नतमस्तक हो जाता था। तुम्हें मेरी कमजोरी अच्छी तरह पता थी। उस दिन जब तुम सीढ़ियों से फिसलकर नीचे गिर गई थी। तुम्हें पाँव में मोच आ गई थी। मैं कितना घबरा गया था ? मैं बार-बार भगवान को कोस रहा था कि तुम्हारी जगह मुझे चोट लग जाती। पर तुम्हारे माथे पर दर्द की शिकन तक नहीं थी। तुमने खुद ही मालिश करके अपने पाँव को ठीक कर लिया था। तुम्हारी हिम्मत का मैं कायल था। मैं तुम्हारे सामने खुद को कमजोर समझता था या कमजोर था!

मैं मन ही मन कह रहा था- मीना अगर तुम मेरा साथ चाहती तो क्या मैं मना करता ? पहले भी तुम अपनी मनमर्जी ही करती थी। जब भी कोई फिल्म लाइन से जुड़ा व्यक्ति घर आता तो तुम घण्टों उससे बातें करती रहती थी। मैं तो उस दिन छुट्टी पर रहता था, तुम्हारे ही कारण। दिन में छह-छह बार तुम्हारे लिए कॉफी बनाता था। जब भी तुम घर पर खाना नहीं बनाती थी। मुझे यहीं कहती थी- बाहर खाने चलें, मैं तैयार रहता था। बस तुम्हें खुश देखना चाहता था। तुम ही मेरी खुशी थी। तुम्हें जब भी माया-नगरी से किसी रोल को प्ले करने के लिए बुलावा आता था। मैं सब काम छोड़कर तुम्हारे साथ चल पड़ता था। तुम्हें पता था कि मेरी सारी सेविंग धीरे-धीरे खत्म हो रही थी। पर मैं तुम्हारे लक्ष्य को पाने में तुम्हारा साथ दे रहा था। रोज-रोज छुट्टी लेना, मेरी नौकरी पर भी खतरा मंडरा रहा था। बह्स, मुझसे खुश नहीं था। पर तुमने ही सलाह दी थी कि बॉस को एक दिन घर पर बुला लो। पहले तो बॉस नहीं माने थे, पर जब मैंने काफी अनुरोध ने किया, तो बह्स मान गए थे। तुमने बॉस का जोरदार स्वागत किया था।

वह तो तुम्हारी तारीफ करते नहीं थकते थे- 'तुम्हारी बीवी तो कमाल की है! गजब का आत्मविश्वास भरा है उसमें। तुम्हारे हाथ तो मोती लग गया है।' बॉस ने कह दिया- 'तुम छुट्टी ले सकते हो।' पता नहीं तुमने क्या जादू कर दिया था ? तुम्हारा व्यक्तित्व ऊंचा होता जा रहा था।

जब तुम्हें पहला ब्रेक मिला था फिल्म में, तुम्हारा पहला रोल एक बेवफा का था। मैंने तुम्हें मना किया था कि तुम इस रोल को ना करो। पर तुमने सीधे शब्दों में कहा था- 'बड़ी मुश्किल से चांस मिला है।' वह फिल्म तो नहीं चली थी। पर तुम्हारे छोटे से रोल की भर पूर सराहना हुई थी। तुम आगे बढ़ने के लिए किसी भी हद तक जा सकती हो, तो तुमने हँसते हुए कहा था- 'जानू यह सिर्फ फिल्म की माँग थी। तुम भी ना...!' तुमने फिर मेरी कमजोरी का फायदा उठाया और मुझे बाहों में लेकर बोली- 'तुम बहुत जल्दी ही गर्म हो जाते हो।' उस दिन मुझे पहली बार डर लगा था कि कहीं आगे बढ़ने के चक्कर में तुम मुझे छोड़ ना दो। पर मैं गलत साबित हुआ। उस दिन से तुम मुझे अधिक प्यार करने लगी थी।

जब भी मैं कहता- 'मीना अब हमें परिवार को आगे बढ़ाने के बारे में सोचना चाहिए। हमारी शादी को चार साल हो गए हैं।' तुम बरस पड़ी थी-

'अभी बच्चे पैदा करने की क्या जल्दी है ? रवि, बच्चे पैदा करने के लिए जिंदगी पड़ी है। पहले मुझे अपना करियर बनाने दो। तुम जानते हो फिल्मों में बच्चों वाली को हीरोइन कौन लेता है?'

'क्या बात करती हो मीना ? तुम बहुत सुंदर हो...!'

'अब मक्खन लगाना बंद करो। तैयार हो जाओ, आज मुझे नई फिल्म की स्क्रिप्ट सुननी है।'

'किस विषय पर...'

'यह एक अंग्रेजी नॉवल हैं- 'लेडी चार्टली का प्रेमी'।'

'मीना तुम भी किस तरह का रोल करने का तैयार हो जाती हो।'

'क्यों इसमें क्या बुरा है ?'

'बुरा ही बुरा है। उसमें नायिका अपने पति को छोड़ देती है।'

'रवि अब बस भी करो, माया-नगरी में काम मिलना कितना कठिन है? अगर किसी तरह काम मिलता है, तो तुम...! बस करो, अगर तुम नहीं चाहते तो मैं काम करना छोड़ देती हूँ। तुम्हें मेरा फिल्मों में काम करना कोई खास पसंद नहीं है।'

मुझे अपने व्यवहार पर शर्म आ रही थी- 'मीना, तुममें तो अभिनय कूट-कूट कर भरा पड़ा है। तुम्हें बहुत सारी फिल्में मिल जाएगी। तुम चिंता मत करो। तुम तो अभिनय के लिए बनी हो।'

'हाँ, आज तुमने मेरा दिल जीत लिया है। तुम कितने अच्छे हो, रवि। पर तुम बात-बात पर भावुक हो जाते हो। भावुकता इंसान की कमजोरी है, समझे मेरे सरताज।'

दूसरी तरफ बहस का व्यवहार भी मेरे प्रति घृणा से भरता जा रहा था- 'जब नौकरी ढंग से करनी नहीं है तो छोड़ क्यों नहीं देते ? ऐसे तो काम चलने वाला नहीं है। तुम्हें जल्दी ही निर्णय करना होगा।'

'सर, बस थोड़ा सा टाइम चाहिए।'

अब मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि नौकरी भी हाथ से जाने वाली है। आज तो बहस ने सभी के सामने ही मेरी इज्जत उतार दी थी।

'रवि, देखो मुझे कई फिल्मों में काम करने के अहफर मिले हैं।' वह कहती जा रही थी, मैं सुनता जा रहा था। मुझे समझ नहीं आ रहा था। मीना क्या कह रही थी- 'बस अब मैं शानदार हीरोइन बन जाऊंगी। मेरे अभिनय पर

जोरदार तालियाँ बजेगी। तुम, देखना मेरा सपना पूरा होगा। मेरी मेहनत रंग लाएगी। मेरा अभिनय मुझे अमर कर देगा।'

मैं फिर वर्तमान में लौटाया। पत्र की आखिरी लाइन थी।

"...मैं तुम्हें जेल भिजवा दूंगी, अगर तुमने मुझे ढूंढने की कोशिश की तो...।"

डोर बेल लगातार बज रही थी। सामने पेपर वाला खड़ा मुस्कुरा रहा था- 'सर देखो, मीना जी को उनके शानदार अभिनय के लिए बेस्ट अभिनेत्री का अवहृर्ड मिला है। बधाई हो, बधाई हो।'

मैं मन ही मन कह रहा था- मेरे साथ भी तो मीना इतने साल से अभिनय कर रही थी। प्यार का अभिनय...!

उसने दरवाजा बंद कर दिया।

ख़्वाहिशें

बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-4-1

संस्करण : 2015, मूल्य : 300/-

कदम रखना मगर हौले से

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-5-4

संस्करण : 2020, मूल्य : 155/-

कहानी

चिंदी

रजनी शर्मा

नीम का पेड़ आज लहरा उठा। आज नियत समय पर सोमारु अपने लंगर-लश्कर के साथ उसकी छांव तले जा पहुंचा था। धूप में दिनभर बैठने के कारण तांबई हो चली त्वचा, सुरती (तंबाकू) से पीले रंग के हो चुके दांत, लगभग छहफुटिया कद। संतुलित पर पुष्ट कद काठी। एक प्लास्टिक की चप्पल और आदम जमाने की सिलाई मशीन। कतरनों से भरा झोला। कुल जमा इतनी ही पूंजी उसके पास थी। या यूं कहिए विरासत में उसे इतना ही मिला था।

नीम की शाखों ने मानो अपनी बांहें फैलाकर अपने आप को हैंगर के रूप में सोमारू के सामने प्रस्तुत कर दिया था। सोमारू ने झोला जो करतनों से भरा था और तुमा (पात्र) के टोडरा (गर्दन) नीम की शाखों पर अटका दिया। सिलाई मशीन जमीन पर रखी। आसपास की जगह को साफ किया और स्वयं भी मशीन लेकर बैठ गया। नीम के नीचे बिना दीवारों वाली टेलरिंग की दुकान अब सज चुकी थी।

सोमारू का जीवन मशीन के चक्कों ऊपर ही चलता था। आड़ी तिरछी सिलाई करके वह रोज के पसिया भात व नोन (नमक) के लिए ही पैसे जुटा पाता था। क्या पता वह सिलाई करता था या बस्तर के ग्रामीण महिलाओं के सपने सिलता था। या फिर पुराने हो चुके आकांक्षाओं डूबी उम्मीदों वाले डोकरा-डोकरी, बुजुर्गों के सपनों की कथड़ी (पुराने कपड़ों से बना बिछावन ओढ़ावन) सिलता था।

मड़ई की घोषणा हो चुकी थी पिछले हफ्ते सोनारपाल की मड़ई में। कोतवाल ने तेतर रुख खाल्हे (इमली के पेड़ के नीचे) मुनादी कर दी थी कि आगामी मड़ई में मेटगुड़ा में होगी। नीम भी आज किलक रहा था...। मुफ्त में ठंडी हवा बांट रहा था। आखिर उसकी छांव तले लोग जो आते हैं कुछ सिलवाने के लिए। सोमारू के आस-पास के गांव में दर्जी सोमारू की तूती बोलती थी।

कोयलू ने पास आकर अपनी फटी धोती सोमारू को देते हुए कहा– 'ऐके खिंडिक सुजी मारून देस।' (इसे जरा सिलाई कर दो)। गोया कि सोमारू कपड़ों का डह्क्टर हुआ।

पूरे मड़ई में बाजा, पोंगा बज रहा था। बाजू में कुछ घंटों को रखकर कढ़ाई चढ़ चुकी थी। गुड़िया खाजा बह बन रहा था। इतनी मीठी मीठी खुशबू आ रही है। अहा.... नीम की पत्तियां भी लरज जा रही थी। उन्हें भी अपने कड़वी पत्तियों के स्वाद से ऊब होने लगी थी। अब वे भी मीठी–मीठी बास अपने नथुने सरंध्र से अवशोषित करना चाह रहे थे। धूप चढ़ आई थी। आखिर नीम का पेड़ सोमारु को कब तक बचाता। चमड़ी तपने लगी थी। आतें कुलबुलाने लगी थीं। बोबो खाने को मन ललचा रहा था। पर पैसे अभी खर्च हो गए तो आगामी मड़ई तक गुजारा कैसे होगा ?

सोमारू उस नीम के पेड़ पर टंगे तुमा को निकालकर मड़िया पेज दोनों में रखकर सड़प सड़प गटक गया। आंतें शांत हुई।

दिन के दो बज गए थे। अभी तक दो–तीन ग्राहक ही आए थे। सोमारू ने सिर उचकाकर देखा भीड़ में उन्माद छाया हुआ था। मुर्गा लड़ाई जो चल रही थी। मुर्गा लड़ाई में दो पक्ष होते हैं। दोनों अपने–अपने मुर्गों सको सल्फी (मध) मिला दाना खिला–खिला कर उकसा रहे थे। मानो यह मुर्गा लड़ाई भी एक प्रकार का टेलरिंग हो। जहां पर सही नाप जोख है तो उसे बिगाड़ने की भी कला का प्रदर्शन भी है। भीड़ जुटाने और भीड़ को तितर–बितर कर दो अलग–अलग गुटों में विभक्त करने का भी धंधा गांव का सरपंच सोनाधर ने चला रखा था। मुर्गा लड़ाई के स्पांसर के रूप में सोनाधर की लगभग सभी मड़ई में तूती बोलती थी। बाजार पर कब्जा उसी का था। किसका मुर्गा दांव पर लगेगा, किसके पक्ष में भीड़ का जयकारा लगेगा। यह सब सोनाधर के 'भीड़ टेलरिंग' के हुनर के हाथों नियंत्रित होता था। मुर्गा लड़ाई देखने आई लेकियों (लड़कियों) की टोलियां स्थानीय लुंगी में अपना मुंह छुपाकर देख रही थी। पर कनेर की आंखों के एक–एक भाव का नाप–जोख सोनाधर पिछले कई दिनों से रख रहा था।

कनेर पनारा कुल की कन्या थी। गोरा रंग उस पर ठुड्डी में गोदने के चित्र पर मोरपंखिया गोदना उसके बस्तरिया सौंदर्य को और भी गमका जाते थे। कनेर अपने नाम के अनुरूप चट्ट पीला ब्लाउज पहने घुटने के ऊपर बंधी साड़ी और जंगली टेसू से लाल ओंठ। अभी तो कनेर और सेवती ने मिलकर बजरिया पान खरीदकर खाया था। खाया कम था उन दोनों ने। उनकी पूरी कोशिश यह की थी कि पान की लाली होठों के अभेध किले के भीतर ही सुरक्षित रहे।

चगल-चगल कर दोनों ने अपने-अपने होठों को सरई पान के पिहुन पाहुन पाना के भीतर जैसे पान की लोई को रख रहे थे। और अंगारों से सुर्ख रंगे होठों को देखकर दोनों कठ्ठल गये (हँस पड़े)।

सोनाधर आज सल्फी के सुरूर में बार-बार कनेर के पीछे जा रहा था। पिछले कई मड़ई में कनेर में सोमारू के पास पोलका (ब्लाउज) सिलवाया था। गांव में जहां सदियों से नैसर्गिक अनावृत कंधों का सौंदर्य बस्तर के चप्पे-चप्पे में बिखरा रहता था। वहां अब शहरिया बेलाऊज (ब्लाउज) वाली संस्कृति भी पनपने लगी थी।

बस्तर बाला के नैसर्गिक सौंदर्य को रैपरर पहनाने की विकृत संस्कृति ने भी पैर जमाने शुरू कर दिए थे। इसके पहले हाथ की बुनी मात्र एक साड़ी मेहनतकश बस्तर बालाओं के कसे सौंदर्य को ढ़कने के लिए पर्याप्त हुआ करती थी। और यह जिम्मेदारी उनके अनावृत कंधों ने उठा रखा होता था। जो पूरे समय साड़ियों की गांठ को अपने ऊपर टिकाए रखते थे। मजाल है कि एक सूत भी सरक जाए।

कनेर ने अब कुछ-कुछ डिजाइनों की फरमाइश शुरू कर दी थी। ए बीती डारुन देस (ऐसा बना दो वैसा बना दो)। कपड़े सीते-सीते नेह का तानाबाना भी बुना जाने लगा था। कनेर और सोमारू के बीच। अब तो लगभग सभी मडई में एक नया बेलाउज। अब तो कनेर और खूबसूरत लगने लगी थी। क्या पता यह सोमारू के नेह की लुनाई थी या फिर रंग-बिरंगे क कतरनों से बने ब्लाउज का कमाल था।

नीम का पेड़ अब कसमसाने लगा था। उसकी छांव के अब अनेक हिस्सेदार होने लगे थे। पर सोमारू को कोई एतराज नही था। उसे तो नीम की छांव से अच्छी नजर बचाकर आती हुई धूप बहुत भाती थी। सच ही तो है कि तपती दोपहरी में जब मड़ई नही होता था। तब सोमारू गांव के किसी नीम के पेड़ के नीचे ही अपनी दुकान सजाए घंटों बैठे रहता था। तपती दोपहरी में जब लोग छांव की चोरी करते थे। वह धूप बटोर कर खुश रहता था। उसे भला क्या पता कि विटामिन बी कंपलेक्स विटामिन सी से भी ज्यादा जरूरी है। सोमारू ही क्या बस्तर के आदिवासियों की मजबूत कद काठी का राज भी यह धूप बटोरना ही था। जो आठ आठ घंटे तक धूप में काम करते हों वह भला धूप से धनवान ना हो ऐसा कभी हो सकता है क्या ? पता नहीं अब गांव और गांव के जंगलों में भी अब शहरों की तरह धूप की भी चोरी होने लगे। अगर सोनाधर का बस चले तो वह तो पूरे धूप पर भी उगाही शुरू कर दे।

आज कनेर ने सोमारू से पूछ ही लिया- 'तुम्हारे झूले में क्या है ?'

'चिंदी।'

ना उसके आगे कनेर ने कुछ पूछा, ना ही सोमारू ने जवाब दिया।

नेह की दुकान पर मनचाहे साथी के हाथों कैशौर्य के सपनों से कुछ सौगात का मिलना। चिंदी-चिंदी संसाधन पर भरपूर नेह...। नेह की कतरन से बुनी चादर जिसमें सोमारू और कनेर का नाम लिखा गया था। जिसमें उन दोनों के नेह के सूत से भविष्य के सपने टांके जा रहे थे। अब उसे सोनाधर बलपूर्वक ओढ़ने जा रहा था। गांव में सरपंच का रुतबे ने कनेर के पिता के ऊपर धाक जमाना प्रारंभ कर दिया था। असर दिखना शुरू हो चुका था। कनेर बहुत रोई पर मात्र उस दर्जी सोमारू की भला क्या बिसात जो सरपंच के रुतबे के आगे उस गांव में टिक पाता।

आज तेतर रुख इमली के पेड़ के नीचे सोनाधर और कनेर की मंगनी हो रही थी। कपड़ा सीते-सीते सुमारू के हाथों में सुई चुभ गई। क्या पता यह विवशता या फिर विछोह की चुभन थी। जो अब कनेर को सोमारू से दूर किये जाने का संकेत दे रही हो। नीम के पत्ते झरने लगे थे। मानो उसके कड़वे पत्ते सोमारू को समझा रहे हो कि मेरे पत्तों से भी कड़वी कुछ जीवन के गरल भी होते हैं।

सोनाधर मूछों पर ताव देता हुआ सोमारू के सामने शहर से लाए कपड़े का लठ्ठा लेकर खड़ा था। उसने कहा- 'कीसिम कीसिम चो कुर्ता सिलून देस। मोचो का जे। (अलग-अलग डिजाइनों के कुर्ते मेरे लिए सी देना ब्याह है मेरा)। एकदम नुक्को असन। अच्छे से सीना।'

सोमारू का स्वर-यंत्र घरघराने लगा, आंखों के पानी में डूबते हौसलों के चक्के में तेल डाल दिया हो। नेह की डोरी बार-बार पहिए से उतरी जा रही थी। और सोनाधर की गर्विली विजयी मुस्कान की सुई से सोमारू का मन छलनी हुआ जा रहा था। ठीक ही तो है... कहां वह साधारण दर्जी और कहां सरपंच सोनाधर। नीम के पत्ते आज बेमन डोल रहे थे...।

ब्याह नजदीक आ गया था। ब्याह क्या वर-वधू सल्फी का दोन एक दूसरे के ऊपर उड़ेलेंगे, और ब्याह हो जाएगा। सरपंच आज अपने कुर्ते लेने आया था। वह चार की जगह तीन कुर्ते देखकर बिफर गया- 'मैंने तो चार कुर्तों का कपड़ा दिया था।'

सोमारू कुछ बोलता इसके पहले सल्फी के नशे में सोनाधर और उसके लठैत सोमारू के ऊपर पिल पड़े।

यह मात्र कपड़े की चोरी का आरोप नही था। यह तो खुन्नस थी। या खीज थी जिसने परास्त सोनाधर ने सोमारू के ऊपर उतारना शुरू कर दिया था। गांव का सबसे धनवान होने के बाद भी कनेर का सोनाधर के प्रति अनुराग। डंडों से पीटते पीटते सोनाधर कहने लगा चोर कहीं का...।

सोमारू पस्त हो चुका था। पहले से ही वह मन से टूट चुका था। अब भला तन क्या चीज थी। मशीन एक और लुढ़क गई थी। नीम की पत्तियां बेतरतीब सी सरसरा रही थीं। मानो बिलख रहे हों।

चिंदियों के झोले से अचानक कई रंग बिरंगे बेलाउज (ब्लाऊज) बिखर गए। जिसमें सोनाधर के दिए गए कपड़ों से बची चिंदियां टंकीं थी। चिंदियां बिखर चुकी थी। पीली, गुलाबी, लाल, नीली, हरी....।

—बस्तरिया, सोनिया कुंज, रायपुर, छत्तीसगढ़ 492001

कोखजली

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-3-0

संस्करण : 2020, मूल्य : 150/-

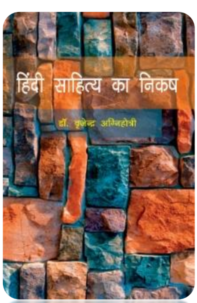

हिंदी साहित्य का निकष

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-81-7844-233-4

संस्करण : 2020, मूल्य : 1595/-

कहानी

स्वाभिमानिनी

जयश्री बिरमी

शादी होते ही मीना ससुराल पहुंच गई सिमटी सी शर्माती हुई गृहप्रवेश की रीत पूरी की और घर के दिवानखंड में बैठी थी। लाल सुर्ख जोड़ा पहने और हाथों में कंगन चूड़ियां, पावों में पायल बिच्छुएं, हाथों में अंगूठियां और पांचागला (पंचफुल) बाजूबंद गले में तीन छोटे बड़े हार माथे पर टीका शिंका आदि गहनों से लदी शर्म से सर जुकाए बैठी थी और घर का मुआयना कर रही थी। जहां बैठी थी वहां सामने डाइनिंग टेबल थी, जिसके पर बेसलीके से तितर-बितर मिठाईयों के डिब्बे लदे हुए थे। कुछ फालतू चीजें भी पड़ी थी। उसके आगे रसोईघर था सिर्फ बंद गैस पर रखे कुकर और पतीले पड़े थे। वैसे कहें तो शादी वाले घर में जितनी भी अफरा तफरी हो सकती थी, सभी वहां मौजूद थी। थोड़ी देर में ही सब फ्रेश होने चले गए तो मीना की ननद आई और उसे उनके कमरे में ले गई। वह अपने कमरे में पहुंची तो वहां उसके समान में से अपना बैग अलग कर कपड़े निकाले और इधर-उधर देख रही थी तो उसकी ननंद ने उसे हंसी के साथ हाथ पकड़ बाथरूम तक ले गई।

नहा-धोकर एकदम ताजा महसूस कर रही थी अपने आप को। नजर के सामने से पिछले कुछ दिन चलचित्र की भांति गुजर रहे थे। कैसे अमरीका से आए मनोज का रिश्ता आया तो घर में सब ही खुश हो गए कि वह इतने विकसित देश में ब्याह जायेगी, लेकिन उसे इस बात में जरा भी गुरूर नहीं था उसे तो अपने देश में भी रहना अच्छा लगता था। जब वे लोग पहली बार घर आएं तो मनोज के माता-पिता और चाची भी थी। दोनों ओर से बातचीत हुई

और थोड़ा सकारात्मक वातावरण हुआ तो उन दोनों को मिलने का समय मिला। दोनों ने कुछ सामान्य-सी बातें की और एक-दूसरे के बारे में थोड़ी जानकारी भी ली। अंततः दोनों और से हां होने पर रोका हो गया। हालाकि मीना कुछ ज्यादा स्पष्ट नहीं थी रिश्ते के बारे में, लेकिन कभी न कभी तो शादी करनी ही हैं, और आगे जा कर इससे अच्छा रिश्ता नहीं मिला तो... ये सोच हामी भर दी। लेकिन एकदम प्रसन्नता से स्वीकार नहीं किया था मीना ने।

सगाई और शादी एक महीने के अंदर ही हो गई। आज वह ससुराल में बैठी ये सब सोच रही है। बहुत ही थोड़े वक्त में रोका, सगाई और शादी होना... सब स्वप्न सा लग रहा था उसे। ये पहला दिन था ससुराल में। चौके चढ़ने की रस्म थी। घर की सभी महिलाएं रसोई में एकत्रित हो उसे घेरे खड़ी थीं। वैसे उसकी माँ ने सभी सामग्री के साथ उसे समझाया था कि कैसे बनता हैं हलवा। आखिर उसने अपनी रसोई कला दिखाते हुए हलवा बनाया। वैसे बना तो अच्छा था, किंतु नई बहू के मान में वह एक विलक्षण स्वादिष्ट हलवा बन गया था। जिसे देखो वही हलवे के गुण गा रहा था और उसकी झोली में शगुन के रुपए आते जा रहे थे। सभी खुश थे और वह भी अभी अच्छा महसूस कर रही थी। याद तो आ रही थी माँ और पिताजी की, लेकिन मन मना लिया था उसने।

तीन दिन बाद उसके पिताजी पग फेरे के लिए लेने आ गए। उनकी भी खूब अवभागत की गई और वह पहुंच गई अपने घर, कुछ दिनों के लिए ही सही किंतु बहुत अच्छा लगा अपनों से मिलकर। वही घर, वही कमरे और उसका अपना कमरा जिसे वह बड़े ही चाव से सजाया करती थी। माँ का प्यार तो उमड़ पड़ा था उसे दहलीज पर पाके, खूब प्यार से गले मिलते ही आंखे बरसने लगी थी उनकी। अपने कमरे में लेटकर एक सकून मिला था उसे, अपनेपन वाला।

तीन दिन कहां बीत गए पता ही नहीं चला और मनोज अपने छोटे भाई के साथ उसे लिवाने आ गए। दोनों की आगता-स्वागता के बाद सब बैठ इधर-उधर की बातें करते रहे। मनोज की बातों में पहली बार अमेरिका में रहने का और अपनी ऊँचे ओहदे की जॉब का अहंकार दिखा जो सब को थोड़ा बुरा लगा। वह अमेरिका के साथ भारत की तुलना कर अपने ही देश की हेठी करने पर तुला था। लेकिन मनोज जवांई था, इसलिए बुरा लगने के बावजूद कोई

कुछ भी नहीं बोला। उसी दिन वह अपना घर छोड़ अपने पति और ढेर सारे तोहफों के साथ अपने ससुराल लौट आई।

दोनों हनीमून पर गए। तीन-चार दिन में भी उतनी नजदीकियां नहीं आईं, जो नवविवाहितों में आ जाती हैं। वैसे सबकुछ ठीक था। कुछ भी ऐसा नहीं था, जो नहीं होना चाहिए। लेकिन कुछ तो था जो उन दोनों के बीच एक महीन-सी लकीर खींचें हुए था। दोनों घर वापस आ गए। दूरियां थोड़ी दूर तो हुई थी। पति-पत्नी बने अब दो हफ्ते हो चुके थे। शादी को रजिस्टर अह्फिस में करवाया गया, ताकि यूएस जाके मीना के पेपर्स फाइल करने में आसानी हो जाए। सब कागजी कार्यवाही करने में एक महीना हो गया और मनोज के जाने की तारीख नजदीक आने लगी। मीना कुछ उदास और असुरक्षित सी महसूस कर रही थी। मनोज के जाने के बाद उसके ससुराल वाले न जाने कैसा व्यवहार करेंगे और कैसी होगी उसकी आगे की जिंदगी… ये चिंता उसे होने लगी थी। उसने अपनी माँ से भी अपनी चिंता के बारे में बात की थी, पर माएं तो हमेशा ही सकारात्मक ही होती हैं, अपने बच्चों के मामलों में वैसे ही वह कुछ ज्यादा ही होती हैं।

मनोज के विदेश गमन का दिन नजदीक आ रहा था तो मीना ने पूछ ही लिया कि वहां जाकर भूल तो नहीं जायेगा वह मीना को! और चाहे मजाक ही में सही उसने कहा था कि ‘शायद’। और फिर मीना को असुरक्षा की भावना ने और अधिक घेर लिया था।

अब वो दिन भी आ गया जब वह चला भी गया। दुःख तो हुआ मीना को भी, लेकिन असुरक्षा ने फिर उसे घेर लिया।

वह उदास रहने लगी तो उसकी सास ने उसे खुश करने के लिए उसे मायके जाकर थोड़े दिन रह के आने की सलाह दी। वह भी जा के माँ की गोदी में सर रख सकून पाने चली गई। एक महीना माँ और पिताजी के साथ कैसे निकल गया पता ही नहीं चला। लेकिन कुछ दिनों से मन ठीक नहीं था, शायद उदासी की वजह से ऐसा लग रहा था।

जब ससुराल में आई तब कुछ ज्यादा तबियत बिगड़ी लग रही थी। सासू माँ ने डॉक्टर को बुलाया। वैसे उसकी माहवारी आने के ऊपर 15 दिन होने को थे, किंतु उस ओर उसका ध्यान ही नहीं था। डॉक्टर महिला होने के नाते कुछ ज्यादा ही पूछताछ कर रही थी और जब उसकी सेहत के बारे में पूछा

तो उसने अपनी माहवारी की तारीख बता दी तो स्पष्ट हुआ कि उसे गर्भधान हुए को आज डेढ़ महीना हो चुका था। घर में सब बहुत खुश हुए, किंतु मीना खुश होने की बजाय आशंका से भर गई। पढ़ी-लिखी होने के बावजूद उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा था उसके साथ। मनोज का फोन रोज ही आता था, लेकिन एक अपनेपन की कमी ज्यादा थी, एक व्यावहारिक संबंध में जैसे बात होती हैं वैसी ही बात करता था। और जब उसे कहा गया कि वह बाप बनने वाला था तो खुश नहीं हुआ। बधाई दी उसे और फोन बंद कर दिया। अपने पेट में पल रहे बच्चे को पाल रही मीना अब अपने और अपने बच्चे के भविष्य के बारे में चिंता में व्यग्र रहने लगी। मनोज के फोन आना अब एक व्यवहारू-सी बात थी। प्यार या लगाव पहले जो दिखावे का ही था... वह भी धीरे-धीरे गायब होने लगा। जब उसकी माँ से बात हो रही थी तो उन्होंने मीना को यूएस ले के जाने की बात की तो 'प्रसूति के बाद ही संभव होगा', ऐसा बोल बात टाल गया था मनोज।

मीना ने अपना पूरा ध्यान अपने और होने वाले बच्चे की सेहत का ख्याल रखने में लगा रहने लगा। सास भी काम में वह मदद करे, ऐसा कई बार जता चुकी थी और मीना भी जितना हो सके उससे ज्यादा ही मदद कर देती थी। खाना बनाने से लेकर झाड़पोंछ तक के बाकी काम के लिए तो कामवाली बाई आती ही थी। ऐसे ही कब नौ महीने निकल गए पता ही नहीं लगा, और उसकी प्रस्तावित तारीख को कुछ दिन ही रह गए थे। उसका शरीर खूब फुल गया था... खास कर पेट और पीछे का हिस्सा, सब कयास लगाते थे कि लड़की होगी उसे तो वह खुश होती कि अपनी प्रतिकृति पाएगी वह। गुड़िया के प्यार में वह अभी से ही दीवानी हुई जा रही थी। और आ गया वह दिन! रात में उसे खूब दर्द उठा तो उसने सास को बताया तो सब तैयार हो अस्पताल पहुंचे और उसे भ र्ती करवाया फिर उसकी माँ और पिताजी को भी खबर कर दी तो वो लोग भी दौड़े-दौड़े आए। सब राह देख बैठे थे कि कब खबर आए नए मेहमान के आने की। और आई खबर, दाई बड़े ही नटखट अंदाज में हँस के बोली- 'नेग दो जी लड़का हुआ है।' लड़के का संदेश सुन सभी की खुशी से बांछे खिल गई। उसकी सास ने उसे दो हजार रुपए निकाल कर दिए तो वह और माँग रही थी तो उसने वचन दिया कि अस्पताल से जाते वक्त उसे खुश कर देंगे तो वह चली गई। कुछ देर बाद जब मीना को कमरे में लाये तो सब एक-एक कर

कमरे में जा बच्चे को देख आए। सुंदर-सा, छोटा-सा राजकुमार लग रहा था वह सफेद चादर में लिपटा लेता हुआ था पलने में। दो दिन बाद उसे अस्पताल से छुट्टी मिल गई।

अब तो बस उस छोटे-से बच्चे की चाह और संभाल में ही अपना ध्यान लगाने वह लगाने लगी थी, किंतु सास थी कि उसे जली-कटी सुनाने से बाज नहीं आती थी कि उसके पति ने भी उसकी ही गलती से बेवफाई की थी, वह उसे प्यार नहीं दे पाई थी, इसीलिए वह दूसरी औरत की ओर आकर्षित हो उससे विमुख हो गया था। यही तानें सुनते-सुनते कान पक गए थे। लेकिन उसके पास कोई चारा भी न था। उसे अपने बेटे का नाम मनन रखना था, लेकिन सास ने उसका नाम उसकी अपनी मर्जी से विनय रख दिया था। बोली थी कि कुछ तो नम्र बनेगा, मीना जैसा ढीठ तो नहीं बनेगा। ऐसे ताने सुनते सुनते विनय सात महीने का हो गया, लेकिन उन लोगों की जुबान न रुकती थी और न ही थकती थी। एक दिन बड़े दिनों से बंधा हुआ सब्र का बांध उसकी माँ के सामने टूट गया, जब वह मिलने आई थी और उनकी गोद में सिर रख कर वह बहुत रोई थी। अपने दिल का गुबार माँ के सामने रख दिया। उसकी माँ एक स्वाभिमानी औरत थी। वह उठी और उसकी सास के पास बैठक वाले कमरे में गई और मीना के साथ होने वाले सलूक की वजह पूछी तो मीना की सास ने उसे मनहूस कहा और बताया कि मीना की वजह से उन्होंने अपना बेटा खोया था। अब गुस्से में भरी मीना की माँ ने हमेशा के लिए मीना को अपने घर ले जा रही हैं ये बता दिया। पूछा नही, बताया। वह भी तैयार हो बेटे को गोदी में ले अपनी माँ के साथ चल दी।

ससुराल को अलविदा तो कर दिया, लेकिन उससे नाता तो नहीं टूटा था, क्योंकि अभी भी वह मनोज से वैवाहिक बंधन से जुड़ी हुई थी। माँ के घर को मायका कहते हैं तो वह उसका कैसे हुआ। यह प्रश्न हमेशा ही परेशान करता था। वह सोचा करती थी, मायका माँ का घर, ससुराल सास का घर तो उसका अपना घर कौन-सा! अब उसे अपने घर की तलाश थी, और आरजू भी!

कुछ दिन रहने के बाद उसने सोचा कि अब उसे कुछ काम करना चाहिए। काम तो वह उसकी माँ के साथ सब कर ही लेती थी, लेकिन आर्थिक प्रवृत्ति ही उसे कुछ पाने में मदद कर सकती हैं। कुछ बन जायेगी तो अपना घर

बना लेगी और तब तक विनय भी कुछ बड़ा हो जायेगा तो वह उसे स्कूल भेज अपने काम पर भी जा सकेगी। वैसे भी विनय अब उसकी माँ से हिलमिल गया था। उन्हीं से नहाता और खाता भी था, सिर्फ सोने के लिए ही वह मीना के पास आता था। अब मीना ने सोच लिया कि वह कुछ कोर्स कर के नौकरी कर लेगी। उसने कंप्यूटर का कोर्स कर लिया और आईटी कंपनी में नौकरी मिल गई। तनख्वाह भी ठीक ठाक थी तो उसने स्वीकार कर ली। सुबह नौ बजे अपना नाश्ता खाकर, दोपहर का खाना बनाकर ले निकल जाती थी। अपनी काबिलियत से दफ्तर में उसकी बहुत ही इज्जत बढ़ गई थी। उसे खूब बढ़ती मिलती रही और कुछ साल में वह डायरेक्टर बन गई।

एक दिन उसके देवर का फोन आया और मिलने के लिए समय माँगा तो उसने रविवार के दिन घर पर बुला लिया। रविवार के दिन वैसे वह देर से उठती थी, लेकिन देवर आने वाला था तो जल्दी उठ तैयार होकर नाश्ता बनाकर वह विनय के साथ खेल रही थी। उसका देवर आया और नमस्ते कर बैठ गया। विनय के लिए चॉकलेट लाया था। वह देकर विनय के साथ कुछ औपचारिक बात जैसे कौन-से स्कूल में जाता है, कौन-सी क्लास में पढ़ता है आदि बातें कर मीना की और देखकर बोला कि उसके दस्तखत चाहिए उसे। मीना समझ गई उसने विनय को नानी की पास जाने के लिए बोला और जब वह चला गया तो उन कागजात को हाथ में ले दस्तखत करने लगी तो उसके देवर ने पढ़ने के लिए बोला तो वह बोली तलाक के कागजात हैं, ये वह जानती थी। दस्तखत कर उसने उसे लौटा दिए तो वह झट से उठा और चला गया। उस दीन एक बहुत बड़े बोझ से अपने आप को मुक्त पा रही थी। एक एहसास जिसने उसे थोड़ा सा हल्कापन महसूस करवाया, बोझ-मुक्त हो गई थी वह।

अब विनय कॉलेज में आ गया था और वह भी उम्र के उस दौर में पहुंच चुकी थी, जहां थोड़ी सी थकान महसूस हो रही थी। वह अपनी शादीशुदा जिंदगी के हर पल, हर एहसास को भूल चुकी थी। एक दिन भूचाल आया.... जब मनोज ने उसके घर की घंटी बजाई। उसकी माँ ने दरवाजा खोला तो वह सीधा ही घर में आ गया और मीना के सामने खड़ा हो गया तो उसे देख वह भौचक्की-सी रह गई। मनोज की सारी हेकड़ी बैठ गई थी। जो गर्दन अकड़ी रहती थी, वह आज झुकी हुई थी। वह शान जो उसके कपड़े जो उसका गौरव थे वह एक दम सादा थे। शक्ल की सारी चमक गायब थी और एक सियाही सी

फैल चुकी थी वहां। अब तो मीना की कनपट्टी पर भी थोड़ी सफेदी चमक रही थी, लेकिन उसकी शक्ल पर एक तेज था, आत्मविश्वास था जिससे उसकी शख्शियत को चार चांद लग रहे थे। दोनों एक-दूसरे को देख कुछ हैरानी में पड़ गए थे। आखिर में मनोज ने ही चुप्पी तोड़ उससे उसके हालचाल पूछे। उसने भी सादा-सा जवाब दिया कि वह ठीक है। इतने में उसकी माँ आई और उसने भी हाल पूछा। ऐसे काफी देर चला और मनोज असली मुद्दे पर आया और बोला की उसने जिससे शादी की थी, वह उसे छोड़कर चली गई थी और साथ में सारा बैंक बैलेंस ले गई। घर तो उसने पहले ही अपने नाम करवा लिया था तो अब न उसके पास घर था और न ही पैसा बचा था। बहुत परेशान था तो मीना से मिलने आ गया।

मीना भी काफी परिपक्व हो चुकी थी। अकेले ही दुनिया का सामना कर वह काफी समझदार भी हो गई थी। वह भावनावश हो कोई निर्णय नहीं लेना चाहती थी। उसने मनोज की और देखा और बोली कि उन दोनों के बीच में कोई मधुर संस्मरण नहीं थे। न ही कोई प्यार के चरम का इतिहास था। अगर कुछ था तो वह धोखा था। एक शरीफ घर की लड़की को अपनी बातों में उलझकर शादी करना और फिर विदेशी लड़की से प्यार के नाम पर उसके साथ रह अपनी ब्याहता के साथ सामाजिक, धार्मिक, भावनात्मक और मानसिक अपराध ही किया था मनोज ने। ये उसे स्पष्ट बता उसकी ओर से किसी किस्म का लगाव या हमदर्दी की अपेक्षा नहीं कर सकता था वह। मनोज बुत बनकर देख रहा था उसे और उसने अपनी माँ से आवाज लगाकर चाय भेजने के लिए बोला।

लेकिन तब तक मनोज उठ खड़ा हुआ, गीली आंखों से एक संदेश दे रहा था कि वह बड़ी आस ले कर आया था उसके पास और अब जा रहा हैं मायूस होकर।

मीना ने तो अपने मन की बात बता ही दी थी। वह भी उठ खड़ी हुई मनोज को जाते हुए देख, स्वाभिमान से अपनी गर्दन ऊँची कर एक गौरवान्वित नजर से अपने सामने की दीवार पर टंगे आईने में अपने मुख को देख संतुष्टि का अनुभव कर रही थी।

कहानी

कटी पतंग

सविता शर्मा 'अक्षजा'

एक एहसास लिए मोनू से मिलने गई थी मैं, लेकिन जब वापस जाने के लिए निकली तो अपने आप को कटी पतंग सी महसूस कर रही थी। अपने ही बोझ से ढह रही थी में क्योंकि प्यार की पतंग को मिलता हवा का सहारा आज खत्म हो चुका था। गिरते-गिरते कहाँ पहुंचाया था प्यार के इस खेलए हाँ खेल ही तो था जो मोनू ने मेरे साथ खेला था।

जब पहली बार मिले थेए तब मैं उसकी दुकान पर अपने अंतर्वस्त्र की खरीदारी करने गई थी और जिस खास तरीके से वह मुझे एक के बाद एक नई डिजाइन दिखाकर उससे मिलने वाली सहूलियत के बारे में बता रहा थाए तब एक कवि सा लग रहा था मुझे। अनायास ही उसकी मीठी बातों ने मेरे मन में उसके लिए कुछ कोमल भावनाए जो एक नवयुवती के मन में आना स्वाभाविक थाएउसे जन्म दे ही दिया। मेंरी खरीदारी तो खत्म हो ही गई थी और कम से कम छह महीने तक मोनू की दुकान पर जाने का अवसर प्राप्त नहीं होना था। लेकिन उसकी दुकान के सामने से निकल भी जाऊं तो भी दिल की धड़कनें तेज हो जाती थी और उसकी एक जलक पाने के लिए निगाहें उसकी दुकान का कोना कोना टटोलती थी। बेकरारी ही तो थी जो समय के साथ ऐसे बढ़ती जा रही रही थी कि पूछो ही मत।

अब बहाने से सखियों के साथ, भाभियों के साथ कहो तो सभी पहचानवाली महिलाओं के साथ जा कर उसकी दुकान की मुलाकातें बढ़ती ही जा रही थी। और एकदिन उसने भी मेरे प्यार को प्रतिभाव दे ही दिया, उस मुस्कुराहट को कभी भी भूल नहीं पाई थी मैं। भरे-भरे होठों की हल्की-सी हलचल जो मूछों के नीचे से झांकती थी और मेरे एहसास को झकझोरने का

काम कर रही थी। और आँखें जैसे अनकहे बोलों को वाचा दे रही थी। मेरे पूरे अस्तित्व को हिला के रख दिया था उस वाकये ने।

उसकी दुकान के बाहर तो जाना ही था क्योंकि भाभी ने रकम चुकता कर ही दी थी। और कई दिनों तक उस मुस्कान और आंखों एदोनों ने मेरे मन को आंदोलित रखा और एकदिन मैं बस की राह देख कर बस स्टैंड पर खड़ी थी और उसकी बाइक न जाने कहाँ से आया और सामने खड़ा हो गया। मैं तो अवाक सी उसे देखती रही लेकिन उसकी आवाज सुन मुझे वास्तविकता का एहसास हुआ। वह पूछ रहा था कि वह मुझे कही छोड़ दे सकता था। और बिना कुछ सोचे उसके पीछे बैठ गई और उसने बाइक चला दी। स्वर्ग-सा एहसास लिए उस पर पूरा भरोसा लिए मैं जैसे उड़ी जा रही थी प्यार के हिलोरें लेती हवा के जुलों में जुलती पतंग की तरह। उसने एक रेस्टोरेंट के पास बाइक खड़ी कर पूछा था कुछ और बिना सुने ही हामी में सर हिला दिया था मैंने एअंदर जा के एक कोने वाली टेबल पर बैठ उसने पूछा था कि मैं क्या लूंगी पर मैंने उसकी पसंद को अपनी पसंद बताई और उसने ऑर्डर भी दे दिया। और कितनी देर हम वहाँ बैठे ये भी याद नहीं हैं मुझे, बस समय को ठहर जाने की इल्तजा करती हुई उसके सानिध्य का आनंद लेती रही। जो स्वप्न-सा समा था उसे तो पूरा होना ही था और हो गया।

मैं घर पहुंच अपनी मस्ती में अपने कमरे में जा उन्हीं लम्हों को फिर से जीने की कोशिश करते करते सो गई। माँ को खाना नहीं खाने की सूचना मैंने आते ही दे दी थी। बस अब तो मिलाकातों का सिलसिला ऐसा चला कि पूछो ही मत। रोज ही घोड़े पर सवार आते हुए अपने राजकुमार को मिलने परी-सी सजके निकल पड़ती थी। अब तो न कॉलेज की फिक्र थी और न ही पढ़ाई की। प्यार के अविरत झरने में बहती जा रही थी। कब साल निकल गया पता ही नहीं चला।

इम्तिहान हो गए। द्वितीय दर्जे में उत्तीर्ण होने का कोई मलाल नहीं था। अपने प्रथम दर्जे को अपनी प्रीति के लिए कुर्बान कर चुकी थी मैं। लेकिन घरवालों से ये बदलाव को नहीं छुपा सकी थी मैं। एक रविवार जब सभी घर में थे तो माँ ने बात छेड़ दी कि मामीजी के भाई का बेटा बड़ा ही लायक था। एमबीए कर अच्छी नौकरी लग गई थी तो मेरे रिश्ते की बात चलानी चाहिए। और पापा, भैया-भाभी सभी ने भी हामी भर दी, लेकिन मेंरी राय पूछना जरूरी

नहीं समझा। उन्होंने मामीजी को फोन लगाया और बात आगे बढाने के लिए बोल दिया।

मैं मन ही मन कुढ़ती हुई अपने बिस्तर पर जा लेट तो गई, लेकिन नींद कोसों दूर थी। अपने प्यार के भविष्य के बारे में सोचती हुई छत पर नजरें टिकाए पड़ी रही थी। अपने प्यार के एहसासों को किसी अजनबी से सांझा करने की बात सोच कर ही बदन में थरथराहट-सी आ जाती थी। अपने हमसफर के रूप में जहाँ मोनू को पदानवित किया था वहाँ कैसे किसी और को विराजित कर पाऊंगी, यही प्रश्न बार बार खाए जा रहा था मुझे। कब सुबह हुई उसका पता ही नहीं चला। लेकिन सारी रात जागते हुए निकलने की वजह से सर दर्द से फटा जा रहा था। बाथरूम में जा फ्रेश होने की सोची और चल दी बाथरूम की और तो एक चक्कर-सा आ गया, दीवार का सहारा ले संभल तो गई। एक और चीज भी समझ में आ गई कि ये जो हो रहा था उसे सहना बहुत ही मुश्किल होगा। बाथरूम में गई तो अपना चेहरा देख हैरान-सी रह गई, लाल सूजी हुई आँखें और पीला पड़ गया चेहरा। लग रहा था सारी रात रोने में ही काटी थी मैंने।

फ्रेश हो चाय-नाश्ते के लिए माँ ने पुकारा तो चली गई, लेकिन न ही चाय अच्छी लगी और न ही नाश्ते का स्वाद आया। चुपचाप उठ ग्यारह बजने के इंतजार में अखबार में मुंह गाड़े बैठी रही। कसम हैं अगर अखबार का एक शब्द भी पढ़ा हो। अपने अतीत की यादें जकजोर रही थी और दिलों दिमाग में एक भावनात्मक असुरक्षा की भावना उमड़ रही थी। समय इतना हौले चल रहा था कि ग्यारह बजने में युग बिता दिए थे। मोनू का घर तो देखा नहीं था सिर्फ दुकान ही देखी थी तो वहीं जा के मिलना था।

ग्यारह बजते ही बहाने से घर से निकल मोनू की दुकान पर पहुंची तो उसी मुस्कान के साथ मेरा स्वागत किया। लेकिन उस मुस्कान के जादू का असर नहीं हुआ था। कुछ औरतों को वह अपनी कला में निपुण-सा अपनी बिक्री कला को आजमा रहा था तो मैं एक और पड़ी कुर्सी पर बैठ गई और उसका काम खत्म होने का बेसब्री से इंतजार करने लगी। जब वे महिलाएं गई तो उठके उसके नजदीक गई तो उसे भी मेरी हालत देख कर चिंता हुई और पूछ लिया कि क्या हुआ था मुझे। और जो सब्र का बांध बांधे इतनी देर से बैठी थी वह भरभरा के टूट गया और फफक-फफक के रोने लगी तो मोनू भी थोड़ा घबरा

उठा और जब मैंने मेरी शादी के बारे में बताया तो उसे जरा भी धक्का नहीं लगा। सामान्य भाव से बोला कि अगर लड़का अच्छा है तो मुझे रिश्ते को स्वीकार लेना चाहिए।

सुनकर मेरी हालत तो और खराब हो गई। कैसे कह सकता था ये बात वह। परेशान-सी उसकी और डरी हुई हिरनी-सी मैं देख रही थी और वह मुझे स्थितप्रज्ञता से देख रहा था। फर्क समझ आया मुझे मेरे प्यार और उसके व्यवहार के बीच का और मैंने उसे सालभर के साथ और मुलाकातों काए इश्क के उन लम्हों का भी वास्ता दिया तब उसके मुंह से जो शब्द निकले वह जानलेवा ही थे। उसने कहा कि उसने कभी भी अपने मुंह से शादी का वादा किया नहीं कहा था। ये तो सिर्फ दोस्ती का रिश्ता थाए वह खुद बताने वाला था कि उसके लिए भी रिश्ते आ रहे थे और एक लड़की उसे पसंद भी आ गई थी। वैसे उसने सात-आठ लड़कियों से मुलाकात भी की थी।

ये सब मेरे लिए चौकाने वाली बातें थी। मुझे उसके इरादों के सही मायने समझ आ गए थे। सिर्फ खेल रहा था मेरे जज्बातों से और मेरे शरीर से भी। टूटी हुई-सी मैं उठी, अपनी गलती की सजा भुगतने के लिए अपने आप को तैयार कर उसकी दुकान से नीचे उतर गई। ठगा-सा महसूस कर रही थी मैं अपने आपको। घर पहुंचने पर मैंने भी निर्णय ले लिया था कि जैसी भी हो अब मोनू के बिना जिंदगी बितानी ही होगी। शायद इसी में बेहतरी थी, अगर आगे जाके बेवफाई करता तो जिंदगी नर्क बन कर रह जानी थी। शायद ईश्वर कृपा और बड़ों के आशीर्वाद से वह बहुत बड़ी बर्बादी से बच गई थी। प्यार का जो जूठा फितूर उसके सर पर था वह उत्तर गया था। घर आके वह नहाने चली गई और अपने तन को मलमल कर, रगड़-रगड़ कर उसने उस फरेबी प्यार की छुअन को धो डाला।

जब एक घंटे के बाद मैं बाथरूम से निकली तो माँ ने पूछ ही लिया कि बहुत देर लगी बाथरूम में। मैंने बहुत ही मार्मिक जवाब दिया था कि बहुत दिनों के मैल को धोने में देर तो लगती ही हैं ना! माँ कुछ समझी नहीं थी लेकिन सर हिला कर रसोई में चली गई। अब मैं अपने आप को मुक्त महसूस कर रही थी।

जब मुझे प्रस्तावित लड़के को मिलने जाना था तो एकदम हल्के मूड में गई थी। और प्रस्तावित लड़का नमन मुझे पसंद भी आया। वह एक अच्छे

व्यक्तित्व का धनी और संस्कारी भी था। अनायास मोनू की हर बात में की गई जोहुकमी से तुलना कर बैठी और नमन से मिलने की खुशी हुई। घर आकर मैंने अपना सकारात्मक जवाब अपनी माँ को दिया और बात आगे बढ़ी। कुछ महीनों में मैं शादी कर अपने मनभावन के घर चली गई। कटी पतंग जिम्मेदार हाथों में आकर सुरक्षित हो गई थी।

हिंदी साहित्य का निकष

✍डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-93-90548-81-1 संस्करण : 2020, मूल्य : 399/-

कृष्णा की कलम से...

✍डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-4-7
संस्करण : 2020, मूल्य : 150/-

शेखर जोशी की कहानियों में
हाशिये का समाज

✍इबाहुन मॉन

आईएसबीएन : 978-81-945460-6-1
संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

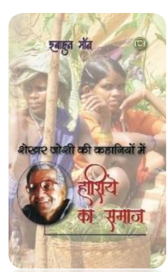

आचार्य रामचद्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (11 अक्टूबर 1884 – 2 फरवरी 1941) हिंदी आलोचक, निबन्धकार, साहित्येतिहासकार, कोशकार, अनुवादक, कथाकार और कवि थे। उनके द्वारा लिखी गई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है हिंदी साहित्य का इतिहास, जिसके द्वारा आज भी काल निर्धारण एवं पाठ्यक्रम निर्माण में सहायता ली जाती है। हिंदी में पाठ आधारित वैज्ञानिक आलोचना का सूत्रपात उन्हीं के द्वारा हुआ। हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में भी शुक्ल जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भाव, मनोविकार सम्बंधित मनोविश्लेषणात्मक निबन्ध उनके प्रमुख हस्ताक्षर हैं। शुक्ल जी ने इतिहास लेखन में रचनाकार के जीवन और पाठ को समान महत्त्व दिया। उन्होंने प्रासंगिकता के दृष्टिकोण से साहित्यिक प्रत्ययों एवं रस आदि की पुनर्व्याख्या की।

लेख

उपन्यास

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आजकल उपन्यास लिखने में बहुत लोगों की धड़क खुल गई है। इनमें यदि थोड़े ऐसे हैं जिन्हें अपनी कल्पना और अनुभव का सहारा है, तो बहुत से ऐसे भी हैं जिनका अन्य भाषाओं की विख्यात पुस्तकों पर गुजारा है। उपन्यास साहित्य का एक प्रधान अंग है। मानव प्रकृति पर इसका प्रभाव बहुत पड़ता है। अतः अच्छे उपन्यासों से भाषा की बहुत कुछ पूर्ति और समाज का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है।

मानव जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना उपन्यास का काम है। यह उन सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं को प्रत्यक्ष करने का यत्न करता है जिससे मनुष्य का जीवन बनता है और जो इतिहास आदि की पहुँच के बाहर हैं। बहुत लोग उपन्यास का आधार शुद्ध कल्पना बतलाते हैं। पर उत्कृष्ट उपन्यासों का आधार अनुमान-शक्ति है, न कि केवल कल्पना। तोता-मैना का किस्सा और तिलस्म-ऐयारी की कहानियाँ निस्संदेह कल्पना की क्रीड़ा है और असत्य है, पर स्वर्णलता, दुर्गेश नंदिनी, बंगविजेता, जीवन-संध्या, बड़ा भाई आदि के ढंग के गार्हस्थ्य और ऐतिहासिक उपन्यास अनुमान मूलक और सत्य हैं। उच्च श्रेणी के उपन्यासों में वर्णित छोटी-छोटी घटनाओं पर यदि विचार किया जाए तो जान पड़ेगा कि वे यथार्थ में सृष्टि के असंख्य और अपरिमित व्यापारों से छाँटे हुए नमूने हैं।

संसार में मनुष्य जीवन संबंधी बहुत-सी ऐसी बातें नित्य होती रहती हैं जिनका इतिहास लेखा नहीं रख सकता, पर जो बड़े महत्त्व की होती हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन इन्हीं छोटी-छोटी घटनाओं का जोड़ है। पर बड़े-से-बड़े इतिहास और बड़े-से-बड़े जीवन-चरित्र में भी इन घटनाओं का समावेश नहीं हो सकता। जब इन सूक्ष्म घटनाओं के संयोग में कोई उग्र घटना उमड़ पड़ती है, तब जाकर इतिहास की दृष्टि उस पर पड़ती है। अपनी असंख्यता और क्षिप्र गति के कारण ऐतिहासिक प्रमाणों की पकड़ में न आनेवाली इन घटनाओं के

निदर्शन से निर्मित मनुष्य की अनुमान-शक्ति उठ खड़ी होती है, जो अनेक व्यापारों के अभ्यास से वैसे ही किसी एक व्यापार का आरोपण कर सकती है। इस शक्ति को रखने वाले उच्चकोटि के उपन्यास लेखक जिन-जिन बातों का उल्लेख अपनी कथाओं में करते हैं वे सब ऐसी बातें होती हैं, जो संसार में बराबर होती रहती हैं और समाज की परिचित गति के अंतर्भूत होती हैं। जबकि इन घटनाओं का आरोप करने में सृष्टि के व्यापारों के निरीक्षण करने की अपेक्षा हुई, तब वे बिल्कुल कल्पना कैसे कही जा सकती हैं? उनका आधार सत्य पर है, उन्हें असत्य नहीं समझना चाहिए।

ऐतिहासिक आख्यानों के वर्णन करने में कविगण इस अनुमान का सहारा लेते हैं। जिन छोटे-छोटे अंशों को इतिहास छलाँग मारता हुआ छोड़ जाता है, कवि अपने सत्यमूलक अनुमान के बल पर, उनकी एक लड़ी जोड़कर जीवन का एक चित्र पूरा करके खड़ा करता है। धनुष-भंग होने पर परशुराम का राम और लक्ष्मण पर क्रोध करना इतिहास की बात है, पर परशुराम और लक्ष्मण के बीच जो-जो बातें हुईं वह कवि का अनुमान है। कवि ने लक्ष्मण और परशुराम के स्वभाव तथा अवसर की ओर ध्यान देकर अनुमान किया कि उनके बीच में इसी तरह की बातें अवश्य हुई होंगी। कैकेयी का कोपभवन में जाना तो इतिहास ने बतलाया पर उसने जो चुटीली बातें राजा दशरथ को कहीं, उन्हें भिन्न-भिन्न कवियों ने अपने अनुमान के अनुसार जोड़ा है। इन छोटी-छोटी बातों के समावेश के कारण कोई ऐतिहासिक काव्य का आख्यान असत्यमूलक नहीं कहा जा सकता। बिना इन बातों का जोड़ लगाए ऐतिहासिक वृत्त स्वाभाविक मानव व्यापार समझ ही नहीं पड़ते।

ऐतिहासिक उपन्यासों के बीच जो पात्र और व्यापार ऊपर से लाए जाते हैं और कल्पित कहे जाते हैं, यदि वे उस समय की सामाजिक स्थिति के सर्वथा अनुकूल हों तो उन्हें ठीक मान लेना कोई बड़ी भारी भूल नहीं है। क्योंकि उनके अनुमान करने का साधन तो हमारे पास है पर खंडन करने का एक भी नहीं। यदि कोई अनुभवी लेखक महाराणा प्रतापसिंह या शिवाजी की असंख्य सेना में से किसी सैनिक को च्युत कर उसका साहस तब किसी रमणी पर प्रेम तथा उसका गार्हस्थ जीवन आदि दिखलावे, तो हमें इन बातों को अघटित और सत्य मानने का कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि हमें तो उस समय का सामाजिक चित्र देखना है, न कि किसी व्यक्ति के विषय में छानबीन करना। इसी प्रकार किसी इतिहास प्रसिद्ध घटना के ऐसे अंगों का वर्णन करना भी उपन्यास लेखक का काम है, जिन पर इतिहास ने ध्यान नहीं दिया। यदि हल्दीघाटी की लड़ाई का

दृश्य दिखाने में लिखा जाए कि 'रामसिंह ने भाला मारा, गाजी खाँ की पगड़ी गिरी', राजपूतों को महाराणा ने यह कहकर बढ़ावा दिया, 'अमुक भील ने पत्थर लुढ़काया', तो इन अनुमानित व्यापारों को उस लड़ाई के अंतर्गत मानने में कोई बाधा नहीं है। ऐसे ही व्यापार की आंशिक व साधारण सूचना पाकर उपन्यासकर्ता विशेष उदाहरण का अनुमान भी कर सकता है। जैसे औरंगजेब के लिए हिंदुओं को सताना और उनके मंदिर तोड़ना साधारण प्रसिद्ध बात है। अतः यदि उस समय की कहानी लिखते हुए कोई किसी बस्ती में एक विशेष नाम का मंदिर अनुमान करते, उसका तोड़ा जाना दिखलावे तथा अनुमानित व्यक्ति विशेष की पीठ पर काजी के कट्टरपन के कारण कोड़े पड़ने की बात सुनावे, तो वह मिथ्या-भाषण का दोष नहीं।

इतिहास कभी उन बहुत से सूक्ष्म व्यापारों के लिए जिनसे जीवन का तार बंधा है, एक सांकेतिक व्यापार का व्यवहार करके काम चला लेता है, पर उपन्यास का संतोष इस प्रकार नहीं हो सकता। इतिहास कहीं यह कहकर छुट्टी पा जाएगा कि अमुक राजा ने बड़ा अत्याचार किया। अब यह अत्याचार शब्द के अंतर्गत बहुत से व्यापार आ सकते हैं। इससे उपन्यास इन व्यापारों में से किसी-किसी को प्रत्यक्ष करने में लग जाएगा।

यहाँ पर यह भी समझ रखना चाहिए कि ऐतिहासिक उपन्यासकर्ताओं के इस अधिकार की भी सीमा है। यह उन्हीं छोटी-छोटी घटनाओं को ऊपर से ला सकता है, जो किसी ऐतिहासिक घटना के अंतर्गत अनुमान की जा सकें अथवा संसार की गति और समाज की तत्कालीन अवस्था का अंग समझी जा सकें। न वह किसी विख्यात घटना में उलटफेर कर सकता है और न ऐसी बातों को ठूंस सकता है जिनका अनुमान उस समय की अवस्था को देखते नहीं हो सकता। इन ऊपर लिखी बातों पर विचार करने से ही यह विदित हो गया होगा कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए इतिहास के पूरे ज्ञान के साथ-ही-साथ परंपरागत रहन-सहन, बोलचाल की आलोचना-शक्ति आदि भी खूब होनी चाहिए। सामाजिक उपन्यास जिन-जिन चरित्रों को सामने लाते हैं, वे या तो ऐसे हैं जो सामाजिक व्यापारों के औसत हैं अथवा जिनका होना मानव प्रवृत्ति की चरम सीमा पर संभव है। कहीं पर ये उपन्यास यह दिखलाते हैं कि समाज क्या है और कहीं पर यह दिखलाते हैं कि समाज को कैसा होना चाहिए। ये कहीं तो उन असंख्य व्यापारों में से जिनसे हम घिरे हैं कुछ एक को ऐसे स्थान पर लाकर खड़ा कर देते हैं जहाँ से हम उनका यथार्थ रूप और सृष्टि के बीच उनका संबंध दृष्टि गड़ाकर देख सकते हैं और कहीं उन संभावनाओं की सूचना देते हैं

जिनसे सब मनुष्य जीवन, देव-जीवन और यह धरा-धाम स्वर्गधाम हो सकता है। सतोगुण की जो मुग्धकारिणी छाया, ये प्रतिभा संपन्न लेखक एक बार डाल देते हैं वह पाठक के हृदय पर से जीवन भर नहीं हिलतीं, मानव अंतरूकरण के सौंदर्य की जो झलक ये एक बार दिखा देते हैं, यह कभी नहीं भूलती। कथा के मिथ से मनुष्य जीवन के बीच भले और बुरे कर्मों की स्थिति दिखाकर जितना ये लेखक आँख खोल सकते हैं, उतना अहंकार से भरे हुए नीति के कोरे उपदेश देने वाले नहीं। चाणक्य, स्माइल्स आदि नीति छाँटने वाले रूखे लेखक जनसाधारण से अपने को श्रेष्ठ समझकर जिस ढब से आदेश चलाते हैं, वह मनुष्य की आत्माभिमान वृत्ति को अखर सकता है। ये लोग सदाचार का स्वाभाविक सौंदर्य नहीं दिखला सकते जिनकी ओर मनुष्य मोहित होकर आपसे आप ढल पड़ता है। अरस्तु, चाणक्य नीति और स्माइल्स के श्कैरेक्टरश आदि की अपेक्षा उत्तम श्रेणी के उपन्यासों का पढ़ना आचरण पर कहीं बढ़कर प्रभाव डालता है।

बड़े लोगों के जो जीवनचरित्र लिखे जाते हैं वे भी मानव-जीवन के पूरे और सच्चे चित्र नहीं। उनमें भी बहुत-सी सूक्ष्म घटनाएँ तो असामर्थ्य के कारण छूट जाती हैं और बहुत-सी स्थूल घटनाएँ किसी विशेष अभिप्राय से छिपा दी जाती हैं। उनमें मनुष्य के अंतरूकरण की वृत्तियाँ साफ-साफ नहीं झलकाई जाती। बावेल आदि अँग्रेजी लेखकों ने अपने चरित्र नायकों की बहुत छोटी-छोटी बातें भी दर्ज की हैं पर वे जोड़-सी मालूम होती हैं, उनमें औपन्यासिक पूर्णता नहीं आई। बादशाहों तथा वैभवशाली पुरुषों के जो चरित्र लिखे जाते हैं वे तो और भी कृत्रिम होते हैं। किसी महाराज ने अपनी गाड़ी पर से उतर अस्पताल में जा किसी रोगी से दो बातें पूछ ली तो उनकी दया और करुणा का ठिकाना नहीं। क्या इन बातों से मानव अंतरूकरण की सच्ची परख हो सकती है? वर्ड्सवर्थ, थैकरे, डिकेंस, और जहर्ज इलियट आदि बड़े-बड़े अँग्रेजी कवि और उपन्यास लेखक तथा लेखिकाओं ने दीन से दीन और तुच्छ से तुच्छ लोगों को झोंपड़ियों में जीवन के ऊँचे से ऊँचे आदर्श दिखलाए हैं।

साभार : नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग-14 संख्या 1, संस्करण 15 जुलाई 1910, पृष्ठ 45

विवश होने पर संधि हो सकती है, पर उनमें शांति नहीं होती!

-रवीन्द्रनाथ ठाकुर

लेख

एक बेहतर दुनिया के लिए

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

लगभग डेढ़ शताब्दी 1750 से 1900 के बीच पूंजीवाद और प्रौद्योगिकी ने एक नई तरह की सभ्यता का आगाज किया था। इन विचारों का जिस तरह वैश्विक स्तर पर फैलाव हुआ और वह सभी क्षेत्रों, वर्गों और संस्कृतियों पहुंचा उसने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। पूंजीवाद के इस विस्तार ने ज्ञान का अर्थ ही बदल दिया। ज्ञान जो पहले मनुष्य के अस्तित्व से जुड़ा था अब वह कर्म में प्रयुक्त हो गया। यह एक साधन और उपयोगी वस्तु हो गया। कभी जो ज्ञान निजी था वह सार्वजनिक हो गया। ज्ञान को उपकरणों, प्रक्रियाओं और उत्पादों में प्रयुक्त किया जाने लगा। इसने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। साथ ही इसने अलगाव को भी खूब बढ़ाया। फिर हमने यह भी देखा कि वर्ग संघर्ष के साथ साम्यवाद आया। ज्ञान के उपयोग के साथ उत्पादकता की क्रान्ति हुई। उत्पादकता क्रान्ति ने वर्ग संघर्ष और और साम्यवाद को हरा दिया। अंतिम दौर दूसरे विश्व युद्ध के बाद शुरू हुआ। अब ज्ञान का उपयोग ज्ञान के लिए शुरू हुआ। इससे प्रबंधन क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। पूंजी और श्रम को किनारे कर ज्ञान उत्पादन का एक कारक हो गया। हमारा समाज ज्ञानकेन्द्रित तो नहीं हुआ है पर अर्थव्यवस्था जरूर ज्ञानकेन्द्रित हो चुकी है।

अब आर्थिक समृद्धि परवान चढने लगी और सुख की इच्छा भी तीव्र होती गई। पृथ्वी, जल और अंतरिक्ष समेत सारी सृष्टि के अधिकाधिक दोहन कर विकास के नए प्रतिमान स्थापित होते गए। विश्व में आर्थिक प्रगति की दृष्टि से ध्रुवीकरण होता गया और पहली, दूसरी और तीसरी दुनिया के बीच देशों को बांटा जाने लगा। विकास का पैमाना विकसित देशों से लिया गया और सभी देशों को उससे नापने की व्यवस्था की गई। वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण को महामंत्र मानकर सारी क्षेत्रीय और सांस्कृतिक विविधताओं को किनारे रख पिछड़े देशों को कर्जदार बनाकर एक विलक्षण आर्थिक प्रगति का एकहरा मॉडल

आरोपित किया गया। इसके परिणाम मिश्रित हैं। अनचाही प्रतिस्पर्धा, हिंसा और प्राकृतिक संसाधनों का का अनियंत्रित दोहन प्रकृति के स्वाभाविक चक्र को ही खंडित कर रहा है। विकास की दौड़ विनाश जैसी लगने लगी है। सभी सकते में हैं और धरती और पूरा पर्यावरण जोखिम की गिरफ्त में है। इस पूरी कहानी के अंजाम को लेकर सभी चिंतित हैं। विकल्प की तलाश में हमारा ध्यान महात्मा है जो गांधी की दृष्टि पर जाता है। उनके सादगी और अहिंसा के विचार मानव कर्तृत्व की एक सहज व्यवस्था में स्थापित हैं। वह संतुष्टि की अर्थ व्यवस्था की ओर ले चलते हैं। न कि वृद्धि की अर्थ व्यवस्था की ओर। यह उस उत्पादन-उपभोग की प्रधानता वाली शैली के विपरीत है, जिसमें असमानता और गरीबी दोनों ही मजबूती के साथ आज भी टिके हुए हैं।

सादगी और अहिंसा के विचार परस्पर जुड़े हुए हैं। पश्चिमी तार्किक निगमन से भिन्न गांधी जी प्रज्ञा और सत्य के साक्षात अनुभव वाली आध्यात्मिक परम्परा से जुड़े हुए थे। अहिंसा का विचार पीड़ा न पहुँचाने के भाव से जुड़ा हुआ है। इसमें नकारात्मक भाव के बदले में न केवल हिंसा का त्याग निहित है बल्कि एक सकारात्मक स्थिति है जिसमें सभी प्राणियों के साथ तादात्म्य स्थापित करना प्रमुख है। ऐसी स्थिति में आदमी प्यार के भाव से कार्य करता है। अपने और दूसरे दोनों के हित-साधन के भाव से कार्य करता है। साथ ही हर संभव पीड़ा के प्रति सतर्कता भी रहती है। जैन मुनि स्वच्छता का विशेष ध्यान रखते हैं और मुंह पर मास्क लगाते हैं। हर कार्य प्रीतिबर्धक हो जाता है। ऐसे ही सादगी विश्व के प्रति प्यार का रूप ले लेती है। जब निजी सुख को त्यागने की बात आती है। प्लास्टिक के झोले हम उपयोग में लाते हैं, यदि सारी दुनिया के साथ तादात्म्य हो जाय तो धरती की चिंता होगी और उपभोक्ता का भाव बदल जायगा. गांधी जी अपने को अैतवादी कहते हैं और सभी के बीच एक अनिवार्य एका देखते हैं। उनका विश्वास था की एक आदमी की आध्यात्मिकता से सकल विश्व लाभ पाता है।

आधुनिक उत्पादन-उपभोग की प्रणाली सबके साथ तादात्म्य की बात नहीं करती है। इसका परिणाम गरीबी और असमानता ही नहीं पर्यावरण का दोहन भी है। प्रजातियाँ तक लुप्त हो रही हैं। संपत्ति का अधिकार आज की वैश्विक अर्थ व्यवस्था में अति उत्पादन और अति उप भोग को जन्म दे रहे हैं। इसका परिणाम पारिस्थितिक असंतुलन और वैश्विक असमानता है। वैश्विक

संस्थाएं बड़े गरीब देशों में गरीबी और पीड़ा को जन्म देती हैं। स्वास्थ्य और स्वच्छता की चुनौतियां, धर्म, भाषा कला विज्ञान आदि का क्षेत्र जो संस्कृति में आता है। वह भी कारण है. पर इन आलोचनाओंमें सब के साथ तादात्मीकरण का भाव नहीं लाते हैं। भौतिक दृष्टि से परे एक सर्वातिक्रामी नजरिये की जरूरत है ताकि धरती की सीमा में ही उत्पादन और उपभोग हो। एक बिलियन भूखे और कुपोषित हैं जो दूसरे हैं। गांधी का नुस्खा विश्व की जरूरतों का समता के आधार पर और बिना किसी टकराव के समाधान कर सकते हैं।

आज की कानूनी व्यवस्था में इस बात पर बहुत कम विचार हुआ है कि वे वैश्विक दुःख और गैर टिकाऊ के पक्ष में कैसे काम करती हैं। उत्पादन-उपभोग के प्रारूप के अंतर्गत। संपत्ति का विचार और उसका बहुराष्ट्रीय स्वरूप की समीक्षा नहीं होती है। ऐसी सारी कम्पिनियाँ अपने उत्पादन के क्रम में हानि पहुंचाती हैं, संपत्ति के ऐसे उपयोग को देखें तो गांधी जी की आधुनिक सभ्यता की आलोचना याद आ जाती है। गुजराती में सभ्यता सुधारु है। गांधी ने बड़ी प्रखरता से कहा था कि सभ्यता तभी टिकाऊ और शान्ति ला सकेगी यदि संसाधनों और व्यक्तियों के साथ सम्बंधों के बारे में वह पश्चिमी विचारों को बदल नहीं देती है। आज की उपभोग की आदतें कहाँ ले जा रही हैं यह विचार का प्रश्न है। गांधी जी से किसी पत्रकार ने जीवन के रहस्य को तीन शब्दों में व्यक्त करने को कहा तो ईशावास्योपनिषद को उद्धरित करते हुए कहा कि त्याग करो और आनंद करो। कुछ न चाहकर वास्तविक स्वतंत्रता मिलाती है। अनंत उपभोग की पक्षधर संस्कृति किसी स्थायी सुख की उपलब्धि नहीं करा सकती। इस तरह की व्यवस्था में भौतिकता प्रधान समाज दूसरों पर दब दबा बनाते हैं और अस्थाई और क्षण-भंगुर संतुष्टि ही देते हैं। एक घोर अंतर्विरोध है आनंद उपभोग में है और उपभोग अनंत है।

आज अध्ययन यह बता रहे हैं की सुख पर भौतिक समृद्धि का रिश्ता डिमिनिशिंग रेतुर्न का है। एक विन्दु पर धन की वृद्धि अपना महत्त्व खो देता है। मूल आवश्यकताओं की पूर्ति होने के बाद समृद्धि का असर उतना नहीं होता है। डेनियल कॉमन के हिसाब से 75000 हजार डालर तक तो वार्षिक आय और खुशहाली बढ़ाते हैं, पर उसके ऊपर समाप्ति और सुख के बीच कोई रिश्ता नहीं रह जाता। अत्यधिक भौतिक समृद्धि और सुख के बीच के कमजोर रिश्ते की बात वैज्ञानिक शोध से पुष्ट हो रही है। एक हेदानिक त्रेदेमिल है। अनुकूलन के

बाद और भौतिक सुख चाहते हैं। गरीबी से मुक्त के बाद तोड़ा सुख पर्याप्त है। इसी तरह अत्यधिक उपभोग अस्थाई है और लोगों को हेदोनिक त्रद्मिल में बझाए रखता है विश्व के अधिकाधिक संसाधन के उपभोग की चाहत रहती है।

भौतिक इच्छाओं से स्थायी सुख पाया जा सकता है। शाश्वत उपभोग की इच्छा के वश में पद कर वस्तुतः सतत असंतुष्टि को खरीदते हैं। नाखुशी और उपभोग के बीच का रिश्ता उन उद्योगों में देखा जा सकता है जो आत्म-संवर्धन से जुड़ी हैं। उपभोग की संस्कृति में पले बढ़े लोग तत्काल संतुष्टि की सोचते हैं। यह सतत बाजारीकरण का परिणाम है। बीसवीं सदी के आरम्भ में विज्ञापन का दौर शुरू हुआ था। उसने उपभोक्ताओं में असुरक्षा का भाव पैदा किया और उसकी तरकीबें भी ईजाद कीं। जनता को जितना ही ज्यादा असंतुष्ट रखा जाय यानी खरीददार असंतुष्ट रहे तो रोजगार में ज्यादा नफा होगा। अतरू उपभोक्ता का दिमाग काबू में कर उत्पादों के लिए इच्छा पैदा करना स्वयं में एक धंधा बन गया। यह मान कर कि सामाजिक संस्थाएं व्यक्ति की रक्षा करेंगी कानून के दायरे में किसी भी तरह व्यापार करने की छूट है। अवांछित उपभोग पर अंकुश लगाने वाली संस्थाओं के अभाव में उपभोक्ता पर उन संदेशों की भरमार होती गई कि खरीदो नाखुश रहकर उपभोग के लिए लालायित बने रहें और उपभोग करते रहें, न कि दीर्घकाल की संतुष्टि करें। अंतहीन उपभोग सुखी नहीं बनाता।

गांधी जी इसे आधुनिक जीवन की कमी मानते थे। गाँव की अपेक्षा शहर की तेज रफ्तार जिन्दगी में बिना संतुष्टि की आदमी भागते-दौड़ते रहते हैं, भौतिकता की ललक को लक्ष्य बना कर प्रगति के मार्ग पर नीचे गिरते हैं। सड़कों पर कारें धक्कामुक्की भौतिक प्रतीक हो रहे हैं, पर इनसे खुशी बहुत कम मिलाती है। ऐसे व्याकुल आधुनिक भारतीय के लिए यम का देसी विचार आत्म नियंत्रण और चरित्र निर्माण की और ध्यान आकृष्ट करता है। इन नैतिक अभ्यासों का पालन आतंरिक शान्ति और सामाजिक समरसता मिलती है। गांधी जी दीर्घजीवी खुशी आवश्यक जरूरतों (नीड) से जुड़ी होती है, न की चाहों या इच्छाओं (वांट) से। जीने के लिए अहिंसा जरूरी है। अहिंसा और अपरिग्रह सीमाएं बनाते हैं। अभौतिक लक्ष्यों पर भी विचार करना होगा। आनंद का स्रोत तो अन्दर है। बड़े आकार की तेज रफ्तार कार, बड़ा घर अधिक फैशन की वेश भूषा से उपजाने वाला सुख घटती बढ़ती रहेगी। अतृप्त ही रहने वाली कामनाओं की पूर्ति करना

इनाके अस्थाई स्वभाव को न समझने के कारण है। उच्च स्तर का सोचना उच्च विचार जटिल भौतिक जीवन के साथ संभव नहीं है. मूल मानवीय जरूरतें सरल थीं। यदि हम यह मानें की हमारा भौतिक अस्तित्व परिवर्तनशील है और हम साधनों को सीमित अवधि के लिए ही रख सकते हैं तो उस अप्रिसम्पत्ति को जाने देंगे। तब हेदोनिक ट्रेडमिल की बढ़ती इच्छाओं की समस्या खत्म हो जायगी।

अर्थाशास्त्रीगण भौतिक उपलब्धि को ही अंतिम लक्ष्य माना कर चलते हैं। वे उपभोग को मात्रा में देखते हैं। खर्च कैसे करते हैं यह महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि हर तरह का खर्च एक-सा ही होता है। महात्मा गांधी टिकाऊ उपभोग के लक्ष्य के लिए गुणात्मक परिवर्तन चाहते हैं। अतः जीवन में सर्वप्रथम आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था होती है फिर गृहस्थी जमाने की। उसके बाद मानवता के लिए सोचना चाहिए। ऐसा करते हुए संसाधन का दबाब कम होगा और वैश्विक सुख और शान्ति आ सकेगी। अतः अपरिग्रह आवश्यक है और खुशी एक मानसिक दशा है। मनुष्य खुश या नाखुश गरीबी के कारण ही नहीं होता। धनी लोग भी नाखुश होते हैं। खुशी की अर्थव्यवस्था से समाज में शान्ति और निश्चिंतता बढ़ती है। गांधी जी ने नैतिकता को आर्थिक प्रगति से जोड़ा। स्वदेशी के विचार के साथ उन्होंने यह भी माना था कि हम अंश के रूप में ब्रह्माण्ड के हिस्से हैं, और हमें उससे जुड़ा दायित्व निभाना चाहिए।

चलो, लौट चलें !

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-944444-2-8

संस्करण : 2020, मूल्य : 150/-

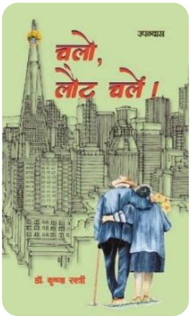

लेख

वैश्विक समाज और सांस्कृतिक परिवर्तन

अल्पना नागर

किसी भी देश की संस्कृति उसमें निहित परम्पराओं के माध्यम से परिलक्षित होती है।परम्पराएं वो जो लंबे समय से चली आ रही हैं।किसी देश की धरा में उसकी जड़ें कितनी गहरी हैं इस बात का पता वहाँ के सांस्कृतिक मूल्यों से चलता है। अभी बात चल रही है वैश्विक समाज और उसमें आये सांस्कृतिक परिवर्तनों की। इसके लिए सबसे पहले इस बात को समझना होगा कि क्या संपूर्ण विश्व में बुनियादी बदलाव आ रहे हैं ? ऊपरी तौर पर ये तो बिल्कुल स्पष्ट है कि हमारे भौतिक पर्यावरण से लेकर जलवायु तक बेहिसाब परिवर्तन आये हैं,पर क्या सांस्कृतिक जीवन भी बदल रहा है! वैश्विक समाज के मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है या नहीं ? जवाब है, हाँ। हम तेजी से विश्व की संस्कृतियों को ग्रहण करते जा रहे हैं।विश्व के अन्य देशों में भी सांस्कृतिक बदलाव हुए हैं।हमारी शिक्षा पद्धति से लेकर गीत संगीत, नृत्य शैली, भाषा, जीवन मूल्य आदि सभी संस्कृति की आत्मा कही जाने वाली मूलभूत विशेषताओं में विश्व की सांस्कृतिक गंध घुलती मिलती नजर आ रही है। इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि हमनें आधुनिक जीवन शैली और आचरण पश्चिम से ग्रहण किया है। हमारे जीवन में विद्यमान वर्तमान सुख सुविधाओं के लिए हम पश्चिम के आभारी हैं। निस्संदेह इक्कीसवीं सदी चकाचौंध से भरी गहनतम अँधेरी रात है, वो रात जिसे हम तेज रोशनी के कारण देख नहीं पा रहे।हमें सुख सुविधाएं मिली। हमारी जीवन शैली में गुणात्मक परिवर्तन हुए लेकिन हम सुविधाओं के गुलाम होते चले गए। कई बार लगता है हम सुविधाएं नहीं भोग रहे बल्कि सुविधाएं हमें भोग रही है! ये बात विचारणीय है,आज हमारे पास इतनी अधिक सुविधाएं एकत्रित हो गई हैं कि उन्हें भोगने के लिए न तो वो आनंद ही शेष रहा है और न ही समय।अभी कुछ ही दशक पहले की बात है जब आर्थिक रूप से हर नागरिक उतना अधिक समृद्ध नहीं था जितना आज है लेकिन हमारी आंतरिक खुशी का स्तर समृद्ध था। आज स्थिति बदल गई है। ये वैश्विक सांस्कृतिक परिवर्तन का ही परिणाम

है। आज हम भूल गए हैं कि बीसवीं सदी में कोई विवेकानंद नामक युवा विचारक थे जिन्होंने न केवल भारत अपितु संपूर्ण विश्व में हमारे प्राचीन मूल्यों व सांस्कृतिक विरासत की ध्वजा फहराई थी। वो मूल्य जिनके लिए आज भी विश्व भारत को सम्मान भरी दृष्टि से देखता है। ये विडंबना ही है कि आज संपूर्ण विश्व में हमारे प्राचीन मूल्यों को पूरे हृदय के साथ अपनाया जा रहा है,हमारी सांस्कृतिक धरोहर वेद, पुराणों एवं अन्य ग्रंथों का वृहत् स्तर पर अध्ययन किया जा रहा है और हम पश्चिम की ओर भाग रहे हैं। खुलेआम मूल्यों का अवमूल्यन कर रहे हैं। मसलन वर्तमान में लिव इन रिलेशनशिप का चलन चल रहा है, जो न केवल हमारे विवाह संस्कार को चुनौती है अपितु रिश्तों में आयी दरार का भी मुख्य कारक बनता जा रहा है। इससे विवाहेत्तर संबंधों को भी खुली छूट मिली है। निश्चित रूप से ये हमारे जीवन मूल्य नहीं हैं वरन उनपर कुठाराघात है। इसके अलावा समलैंगिक विवाह भी परिवर्तित वैश्विक संस्कृति का ही परिणाम है। संयुक्त परिवारों का बिखराव और वृद्धों का तिरस्कार इसी सांस्कृतिक परिवर्तन से संबद्ध है। महानगरीय फ्लैट संस्कृति ने भावनाएं भी 'फ्लैट' कर दी हैं। समाज व्यक्ति केंद्रित होता जा रहा है। सामाजिकता वन्य जीवों की तरह दुर्लभ होती जा रही है। वर्तमान में विश्वव्यापी महामारी नें इस नए 'ट्रेंड' पर अपनी मुहर भी लगा दी। अब व्यक्ति और भी अधिक आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। संपूर्ण विश्व डिजिटल होता जा रहा है। इंटरनेट सेवा नें लोगों के आचार विचारों में व्यापक परिवर्तन किया है। अब विश्व के किसी भी कोने में घटने वाली घटना से आप तुरंत रूबरू हो सकते हैं, विश्व और आप में महज उँगली भर का फासला रह गया है। सांस्कृतिक परिवर्तन में इंटरनेट सेवा नें काफी इजाफा किया है। कुछ दशक पूर्व तक मनोरंजन के साधन बेहद साधारण किन्तु अपने आप में विशेष थे। समाज में नौटंकी, सर्कस, रंगमंच, नुक्कड़ नाटक, ख्याल आदि के माध्यम से मनोरंजन होता था, लोग एक दूसरे से जुड़ते थे, प्रत्यक्ष रूप से आमने सामने मिलते थे। बच्चों में भी चौपड़ पासा, गिल्ली डंडा, छुपन छुपाई जैसे खेल प्रचलित थे जिनसे न केवल शरीर स्वस्थ रहता था, अपितु मानसिक स्वास्थ्य भी दुरुस्त रहता था। टीवी पर भी इक्के दुक्के कार्टून या बालसुलभ कार्यक्रम होते थे, जिन्हें देखने के लिए बच्चों में एक अलग ही उत्साह होता था, लेकिन चूंकि अब सांस्कृतिक परिवर्तनों की बाढ़ आ गई है, इंटरनेट भी बेहिसाब मनोरंजन के कार्यक्रमों से भर गया है। टीवी चैनलों पर एक से एक दुनिया भर के बाल मनोरंजन के कार्यक्रम मौजूद हैं, लेकिन बच्चों का वो उत्साह कहाँ गया! वो आंतरिक प्रसन्नता कहाँ गई! आज का मनोरंजन मन का रंजन नहीं कर पाता

उसमें एक कृत्रिमता आ गई है। सब कुछ इतना आसानी से उपलब्ध है कि कोई उत्साह, कोई प्रतीक्षा बची ही नहीं! अजीब बात है, हम सुविधाओं में जितना आगे आये, संतुष्टि में उतना ही पीछे होते गए! आज के बेहद व्यस्त माता पिता भी अपना समय बचाने के लिए बच्चे के हाथ में मोबाइल पकड़ा देते हैं। बच्चा भी एक मशीन की तरह उठते बैठते हर हाल में मोबाइल या इंटरनेट पर कोई खेल चाहता है।

वैश्विक आर्थिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण मानव जाति नें विकास अवश्य किया है, लेकिन उसके लिए बहुत बड़ी कीमत भी चुकाई है। पश्चिम का अंधानुकरण करके अकूत सम्पदा एकत्रित कर ली, किन्तु फिर भी एक अरसे से आत्मा पर चिपकी हुई दरिद्रता से मुक्त नहीं हो पाए। हमने देखा कि पश्चिमी लोग मुक्त जीवन जीते हैं, उनकी जीवन शैली आरामदायक और वैभव से परिपूर्ण हैं, लेकिन ये नहीं देखा कि इसके पीछे कितने वर्षों की मेहनत और संघर्ष छुपा है। आज हम देखते हैं कि स्टीव जॉब्स या मार्क जुकरबर्ग बाकी दुनिया से भिन्न क्यों हैं! उन्होंने वर्तमान युग की सारी परिभाषाएं ही बदल डाली। एक अकेला इंसान किस तरह पूरी सदी को अपनी परिधि में ले आता है! ऐसा कैसे संभव है! हम ये सब सोचते रह जाते हैं और वो कुछ नया कर गुजरते हैं।हम सफलता के पीछे भागते हैं, बिना ये परवाह किये कि जो कार्य हम करने जा रहे हैं वो कितना सार्थक है। सफल लोगों ने सफलता को अपना लक्ष्य नहीं बनाया, सच कहें तो उन्होंने परवाह ही नहीं की, उन्होंने संपत्ति बनाने का भी लक्ष्य दिमाग में नहीं रखा, और न ही संसार को बदल देना उनका मिशन रहा, जैसा कि हम सफलता की परिभाषाएं गढ़ते आये हैं उन्होंने कुछ भी वैसा नहीं किया। समाज के बने बनाये फ्रेम से बाहर आकर अपने मन की सुनी, उसके पीछे पीछे चलते गए वो भी पूरे आनंद के साथ, उन्होंने कुछ करने की ठानी, भीड़ से हटकर अपना सार्थक अस्तित्व खड़ा करने का प्रयास भर किया और सफलता खुद ही उनके पास चली आई। सांस्कृतिक परिवर्तन एक दिन का कार्य नहीं है। वर्षों की साधना है। अगर ये सकारात्मक सोच को लेकर की जाये तो दुनिया वैसी ही नजर आएगी, खूबसूरती से बदली हुई।

आज हम जिस राह पर खड़े हैं, दुर्भाग्य से वहाँ से कोई राह नहीं निकलती। मानव अपने संघर्ष के आखिरी चरण में है। वो जिस तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहा है उसे देखकर यही लगता है कि मानव स्वयं अपना अस्तित्व मिटा देना चाहता है। किसी महान विचारक नें कहा भी है कि्अब तक दो विश्वयुद्ध हो चुके हैं लेकिन अगर तीसरा विश्वयुद्ध हुआ तो आगामी युद्ध

पत्थरों से लड़े जाएंगे। समझदार को इशारा काफी है। तीसरा विश्वयुद्ध अगर हुआ तो इतना विनाशकारी होगा कि मानवता बचेगी ही नहीं। एक बार पुनः आदिम युग की उत्पत्ति होगी। अब यह मनुष्य पर निर्भर करता है कि वह अपना अस्तित्व बचाये रखना चाहता भी है या नहीं! यदि जवाब हाँ है तो जीवन शैली और व्यवस्था में वृहत स्तर पर परिवर्तन करने होंगे। हमें बुद्धिमता से साधन चयन करने होंगे, वो चयन ही मानव के अस्तित्व के दिन निर्धारित करेगा। अब तय यह करना है कि विकास किस हद तक आवश्यक है। विज्ञान की अंधाधुंध प्रगति आवश्यक है या उसका सार्थक उपयोग! सांस्कृतिक परिवर्तन निर्धारित करेंगे कि एक अकेले राष्ट्र का उत्थान आवश्यक है या समूची मानव प्रजाति! लाभ जरुरी है या सामूहिक हित। वर्तमान में सारा विश्व एक अजीब से झंझावात से गुजर रहा है। महामारी के रूप में हमारी आधुनिक जीवन शैली हमें ही डस रही है। कयास लगाये जा रहे हैं कि इस विश्वव्यापी विनाश के पीछे किसी राष्ट्र की सोची-समझी साजिश है, महामारी एक तरह का जैविक हथियार बना कर फैलाई गई है। ये अभी शोध का विषय है। आरोप-प्रत्यारोप साबित होने तक कोई भी अनुमान व्यर्थ हैं। लेकिन इस विषय में सोचकर ही रूह कांप जाती है, कहीं सचमुच इस तरह के युद्ध होने लगे तो क्या शेष बचेगा! हर राष्ट्र ने अपनी सुरक्षा के लिए इस तरह के जैविक और रासायनिक हथियार ईजाद किये हुए हैं। खैर, सारी दुनिया के विचारक और प्रबुद्ध वर्ग इसी प्रयास में लगे हुए हैं कि ऐसी नौबत न आये। इसीलिए सांस्कृतिक परिवर्तनों को सकारात्मक दिशा देने के प्रयास किये जा रहे हैं।

हमें डर और हिचक के साए से दूर रहकर नए प्रतिमान रचने होंगे।सार्थकता को अपना संगी बनाना होगा। हमें पश्चिम का अंध भक्त बनने से बचना होगा। वहाँ से बहुत सी अच्छी बातें सीखी जा सकती हैं। किसी भी कार्य के प्रति प्राणांतक लगन व एकाग्रता के साथ जुट जाना हमें पश्चिम से सीखना होगा। हमें व्यर्थ के जड़ तत्वों से स्वयं को मुक्त करना होगा। प्राचीन भारत के दर्शन और जीवन मूल्यों को एक बार पुनः रोशनी में लाना होगा उन्हें समुचित स्थान देना होगा। आधुनिक होना बुरा नहीं है, लेकिन आधुनिकता मूल्यवान और सार्थक होनी चाहिए। सभ्यता के जिस चरण में हम रह रहे हैं उसे एक अरसे पहले गाँधीजी ने मशीनी सभ्यता का नाम दिया था। पुरातन ग्रंथो में जिस युग की 'कलयुग' नाम से कल्पना की गई थी वो अपने अद्यतन रूप में हमारे सामने है। मानव सभ्यता द्वारा किये जा रहे उपभोग और विकास की लंबी यात्रा अब उस चरण में पहुँच चुकी है, जहाँ से उसका संघर्ष किसी व्यक्ति, विचार या

समाज से नहीं रह गया है, अपितु अब उसकी सीढ़ी टक्कर स्वयं प्रकृति से है। ये दुःखद है कि अब तक मानव सभ्यता की विकास यात्रा को मनुष्य और प्रकृति के बीच संघर्ष से देखा गया है, जिसमें मनुष्य नें प्रकृति पर विजय पाकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की। आदिम युग की मानव सभ्यता इतिहास बन चुकी है, प्रकृति से उसका संघर्ष उसके स्व-अस्तित्व की रक्षा के लिए अनिवार्य था, लेकिन आज जब आदिम युग के पन्ने पलट चुके हैं। इंसान कई युग आगे निकल आया है तब भी उसके स्वयं के आत्मघाती कदमों के कारण उसके अस्तित्व की रक्षा की अनिवार्यता महसूस की जा रही है। मनुष्य का प्रकृति से कोई संघर्ष नहीं हो सकता। मनुष्य और प्रकृति के बीच संघर्ष हो भी नहीं सकता। इंसान कभी प्रकृति से जीता नहीं,ये प्रकृति को देखने का गलत नजरिया है। इस बात को हम सीधे तौर पर इस तरह देख सकते हैं कि इंसानी सभ्यता का उद्भव प्रकृति की कंदराओं में हुआ, लेकिन धीरे-धीरे इंसानी बुद्धि हावी होने लगी। उसे विकास की जरुरत महसूस हुई और उसने स्वयं को प्रकृति से विलग कर लिया। एक समय ऐसा आया कि दोनों एक दूसरे से अजनबी ही गए। इंसान की उपलब्धियों में नए नए अविष्कार सुख सुविधाएं उपभोग की वस्तुएं जुड़ती चली गई वह प्रकृति से अंततः कटता चला गया। इस अलगाव नें इंसान की मूलभूत आत्मा को नष्ट कर दिया। प्रकृति से अलगाव पर इंसान को आखिर क्या मिला! देखा जाये तो कुछ नहीं, वह शनै शनै एकाकी आत्म केंद्रित और कुंठा ग्रस्त होता चला गया। अब समय आ गया है कि इंसान एक बार पुनः अपनी इस यात्रा पर चिंतन करे। यह न केवल इंसानी सभ्यता के लिए अपितु स्व-अस्तित्व की रक्षा के लिए भी अपरिहार्य है। जरुरी नहीं कि इंसान इसके लिए अपनी अब तक की सभ्यता यात्रा को स्थगित करे या विनिष्ट करे। वह अपनी अब तक की उपलब्धियों के साथ भी आगे बढ़ सकता है, लेकिन उसे तारतम्य बिठाना होगा प्रकृति और स्वयं के बीच, ताकि टकराव की स्थिति उत्पन्न न हो। मनुष्य अपने द्वारा बनाये जिन सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ खड़ा है उससे आगे का रास्ता बंद हो चुका है, उसे अंतिम सत्य की ओर लौटना होगा, तभी सही मायने में विकास यात्रा संपूर्ण मानी जायेगी।

–412, रामाकृष्णा पुरम, सेक्टर 10, नई दिल्ली

साहित्य का संबंध जीवन से है, इसलिए जो जीवन के लिए अच्छा नहीं है, वह साहित्य में भी अच्छा नहीं कहा जा सकता?

लेख

किन्नर जीवन : दर्द भरी दास्तान

पूजा सचिन धारगलकर

'किन्नर' नाम सुनते ही आपके दिमाग में अवश्य लज्जा का भाव आया होगा। लेखन तो दूर, नाम लेने मात्र से लोग कतराते हैं। शायद आपने भी यह भाव महसूस किया हो। 'किन्नर' शब्द सुनते ही हमारे मस्तिष्क में एक मनोग्रन्थि बन जाती है। 'किन्नर' शब्द पर मैंने इसलिए विशेष जोर दिया ताकि आपका ध्यान आकर्षित हो सके और आप इस शब्द से परे जाकर सोचने और समझने की दृष्टि उत्पन्न कर सके। किन्नर समाज जिसके साथ बिल्कुल उपेक्षित सा व्यवहार किया जाता है, उपहास उड़ाया जाता है, उसको आज सम्मान की दरकार है। वे आम आदमी की तरह जीने का अधिकार रखते हैं। आक उनकी व्यथा-कथा, समस्याएँ, उपेक्षा और तकलीफ से हमारे समाज को रूबरू होने की अवश्यकता है। उनको भी समाज की मुख्य धारा, मुख्य समाज में रहने, जीने का अधिकार है। आज साहित्य उनकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए तरस रहा है, किंतु उसको उचित अभिव्यक्ति नहीं मिल पा रही है।

सामाजिक पूर्वाग्रह से युक्त हमारा तथा-कथित समाज इस प्रजाति को हेय और गृणित दृष्टि से देखता है। ऐसे कई अवसर आते हैं, जब उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा जाता है। चाहे विद्यालय हो, प्रशिक्षण संस्थान हो या फिर नौकरी देने की बात हो, उनके साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है। हमारे गरिमामय भारतीय संविधान में इस बात का साफ-साफ उल्लेख है कि जाति, धर्म, लिंग के आधार पर नागरिकों के साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा। लेकिन फिर भी इन लोगों के साथ यह भेदभाव क्यों किया जाता है। इस संसार में नर-नारी के अलावा और भी एक अन्य वर्ग है जो न पूरी तरह नर होता है और न नारी होते है, जिसे लोग 'हिजड़ा', 'किन्नर' या फिर 'थर्ड जेंडर' के नाम से भी जानते है। 'हिजड़ा' जिनके बारे में जानने की उत्सुकता हमेशा लोगों

के अंदर होती है। शास्त्र की बात करे तो ऐसा माना जाता है की किन्नर की पैदाइश अपने पूर्व जन्म के गुनाहों की वजह से होती है। वैसे देखा जाए तो सभी नाम एक दूसरे के पृथक है या कहे की समानांतर है। फिर भी अध्ययन करने पर उसमें भेद किया जा सकता है। किन्नर एक जाति का भी नाम है जो हिमालय के कनौर प्रदेश (हिमवत और हेमकूटी) में रहते हैं। उनकी भाषा 'कनौरी' है। ''हिजड़ा उर्दू शब्द है और किन्नर हिन्दी शब्द है। आज के समय में सरकार एवं सामाजिक संगठन ने इसे 'ट्रांसजेंडर' नाम दिया है यानि की तीसरा लिंग अर्थात तृतीय प्रकृति के लोग। हर राज्य में उन्हें अलग-अलग नाम से पुकारा जाता है जैसे 'तेलगु-नपुंसकुडु, कोज्जा या मादा, तमिल - थिरु नंगई, अरावनी, अंग्रेजी में– Eunuch / Hermaphrodite / LGBT, गुजरती-पवैय्या, पंजाबी-खुसरा, कन्नड-जोगप्पा भारत के अन्य जगह पर हिजरा, छक्का, किन्नर, खोजा, नपुंसक, थर्डजेंडर आदि''[1]।

वैसे इनका इतिहास काफी पुराना है। रामायण महाभारत के समय से हिजड़ों का इतिहास चला आ रहा है। रामचरितमानस में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। वनवास जाते समय श्री राम अपने पीछे आए छोटे भाइयों सहित सभी स्त्री एवं पुरुष वापस लौट जाने के लिए कहते हैं। आदेश का पालन करते हुए सभी स्त्री एवं पुरुष वापस अयोध्या लौट आने को कहते हैं, किन्तु मध्य लिंगी अर्थात हिजड़े वापस नहीं लौटते। 14 वर्षों के बाद वनवास से वापस लौटते समय श्रीराम ने उनसे वहाँ रुके रहने का कारण पूछा, तब श्रीराम के कथन को किन्नरों ने स्पष्ट किया कि प्रभु आपने नर और नारी को वापस जाने की अनुमति दी थी, किंतु हमारे संबंध में कोई आदेश नहीं किया था। इस प्रसंग का उल्लेख रामचरितमानस में तुलसीदासजी करते हैं-

''जथा जोगु करि विनय प्रनामाँ बिदा किए सब सानुज रामाँ।

नारि पुरुष लघु मध्य बडेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

इसका उल्लेख 'किन्नर कथा' उपन्यास में महेंद्र भीष्म ने भी किया है। कहा जाता है कि हिजड़ों की इस निश्चल एवं निस्वार्थ भक्ति भावना को देखकर श्रीराम ने उन्हें वरदान किया कि कलयुग में तुम्हारा ही राज होगा और तुम लोग जिसको भी आशीर्वाद दोगे, उसका अनिष्ट नहीं होगा। रामचरितमानस में ही श्रीराम की भक्ति के संबंध में पात्रता का उल्लेख करते हुए लिखा कि-

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोई।

सर्व भाव भज कपत तजि, मोहि परम प्रिय सोई॥

अर्थात् चराचर जगत में कोई भी जीव हो, चाहे वह स्त्री, पुरुष, नपुंसक, देव, दानव, मानव तिर्यक इत्यादि हो। अगर वह सम्पूर्ण कपट को त्यागकर मुझे भजता है, वह मुझे प्रिय है। रामायण काल में किन्नर वर्ग की विशेष उपस्थिति थी।

महाभारत में किन्नर के रूप में शिखंडी तथा बृहन्नला (अर्जुन) का उल्लेख मिलता है। अर्जुन ने शिखंडी को ढाल बनाकर ही भीष्म पितामह का वध करने में सफलता पायी थी। शिखंडी को सामने देखकर भीष्म पितामह ने कहा कि वह एक नपुंसक से युद्ध नहीं कर सकते और अपने शस्त्र नीचे डाल दिए थे''[2]। मुगल काल में राजा युद्ध जाने पर रानियों की देखभाल किन्नर करते थे। पहले कभी उनका अनादर नहीं हुआ। पौराणिक ग्रंथों, वेदों, पुराणों और साहित्य तक भी किन्नर हिमालय के क्षेत्र में बसने वाली अति प्रतिष्ठित व महत्त्वपूर्ण आदिम जाति हैं।

किन्नर की शव यात्रा रात्रि के समय निकलती है, किन्नर मुर्दों को जलाया नहीं जाता बल्कि उन्हें दफनाया जाता है। चौंका देने वाली बात यह है कि वह किसी दूसरे किन्नर से नहीं बल्कि वह अपने भगवान से शादी करते हैं। जिन्हें अरावन के नाम से भी जाना जाता हैं। उन्हें शव पर किसी की भी नजर न पड़े यह मान्यता है। उनके शव को चप्पलों से मारा जाता है जिससे पिछले जन्म के जो भी पाप हैं, वह सब मिट जाए। उनके गुरु ही उनके परवर हैं। गुरु से ही वह शिक्षा पाते है।

किन्नर कहलाना किसी मर्द को अच्छा नहीं लगता, वह शब्द पिघला शीशा सा कानों में उतरना है और किन्नर को हिजड़ा कहने से उन्हें गाली लगती क्योंकि यह अपमान करने वाला शब्द है, पर कहीं अंतस तक उसके मन में कचोट जरूर होती है। आखिर ईश्वर ने उसके साथ अन्याय क्यों किया? क्यों हम उन्हें अपने से दूर सामाजिक दायरे से बाहर हाशिए पर रखते चले आ रहे हैं, उनके प्रति हमारी सोच में अश्लीलता का चश्मा क्यों चढ़ा रहता है, किसी हत्यारोपी के साथ बेहिचक घूमने, टहलने या उसे अपने ड्राईंग रूम में बैठकर उसके साथ जलपान करने से हम नहीं हिचकते हैं, फिर किन्नर तो ऐसा कोई काम नहीं करता, जो कि एक हत्यारोपी करता है तो हम किन्नरों से क्यों हिचकते हैं। वे हमारी तरह अपनी माँ की कोख से जन्मे अपने पिता की संतान हैं। वे ज्यादा नहीं माँग रहे हैं। 'हमें किन्नर नहीं, इंसान समझा जाए। बस इतनी से माँग है।'

स्त्री पुरुष की संरचना प्रकृति प्रदत्त है। जैविक आधार ने स्त्री-पुरुष और तृतीय लिंगी को शारीरिक-मानसिक भिन्नता प्रदान की है। मानव समाज में

परस्पर भिन्न लिंगी मनुष्य एक-दूसरे के पूरक और सहयोगी रहे हैं, किन्तु मानव सभ्यता के विकास से ही लिंग भेद के कारण दमन, अन्याय, शोषण और असमानता का लंबा इतिहास भी है, विशेषकर तृतीय लिंगी समुदायों को एक समान नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। उन्हें समाज या परिवार से वंचित नहीं रहना पड़ता है, क्योंकि सार्वजनिक और सरकारी कार्यों में उन्हें दोयम दर्जे से नहीं देखा जाता। पुरुष सत्तात्मक भारतीय समाज में लिंगविहीन लोगों को बहिष्कृत किया जाता है तथा उसके साथ मनुष्य कि तरह व्यवहार भी नहीं किया जाता, बल्कि उन्हें क्रूरता, मर्मात्मक पीड़ा और दर्दनाक स्थितियों का सामन करना पड़ता है। नयी सदी की कहानियों में तृतीय लिंगी समुदाय का ध्यान आकर्षक होना तथा उनकी अस्मिता को उद्घाटित करना नए यथार्थ की शरुआत है। हम भी इंसान है किन्नरों पर आधारित कहानियों का विशिष्ट संग्रह है। किन्नर समुदाय का परंपरागत पेशा अपनाना उनकी विवशता है। उनके पास शिक्षा के साधन नहीं है और न रोजगार प्राप्त करने के अवसर मिल पाते हैं। उन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित रखा जाता था। अपमान और अलिंगी देह को लेकर उनका संघर्ष जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता है। उन्हें स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार ही नहीं है बचपन में जब उन्हें किन्नर होने का पता चल जाता है तब उन्हें किन्नर समुदाय में भेजा जाता है। सबसे बड़ा गुन्हा उनके साथ होता है। इस प्रकार का भेद भाव पशु-प्राणियों में नहीं है, मनुष्य एक घातक प्राणी है, मौका देखकर वार करता है किसी को ऊपर उठने नहीं देता बल्कि और नीचे दफनाने की कौशिश करता है। अपने ही अपनों के द्वारा घिराये जाते है। किसी के प्रति कोई संवेदना नहीं है। हम किसी के दुख का सहारा नहीं बनते बल्कि किसी के दुख को और कैसे बढ़ाया जाए बस इसी का मौका हम तलाशते रहते है। हर किसी को अपने हिसाब से जीने का अधिकार है किसी का दूसरों पर कोई अधिकार नहीं है, लेकिन अपने अहं के कारण हम दूसरों पर वर्चस्व करते है। अपना अधिकार जताते है। आज हम फॉर्म भरते है उसमें स्त्री, पुरुष तथा अन्य ऐसे लिखा होता है हमने अन्य में उन्हें जगह दी लेकिन हमने अपने साथ स्वीकार नहीं किया।

'किन्नर' शब्द को पढ़ा जाए तो मुश्किल से एक या दो सेकंड लगेंगे और समझने की कोशिश की जाए तो पंद्रह-बीस मिनट में कोई जानकार यह आसानी से समझा देगा कि किन्नर कौन होते हैं? वही किन्नर जिन्हें हम हिजड़ा या छक्का कहते है। मगर शायद ही हम इस दर्द को जानते हो। इसी दर्द को किन्नर को अपने सीने में दबाकर आम लोगों के सामने हथेली पीटने हुए नाचते

हैं, दूसरों का मनोरंजन करते है। दूसरों को आशीर्वाद देते है और उसके बदले अपने हिस्से में दर्द दुख बटोरते है। लोगों से नफरत प्रताड़ना सुनते है लेकिन चेहरे पर हमेशा हँसी होती है। दो वक्त की रोटी के लिए ठुमका लगाते और ताली पीटते। समाज से बहिष्कृत कर दिया गया, अपना एक ही धर्म मान लिया गया नाचना, गाना, ताली पीटना।

'नाला सोपारा' उपन्यास के माध्यम से हिजड़ों के जीवन से संबन्धित व्यक्तिगत एवं सामाजिक सरोकारों को पाठक के सामने परत खोलते हुए प्रस्तुत करने का प्रयास हैं। इस उपन्यास के लेखन के संदर्भ में चित्रा मुद्गल कहती हैं- ''लंबे समय से मेरे मन में पीड़ा थी। एक छटपटाहट थी, आखिर क्यों हमारे इस अहम हिस्से को अलग-थलग किया जा रहा है। हमारे बच्चों को क्यों हमसे दूर किया जा रहा है। आजादी से लेकर अभी तक कई रूढ़ियाँ टूटी लेकिन किन्नरों के जिंदगी में कोई बदलाव नहीं आया। उपन्यास एक बड़ा प्रश्न उठता है कि लिंग-पूजक समाज लिंगविहीनों को कैसे बर्दाश्त करेगा? उपन्यास इस प्रश्न पर गंभीरता से सोचने को विवश करता है कि आखिर एक मनुष्य को सिर्फ इसलिए समाज बहिष्कृत क्यों होना पड़े कि वह लिंग दोषी है?''

समाज में मनुष्यता आज हाशिये पर है और हाशियाकरण की यह प्रक्रिया लंबे समय से मानवाधिकारों के हनन के रूप में सामने आती है। गुलाम मंडी उपन्यास में समाज ऐसा है जिसे अक्सर हम देखना पसंद नहीं करते। परंतु क्या यह समस्या का समाधान है क्या कबूतर के आँख बंद कर लेने से बिल्ली उसे नहीं खाएगी। उसी तरह हमारा आँखों को बंद कर लेना भर मानव तस्करी, यौन शोषण और यौन कर्मियों की समस्या का समाधान नहीं होगा। अक्सर लड़कियां इसमें फँसने के बाद बाहर आने का प्रयास नहीं करती और करती भी है तो इस डर से आगे नहीं आती, कि समाज उन्हें स्वीकार नहीं करेगा। उपन्यास में जानकी के माध्यम से लेखिका इस समस्या पर रोशनी डालती हैं और समाज की मानसिकता में बदलाव की बात करती है ताकि यह लड़कियां वापस आ सके और सम्मानपूर्वक जीवन जी सके। 1974 में जे. बी लेखिका उस व्यक्ति से मिली और उन्होंने अपने जीवन की व्यथा बताई लूले, लंगड़े बहरे होते है उन्हें घर से कोई बाहर नहीं निकालता लेकिन किन्नर जब लिंग से विकलांग पैदा होते ही उन्हें घर से बाहर निकाल दिया जाता है बिना कोई दोष के। किन्नर समाज के लोग अपनी अलिंगी देह को लेकर जन्म से मृत्यु तक अपमानित, तिरस्कृत और संघर्षमयी जीवन व्यतीत करते है तथा आजीवन अपनी अस्मिता की तलाश में ठोकरे खाते हैं। असीम यातनाओं की सजा उन्हें क्यों दी जाती है। यह लोग

परिवार और समाज के साथ नहीं रह सकते इनके लिए शिक्षा, स्वास्थ सेवाओं और सार्वजनिक स्थानों पर पहुँच प्रतिबंधित है। अभी तक उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में प्रभावी ढंग से भाग लेने से बाहर रखा गया है। राजनीति और निर्णय लेने की प्रक्रिया उनकी पहुँच से बाहर है। 2014 में एक ऐतिहासिक फैसले में सर्वोच न्यायालय में उन्हें अधिकार देने कि बात कही, लेकिन कहा उन्हें उनका अधिकार मिला। शरीर एक पुरुष का, भावनाएँ एक नारी की अपनी असल पहचान स्थापित करने के लिए सहसपूर्ण संघर्ष की अद्भुत जीवन यात्रा जो 23 सितंबर, 1964 में शुरू होती है। जब दो बेटियों के बाद चितरंजन बंद्योपाध्याय के घर बेटा पैदा हुआ। बेटे सोमनाथ के जन्म के साथ ही पिता के भाग्य ने बेहतरी की ओर तेजी से ऐसा कदम बढ़ाया की लोग हँसते हुए कहते कि अक्सर बेटियाँ पिता के लिए सौभाग्य लाती हैं, लेकिन इस बार तो बेटा किस्मत वाला साबित हुआ। वे कहते हे चित्त! यह पुत्र तो देवी लक्ष्मी है। सोमनाथ जैसे-जैसे बड़ा होता गया उसमें लड़कियों जैसे हरकते, भावनाएँ पैदा होने लगी और लाख कोशिश करने के बाद दबा नहीं सकीं। बिना माता-पिता को बताए घर से बाहर निकल पड़ी। बेशक, भारत में कानूनन तौर पर थर्ड जेंडर को मान्यता मिल गयी हो मगर भारतीय समाज ने अभी भी तीसरे लिंग वर्ग को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया है। आज भी समाज में तिरस्कार, हिन भावना और अपमान की नजरों से देखा जाता है। देश की पहली ट्रान्सजेंडर महिला प्रिन्सिपल बनी जिन्होंने विपरीत सामाजिक परिस्थितियों में अपने संघर्ष के बूते पर मुकाम हासिल किया। वर्तमान में मनोबी पश्चिम बंगाल के कृष्ण महिला कहलेज में बतौर प्रिन्सिपल कार्यरत है। 5–6 साल की उम्र में लड़कियों के कपड़े पहनना अच्छा लगता था। वह कपड़े पहनने से माँ डाँटती लेकिन वह कपड़े पहनकर तृप्त सी हो जाती। जब स्कूल में पढ़ती थी तब तो उनसे कोई दोस्ती नहीं करता था यदि स्कूल नहीं जाती तो बीते दिन की पढ़ाई के बारे में नहीं बताता। ग्रेजुएशन में दाखिला लेने पर भी मजाक बनाया गया। 1995 में उन्होंने पढ़ाना शुरू किया। बच्चों ने नहीं सताया उतना अन्य शिक्षकों ने उन्हें दुख दिया। ट्रांसजेंडरों के लिए पहली पत्रिका निकली थी 'ओब-मानब' जिसका हिन्दी में अर्थ है 'उप-मानव'। 2003 साल में उन्होंने सेक्स बदल दिया। 2006 में पीएच.डी. की। तिरस्कार का घूंट पल-पल पिती रही। उनकी मदद कोई नहीं करता। उन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर से बहुत कुछ सीखा है। ट्रांसजेंडर सामाजिक भेदभाव के कारण पढ़ाई से दूर हो जाते है और पूरी जिंदगी नाचकर ही गुजारा करते है। लेकिन कभी भी जीवन में हार नहीं मानी एक बच्चे को गोद लिया 'देबाशीश'

नाम है। उन्हें जीवन दिया एक माँ को बच्चा मिला और एक बच्चे को उसकी माँ। अपना जीवन एक कैद की तरह जीने के लिए मजबूर है। रोज आँसू के घूंट पीते है। क्या क्या नाम नहीं दिया उन्हें कोई कहता हिजड़ा, किन्नर छक्का, थर्ड जेंडर, आदि।

"अधूरी देह क्यों मुझको बनाया
बता ईश्वर तुझे ये क्या सुहाया
किसी का प्यार हूँ न वास्ता हूँ
न तो मंजिल हूँ मैं न रास्ता हूँ
अनुभव पूर्णता का न हो पाया
अजब खेल यह रह-रह धूप छाया" [3]

हिजड़ों की न आवाज है, न नाम है ना परिवार, इतिहास, प्यार, सोच, ना खुशी, ना गम, ना हक ना व्यक्तित्व। किन्नर अदृश्य है न केवल हमारे मुख्यधारा के समाज में बल्कि समाज के मन-मस्तिष्क के भीतर भी।

जीवन में मनुष्य आदमी बनकर जन्म लेता है इसमें स्त्री और पुरुष दोनों आते है लेकिन मनुष्य के कर्म चाहे वह अच्छाई हो या बुराई लेकिन अपने कर्मों से मनुष्य से इंसान बनते है और यही से इंसानियत शुरू होती है। एक स्त्री को हमेशा से उपेक्षित किया गया है और हम आधुनिक समाज में इस बात को भले बदलने की कोशिश करे अगर हम ऐसा सोचते है तो हम गलत है। कुछ समाज में ऐसे भी लोग है जिनकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया वह है 'किन्नर समाज'। देवता को भी जन्म लेने के लिए स्त्री का गर्भ चाहिए ईश्वर भी स्त्री का ऋणी होता है, लेकिन हम स्त्री के अस्तित्व को बार-बार भूलते है क्यों? यह प्रश्न पूरे मानव समाज से है।

किन्नर नाम सुनते ही लोग हँसते हैं, मुँह फेरते हैं देखकर भागते हैं, उन्हें अपशब्द कहते है... लेकिन हम यह क्यों भूल जाते है कि यह हमारे ही तरह साधारण इंसान है उन्हें भी जीने का और एक सम्मान का अधिकार है, लेकिन सम्मान की तो बात दूर हम आज भी उन्हें मनुष्य के रूप में अपना नहीं सके हम दूसरे ग्रह से कोई अजनबी की तरह बुरी नजर से देखते है। लेकिन हम बार-बार क्यों भूल जाते है हम किसी को सुख दे नहीं सकते तो दुख देने का भी हमे अधिकार नहीं है किसी को अच्छे शब्द बोल नहीं सकते तो बुरा भी बोलने का हमें अधिकार नहीं है। जानवर स्वावलंबी होते है लेकिन मनुष्य ऐसा प्राणी है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक परस्वावलंबी होता है, लेकिन फिर भी अपने आप को महान समझते है। अक्सर हम कहते है इस संसार की रचना

ईश्वर ने की है हम ईश्वर के संतान है लेकिन हम ईश्वर की रचना पर संदेश कर रहे है। हमने अपने बच्चियों को मार दिया कूडे दान में फेक दिया भ्रूण हत्या की। लेकिन उन्होंने बच्चियों को कूड़ेदान से उठाकर उन्हें सुरक्षा प्रदान की। उन्हें पनाह दी उन्हें पढ़ाया, लिखाया समाज में रहने के काबिल बनाया। अपने पराए हो गए लेकिन अजनबी ने उन्हें नाम दिया। सिर्फ जन्म देने वाली माँ नहीं होती। पुरुष को भी उतना ही अधिकार है वह भी बच्चों को पाल सकते है।

हम शादी, बच्चे के जन्म पर उन्हें घर बुलाते है, क्योंकि वह आशीर्वाद देते है नाचते है लेकिन इनका जन्म सिर्फ इसी लिए हुआ है। यहाँ तक भीख माँगने के मार्ग तक पहुंचा दिया क्यों हम भील जाते है ऊँठा जन्म सिर्फ इसी के लिए नहीं हुआ। उन्हें भी स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार है। कोई उन्हें नौकरी घर नहीं देता, अपना घर परिवार होते हुए भी अपने उन्हें नहीं अपनाते। कोई किराए का घर भी नहीं देता झोपड़ियों में रहने के लिए विवश है। स्टेशन, घर-घर रास्ते पर भिख माँगते है लेकिन, लोग वहाँ पर भी धिक्कारते है। डरते कहते है ''ताई मला बघून तुम्ही नाराज तर झाले नहीं नाआ'' और लोग भागते है गालियाँ देते है मुह पर दरवाजा बंद करते हैं। हमारे समाज में रहने वाले भाई, पिता, चाचा, मामा उनके पास जाते है लेकिन 'sex worker' का ठप्पा उन पर क्यों ? वह अभिशप्त जीवन जीने के पीछे जिम्मेदार कौन है ?

किसी भी तरह का आवेदन फार्म भरते समय एक कह्लम आता है जेंडर यानि लिंग का, जिसमें विकल्प होता है महिला, पुरुष और अन्य। 'अन्य' के रूप में जगह मिल गयी लेकिन समाज में उन्हें जगह नहीं मिली। किन्नरों की यह शोचनीय स्थिति, आधुनिकता, समानता और मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता का दम भरने वाले समाज के मुँह पर जोरदार तमाचा है। भले हम आज अपने आप को मह्डर्न आधुनिक कहे लेकिन सोच विचारों से हम आज भी पिछड़े है। कोई खिलाड़ी जब गेंद को बेट से हिट करता तब सब छक्का मारा कहते है लेकिन इस बात को सकारात्मकता से देखते है लेकिन हमे छक्का यह शब्द गाली की तरह नकारात्मक दृष्टि से क्यों देखा जाता हैं। मनोबी ने बचपन में यह प्रश्न अपनी माँ से पूछा था, तब माँ ने उत्तर दिया था उनका बह्ल बाउंड्री से बाहर जाना सकारात्मक है लेकिन यह शब्द तुम्हारे लिए mainstream boundary से बाहर कर दिया जाना हैं। उनके साथ कितने शोषण होते है लेकिन कोई उनके दुख को नहीं समझता। अपने जीवन को अभिशाप की तरह जीने के लिए मजबूर है। दर-दर भटकने के लिए मजबूर है। हम अपने देह को लेकर बहुत इतराते है लेकिन समझ, संवेदना, दुखकातरता नहीं है। हमने अपने बेटियों जन्म के बात

कूड़ेदान में फेंक दिया। वही वे लोग बच्चे को पाने के लिए तरसते है। उन्हें घर, परिवार देते है, प्यार देते है नयी जिंदगी देते है शिक्षा देते है। शुभ अवसर पर उनकी जरूरत होती है, उनका आशीर्वाद हमारे लिए मूल्यवान है लेकिन वह नहीं। अगर देखा जाए तो बुराई उनमें नहीं हममें है, हमारे दृष्टिकोण विचारों में है। हमने उनके प्रति हमारे मस्तिष्क में गलत विचारधारा बनाई है।

किन्नरों ने दिया शाप लगता है ऐसे लोग कहते है लेकिन यह सही है जिनको हमने जन्म से दुख दिया दुखी आत्मा के हृदय से निकला शाप तो जरूर लगेगा। वह एक दुखी आत्मा है। ईश्वर के रूप में अर्धनारीश्वर शिव को हम पूजते हैं, लेकिन उनको नहीं अपनाते। जितनी प्रताड़ना उनको पहले नहीं हुई उतना दुख हम आज उन्हें दे रहे है। कोई ठीक से नहीं बोलता, साथ में कोई नहीं बैठता जब किसी आम व्यक्ति के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है तब कितना बुरा लगता है। किसी ने कुछ कहा हम सहन नहीं कर सकते फिर वह तो दिन-रात लोगों की नफरत सहते है। उनकी शव यात्रा रात में निकलती है ताकि किसी भी मनुष्य की नजर उन पर ना पड़े अन्यथा अगले जनम में फिर से किन्नर का जन्म होता है। मृत्यु के समय उन्हें चप्पल से मारा जाता है। अपने जीवन में वे कितना दर्द सहते है। मृत्यु के बाद भी। कितने होशियार होते है कितनी कलाएं उन्हें आती है वे गाते है नाचते है और भी कई चिजे उन्हें आती है लेकिन हमने उन्हें सामने आने का कभी मौका ही नहीं दिया।

कोई भाड़े का घर भी नहीं देते आज हमने झुग्गी बस्ती में रहने के लिए विवश कर दिया है। पैसे माँगने पर लोग कहते है पैसे नहीं कमा सकता भिख माँगने की आदत पद चुकी है लेकिन इस बात पर विचार किया जाए तो मुफ्तखोरी भी हमीने उन्हें सिखायी हैं। अगर कोई काम, नौकरी घर परिवार नहीं रहा तो कोई व्यक्ति क्या करेगा... जो दूसरों को आशीर्वाद देते हैं, उन्हें आशीष देते हैं, उनकी झोली भर देते हैं... लेकिन उनके दुख को कोई नहीं समझता। कितना बुरी तरह सुलूक किया जाता है। हमने उन्हें मरने की कगार पर पहुँचा दिया है। उनके आँसू किसी को नहीं दिख रहे कि वह किस परिस्थिति से गुजर रहे हैं।

संदर्भ :

1. http://hi-m-wikipedia-org/wiki/किन्नर
2. पुरुष तन में फंसा मेरा नारि मन, – मनोबि बंदोपाद्याय, राजपाल एंड सन्ज, 2018
3. थर्डजेंडर विमर्श : संपादक शरद सिंह, सामयिक प्रकाशन, 2019
4. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं नलसोपारा, सामयिक पपेरबॉक्स, 2017

–ई.डब्ल्यू.एस 247, हाउसिंग बोर्ड रुंमदामोल, दवर्लिम सालसेत (गोवा) –403707

शोध–लेख

भारत के निर्माण के आलोक में नई शिक्षा नीति

अमित कुमार पाण्डेय

प्रत्येक राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप, अपने नागरिकों के जिन गुणों, कौशलों और योग्यताओं को आवश्यक समझता है उसके अनुरूप शिक्षा व्यवस्था के संचालन हेतु नीतियों का निर्माण करता है। शिक्षा का स्वरूप क्या होगा? आदर्श क्या होंगे ? किन विषयों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होगी, जिससे कि वर्तमान की चुनौतियों एवं भविष्य की आकांक्षाओं पर खरा उतरने के साथ वैश्विक जगत से कंधे से कंधा मिलाकर उस देश के नागरिक चल सके इत्यादि सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विस्तार पूर्वक शिक्षा नीति में विचार किया जाता है। सरकारों की यह विशेष जिम्मेदारी है कि अपने नागरिकों को गुणवत्तायुक्त शिक्षा उपलब्ध कराएं, क्योंकि यह उनका मौलिक अधिकार है और इससे उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता है। शिक्षा की सर्व सुलभता एवं शैक्षिक अवसरों की समानता की संवैधानिक प्रतिबद्धता की भावना से ओतप्रोत शिक्षा नीति सरकार का वह नीतिगत दस्तावेज है, जिसके माध्यम से सरकार प्रजातांत्रिक मूल्यों का अपने नागरिकों में रोपण करते हुए, अपने अतीत की संस्कृति, परंपराओं, आकांक्षाओं को वर्तमान एवं भविष्य के मध्य सामंजस्य का प्रतिबिंबित स्वरूप प्रस्तुत करती है। यह राष्ट्र की आवश्यकताओं का सम्यक विवेचन होता है।

1959 तक भारत में कोई शिक्षा नीति नही थी। आजादी के उपरांत ही आचार्य विनोबा भावे ने प्रचलित शिक्षा पद्धति पर प्रश्नचिह्न उठाते हुए 1951 में हरिजन पत्रिका के लेख में कहा था कि, 'यदि पुरानी शिक्षा पद्धति अब भी आरंभ रहती है तो इसका अर्थ होगा कि कुछ भी परिवर्तित नहीं हुआ है। मात्र विदेशी शासन को हमने हटाया है।' कोठारी आयोग 1964–66 की अनुशंसा के आधार पर 1968 में प्रथम भारतीय शिक्षा नीति आई इसके बाद 1986 में दूसरी

और 1992 में इसमें कुछ संशोधन प्रस्तुत किया गया। 1986 के बाद 2020 में 34 वर्षों के अंतराल के बाद ढाई लाख ग्राम पंचायतों, 66100 ब्लॉक और 650 जिलों के साथ-साथ शिक्षाविदों, अध्यापकों, जनप्रतिनिधियों एवं छात्रों सहित आम जनमानस के सुझावों के पुंज के रूप में प्रस्तुत की गई है। इस शिक्षा नीति को चरणबद्ध ढंग के संपूर्ण देश में लागू किया जाना है, क्योंकि शिक्षा केंद्र व राज्य दोनों के अधिकार क्षेत्र में आता है। यह समवर्ती सूची का विषय है। इसके लगभग 75 प्रतिशत प्रावधान 2024 तक और शेष प्रावधान चरणबद्ध ढंग से 2035 तक लागू किए जाने हैं। शिक्षा मंत्रालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय करने और अब उसे पुनः शिक्षा मंत्रालय करने का फायदा तभी मिलेगा जब यह शिक्षा नीति भारतीय युवाओं को शिक्षा के समान अवसर, रोजगार के साधन उपलब्ध कराते हुए एक आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में अपना योगदान दे। जिससे अखिल विश्व में भारतीय मेधा-शक्ति का दबदबा कायम हो एवं भारत विश्व-गुरु की संज्ञा से विभूषित हो सके। शिक्षा नीति तभी सफल कहलायेगी जब यह भारत को और अधिक रचनात्मक, बुद्धिमान एवं प्रगतिशील तथा आत्मनिर्भर बनाये।

देश के प्रख्यात वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में गठित 9 सदस्यीय कमेटी द्वारा 31 मई, 2019 को सौंपी गई अनुशंसा के आधार पर घोषित यह नीति भारत लोकाचार में निहित, एक वैश्विक सर्वश्रेष्ठ शिक्षा प्रणाली के निर्माण की परिकल्पना करती है, जिसका लक्ष्य भारत को एक विज्ञान की महाशक्ति बनाना है। हम जानते हैं कि भारतीय शिक्षा प्रणाली दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली है जिसमें 1028 विश्वविद्यालय, 45000 कॉलेज, 14 लाख स्कूल तथा 33 करोड़ विद्यार्थी सम्मिलित हैं। अभी जीडीपी का 4.3 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जा रहा है इसे बढ़ाकर 6 प्रतिशत करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। नई शिक्षा नीति 2020 के महत्वपूर्ण स्तंभों को निम्नलिखित क्रम में समझने का प्रयास किया जा सकता है-

- **शैक्षिक संरचना :** प्रस्तावित शिक्षा नीति वर्तमान प्रचलित 10̣2 ढांचे के स्थान पर 5̣3̣3̣4 उम्र वर्ग क्रमशः 3–8, 8–11, 11–14 तथा 14–18 प्रतिमान प्रस्तुत कर रही है। 3 वर्ष आंगनवाड़ी के साथ पहली तथा दूसरी कक्षा को रखा गया है, इसके बाद कक्षा 3, 4, 5 अगले चरण में कक्षा 6, 7, 8 और अंतिम चरण में 9, 10, 11, 12।

- **मातृभाषा को प्रोत्साहन एवं शिक्षा का माध्यम मातृभाषा :** शिक्षा का माध्यम मातृभाषा का होना एक शुभ संकेत है और पांचवी तक की पढ़ाई मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा में होगी।
- **त्रिभाषा सूत्र :** त्रिभाषा सूत्र को भी लचीला बनाया जा रहा है। भाषा चुनने का अधिकार राज्यों को होगा इससे गैर हिंदी भाषी राज्यों को लाभ मिलने की संभावना है।
- **उच्च शिक्षा :** वर्तमान नामांकन 26.3 प्रतिशत को 2035 तक 50 प्रतिशत पहुंचाने के साथ-साथ 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यूजीसी, एआईसीटीई, भारतीय वास्तु कला परिषद, फार्मेसी परिषद तथा NCTE को एक नियामक आयोग के अंतर्गत लाया जाएगा। केवल चिकित्सा शिक्षा एवं विधि के लिए स्वतंत्र आयोग रहेगा। कालेजों को क्रेडिट स्वायत्तता देकर विश्वविद्यालयों की संबद्धता प्रक्रिया से 15 वर्ष में खत्म किया जाना है।
- **शोध कार्य :** एमफिल कोर्स को बंद करने के साथ शोध के इच्छुक छात्रों के लिए 4 वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम की शुरुआत की जा रही है (3 वर्षीय BA एवं 1 वर्ष MA)। इसके उपरांत वे सीधे शोध कर सकेंगे। जो नौकरी करना चाहे वे 3 वर्षीय बीए कर सकते हैं। एक शीर्ष निकाय की स्थापना की जा रही है जिसका नामकरण नेशनल रिसर्च फाउंडेशन छत्थ होगा।
- **बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों का ध्यान :** मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टम द्वारा किन्ही कारणों व पाठ्यक्रम पूरा न कर पाने वालों का ध्यान रखा जा रहा है। एक वर्ष के बाद सर्टिफिकेट, 2 वर्ष पूर्ण करने के उपरांत डिप्लोमा एवं तीन अथवा 4 वर्ष पूर्ण करने पर डिग्री मिलेगी। छात्र अपना वर्तमान कोर्स बदल कर दूसरा कोर्स भी चुन सकेंगे। पाठ्यक्रम को क्रेडिट के आधार पर रखा जाएगा।
- **रोजगार एवं कौशलपरक पाठ्यक्रम :** छठी कक्षा से ही वोकेशनल पाठ्यक्रम की शुरुआत की जा रही है। सामुदायिक सेवा, कला-शिल्प खेल, योग इत्यादि विषयों को पाठ्यक्रम में जोड़ा जा रहा है। कक्षा 6 से 8 तक के बच्चे 10 दिन बिना स्कूली बैग के विद्यालय जाएंगे। इन दिनों वे इंटर्नशिप पर कार्य की बारीकियां सीखेंगे जिसमें स्थानीय शिल्प

एवं उद्योगों की प्रमुखता होगी। स्थानीय कलाकारों को भी विद्यालय में बुलाया जाएगा।

- **बोर्ड परीक्षाओं पर लचीला रुख :** बोर्ड परीक्षाओं का स्वरूप बदला जा रहा है। कांसेप्ट और ज्ञान को महत्व दिया जाएगा। बोर्ड के भार को भी कर कम करने की बात कही जा रही है। वस्तुनिष्ठ और विषय आधारित परीक्षा ली जाएगी। रिपोर्ट कार्ड अब समग्र मूल्यांकन पर आधारित होगा।
- **अध्यापक शिक्षा :** शिक्षक बनने की योग्यता B.Ed. होगी और यह 4 वर्षीय पाठ्यक्रम होगा जो कक्षा 12 के उपरांत ही उपलब्ध होगा। शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण भी समय-समय पर उपलब्ध कराए जाएंगे, जिससे वह स्वयं में नवीनता ला सके। पाठ्यक्रम एवं पुस्तकों में भी बदलाव लाया जाएगा। प्रयास यह रहेगा कि प्राथमिक विद्यालयों से लेकर उच्च शिक्षा तक बेहतर अध्यापक तैयार किए जाएं।
- **शिक्षा में तकनीकी :** ऑनलाइन शिक्षा पर निर्भरता बढ़ाई जा रही है। NEP में ऑनलाइन टीचिंग, ऑनलाइन लर्निंग पर जोर दिया गया है। इस हेतु एमएचआरडी के अंतर्गत एक विंग की स्थापना की जाएगी।

उपर्युक्त सुधारों एवं प्रयोगों के अतिरिक्त कुछ अन्य सुधार भी प्रस्तावित किए गए हैं। कुल मिलाकर शिक्षा नीति की यह मंशा होगी कि शिक्षा सर्व सुलभ बने, इसमें गुणवत्ता, वहनीयता, जवाबदेही विकसित की जा सके। २१वीं सदी की आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने वाली यह शिक्षा नीति शिक्षा को और अधिक समग्र, लचीला, छात्र की निहित क्षमताओं को बाहर लाने वाली तथा भारत को सभ्य समाज में विकसित कर इसे वैश्विक महाशक्ति में बदलेगी। छात्रों में बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक समझ विकसित करने का लक्ष्य एक बेहतर प्रयोग सिद्ध हो सकता है। समान एवं समावेशी शिक्षा, लैंगिक समानता, छात्रवृत्ति, भारतीय भाषाओं में शिक्षा इत्यादि महत्वपूर्ण प्रस्ताव किए जा रहे हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि, संपूर्ण शिक्षा जगत को इसकी त्रुटियों पर ज्यादा ध्यान न देकर इसका स्वागत करना चाहिए। यदि किसी स्तर पर कोई समस्या आएगी तो व्यवहार में आने के उपरांत उसे दूर करने की संभावना निरंतर बनी हुई है। यह इस नीति का लचीलापन है। हमें उम्मीद है कि यह शिक्षा नीति गुणवत्ता युक्त एवं रोजगार की गारंटी युक्त शिक्षा उपलब्ध कराने के साथ-साथ समय की माँग के अनुरूप आम-जन की आकांक्षाओं पर

खरी उतरेगी इस से अमीर एवं गरीब के मध्य की खाई को पाटने में मदद मिल सकेगी और समाज का वंचित तबका भी शिक्षा के मुख्यधारा से जुड़ सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास (1000 से 1500ई) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
2. दामोदरन, के, भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, संस्करण 2001
3. डॉ. धर्मपाल, रमणीय वृक्ष
4. विद्यावाचस्पति, डॉ. आशापुरी, भारतीय मिथक कोष, नेशनल पब्लिशिंग नई दिल्ली
5. अखंड ज्योति, 1952 अंक

–शोध छात्र, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थ नगर (उ.प्र.)

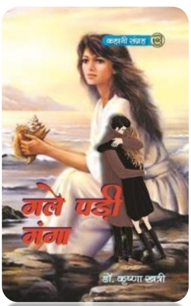

गले पड़ी गंगा

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-7-8

संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

विकास का आधार मानवाधिकार

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-93-90548-82-8

संस्करण : 2020, मूल्य : 225/-

लेख

मृत्युदंड

सलिल सरोज

मृत्युदंड का मतलब है कि एक अपराधी को फांसी की सजा, जिसमें अक्षम्य अपराध के लिए कानून की अदालत द्वारा दोषी ठहराया जाता है। कानून की उचित प्रक्रिया के बिना किए गए अतिरिक्त सजा से मृत्यु दंड को अलग किया जाना चाहिए। मृत्युदंड का उपयोग कभी-कभी 'कैपिटल पनिशमेंट' के साथ किया जाता है, हालांकि जुर्माना लगाने का हमेशा क्रियान्वयन नहीं होता है (भले ही इसे अपील पर बरकरार रखा जाता है), क्योंकि आजीवन कारावास की संभावना है। शब्द 'कैपिटल पनिशमेंट' सजा के सबसे गंभीर रूप के लिए है। यह वह सजा है जिसे मानवता के खिलाफ सबसे जघन्य, दुखद और घृणित अपराधों के लिए प्रयोग किया जाता है। जबकि इस तरह के अपराधों की परिभाषा और सीमा अलग-अलग होती है, देश-दर-देश मृत्युदंड का निहितार्थ हमेशा मौत की सजा रहा है। न्यायशास्त्र, अपराधशास्त्र और लिंगविज्ञान में सामान्य उपयोग से, मृत्युदंड का अर्थ मृत्यु की सजा है।

मृत्युदंड की प्रमाणिकता को एक प्राचीन समय से भी इंगित किया जा सकता है। दुनिया में व्यावहारिक रूप से ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ मृत्युदंड का अस्तित्व कभी नहीं रहा हो। मानव सभ्यता के इतिहास से पता चलता है कि समय की अवधि के दौरान मृत्युदंड को सजा के एक रूप के रूप में नहीं छोड़ा गया है। ड्रेको (7वीं शताब्दी ई.पू.) के कानूनों के तहत प्राचीन ग्रीस में हत्या, राजद्रोह, आगजनी और बलात्कार के लिए मृत्युदंड को व्यापक रूप से नियोजित किया गया था, हालांकि प्लेटो ने तर्क दिया कि इसका उपयोग केवल नपुंसक के लिए किया जाना चाहिए। रोमनों ने इसका इस्तेमाल कई प्रकार के अपराधों के लिए भी किया था, हालांकि नागरिकों को गणतंत्र के दौरान थोड़े समय के लिए छूट दी गई थी। ब्रिटिश भारत की विधान सभा में बहस की सावधानीपूर्वक जांच से पता चलता है कि 1931 तक विधानसभा में मृत्युदंड के बारे में कोई मुद्दा नहीं उठाया गया था, जब बिहार के सदस्यों में से एक, श्री गया प्रसाद सिंह ने मृत्यु की सजा को समाप्त करने के लिए एक विधेयक लाने की माँग की थी।

हालाँकि, तत्कालीन गृह मंत्री द्वारा प्रस्ताव का जवाब दिए जाने के बाद इस प्रस्ताव को नकार दिया गया था। स्वतंत्रता से पहले ब्रिटिश भारत में मृत्युदंड पर सरकार की नीति 1946 में तत्कालीन गृह मंत्री सर जह्न थोर्न द्वारा विधान सभा की बहसों में दो बार स्पष्ट रूप से कही गई थी। 'सरकार किसी भी प्रकार के अपराध के लिए मृत्युदंड को समाप्त करने में बुद्धिमानी नहीं समझती है, जिसके लिए वह सजा अब प्रदान की गई है।'

2014 के अंत में, 98 देश सभी अपराधों के लिए उन्मूलनवादी थे, 7 देश केवल सामान्य अपराधों के लिए उन्मूलनवादी थे, और 35 व्यवहार में उन्मूलनवादी थे, दुनिया में 140 देशों को कानून या व्यवहार में उन्मूलनवादी बना दिया गया। 58 देशों को अवधारणकर्ता माना जाता है, जिनके पास अभी भी उनके कानून की किताब पर मृत्युदंड है, और हाल के दिनों में इसका इस्तेमाल किया है। जबकि केवल अल्पसंख्यक देशों ने मृत्युदंड को बनाए रखा है और उनका उपयोग करते हैं, इस सूची में दुनिया के कुछ सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश शामिल हैं, जिनमें भारत, चीन, इंडोनेशिया और संयुक्त राज्य अमेरिका शामिल हैं, जिससे दुनिया की अधिकांश आबादी संभावित रूप से इस सजा के अधीन है। संयुक्त राष्ट्र महासभा के कई प्रस्तावों ने मृत्युदंड के इस्तेमाल पर रोक लगाने का आह्वान किया है। 2007 में, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने देशों को 'मृत्युदंड के उपयोग को उत्तरोत्तर प्रतिबंधित करने, उन अपराधों की संख्या को कम करने के लिए बुलाया, जिनके लिए यह लगाया जा सकता है' और 'मृत्युदंड को समाप्त करने की दृष्टि से फांसी पर स्थगन की स्थापना का भी प्रस्ताव रखा।' 2008 में, जेनेरल असेम्बली ने इस संकल्प की पुष्टि की, जिसे 2010, 2012 और 2014 में बाद के प्रस्तावों में प्रबलित किया गया। इन प्रस्तावों में से कई ने कहा कि, 'मौत की सजा के उपयोग पर रोक मानव सम्मान और मानव अधिकारों के संवर्द्धन और प्रगतिशील विकास में योगदान करती है।' 2014 में, 117 राज्यों ने सबसे हालिया प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया था। भारत ने इन प्रस्तावों के पक्ष में मतदान नहीं किया है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 सभी व्यक्तियों के लिए मौलिक अधिकार जीवन और स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है। यह कहता है कि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं होगा सिवाय कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के। इसका अर्थ कानूनी रूप से माना जाता है कि यदि कोई प्रक्रिया है, जो उचित और वैध है, तो कानून बनाकर राज्य किसी व्यक्ति को उसके जीवन से वंचित कर सकता है। हालांकि केंद्र सरकार ने लगातार यह

सुनिश्चित किया है कि यह कानून की किताबों में मृत्युदंड को एक निवारक के रूप में कार्य करेगा, और जो लोग समाज के लिए खतरा हैं, उनके लिए सर्वोच्च न्यायालय ने 'दुर्लभतम मामलों' में मृत्युदंड की संवैधानिक वैधता को भी बरकरार रखा है। जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1973) में, फिर राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1979), और अंत में बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) में सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्युदंड की संवैधानिक वैधता की पुष्टि की। इसने कहा कि यदि कानून में मृत्युदंड प्रदान किया जाता है और प्रक्रिया उचित, न्यायसंगत और उचित है, तो मौत की सजा एक दोषी को दी जा सकती है। हालांकि, यह केवल 'दुर्लभतम' मामलों में ही होगा, और अदालतों को एक व्यक्ति को फांसी पर भेजते समय 'विशेष कारणों' को प्रस्तुत करना चाहिए।

पिछले कुछ वर्षों में, सुप्रीम कोर्ट ने मृत्यु के मामलों में दी गई चुनौतियों की प्रतिक्रिया के रूप में 'पूर्ण जीवन' या उम्र की संख्या निर्धारित करने की सजा को समाप्त कर दिया है। स्वामी श्रद्धानंद मामले में तीन जजों की बेंच के फैसले के जरिए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि निम्नलिखित आदेशों में इस उभरते दंडात्मक विकल्प की नींव रखी गई है- मामले को थोड़ा अलग कोण से देखा जा सकता है। सजा के मुद्दे के दो पहलू हैं। एक तो सजा अत्यधिक हो सकता है और बहुत कठोर हो सकता है या यह बहुत ही अपर्याप्त रूप से कम हो सकता है। जब कोई अपीलकर्ता ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई मौत की सजा सुनाता है और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की जाती है, तो यह न्यायालय इस अपील को स्वीकार कर सकता है, क्योंकि यह मामला दुर्लभतम श्रेणी के सबसे कम मामलों में आता है और कुछ हद तक मौत की सजा के समर्थन में अनिच्छुकता महसूस कर सकता है। लेकिन एक ही समय में, अपराध की प्रकृति के संबंध में, अदालत को दृढ़ता से महसूस हो सकता है कि सामान्य रूप से 14 साल की अवधि के लिए छूट के लिए आजीवन कारावास की सजा स्थाई रूप से अपर्याप्त और अपर्याप्त होगी। फिर कोर्ट को क्या करना चाहिए ? यदि न्यायालय का विकल्प केवल दो दण्डों तक ही सीमित है, एक कारावास की सजा, सभी इरादों और उद्देश्यों के लिए, 14 वर्ष से अधिक नहीं और दूसरी मृत्यु के लिए, तो न्यायालय को प्रलोभन महसूस हो सकता है और खुद को मृत्युदंड का समर्थन करने में असमर्थ पाया जा सकता है। ऐसा कोर्स वास्तव में विनाशकारी होगा। इससे कहीं अधिक उचित विकल्पों का विस्तार करना और उस पर अधिकार करना होगा, जो कि वास्तव में, कानूनन तौर पर न्यायालय से संबंधित है यानी 14 वर्ष के कारावास और मृत्यु के बीच का विशाल अंतराल। इस बात पर जोर दिया जाना

चाहिए कि अदालत मुख्य रूप से विस्तारित विकल्प के लिए सहारा लेगी क्योंकि मामले के तथ्यों में, 14 साल की कारावास की सजा की सजा बिल्कुल नहीं होगी। इसके अलावा, एक विशेष श्रेणी की सजा की औपचारिकता, हालांकि बहुत कम संख्या में मामलों के लिए, कानून की किताब में मृत्युदंड होने का बहुत फायदा होगा, लेकिन वास्तव में जितना संभव हो उतना कम उपयोग करना चाहिए, विशेष रूप से दुर्लभतम मामलों में।

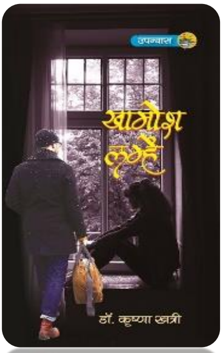

खामोश लम्हें

✍डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-944444-6-6

संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

अर्द्ध सत्य तुम!

✍डॉ. चुकी भूटिया (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-946859-4-4

संस्करण : 2021, मूल्य : 225/-

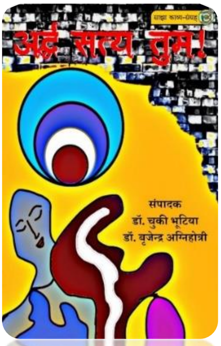

लेख

इक्कीसवीं सदी की स्त्री
भारतीयता की पोषक या विनाशक ?

डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता'

मातृ और पितृसत्ता के बीच पिसती हुई स्त्री २१वीं सदी तक पहुँच चुकी है जहाँ आधुनिकतावाद, स्वतंत्रता, स्वच्छंदता के साथ सभ्यता, संस्कृति और परम्परा का मुठभेड़ चल रहा है। पीढ़ियों के बीच जंग जारी है। ऐसा माना जा रहा है कि स्त्रियों की स्वच्छंदता और स्वतंत्रता भारतीय संस्कृति और सभ्यता का विनाशक है। इससे इतना तो साफ हो जाता है कि स्त्री ही सभ्यता और संस्कृति की पोशक है। अब बात यह है कि अबला कहलाने वाली स्त्री क्या सच में इतनी शक्तिशाली हो चुकी है कि अपनी वर्षों पुरानी संस्कृति को प्रभावित कर रही है? परंपरा तोड़ रही है और सभ्यता का विनाश कर रही है ? हमारी सभ्यता या संस्कृति क्या इतनी कमजोर है कि आसानी से इसका हनन किया जा सके ? इसके लिए हम पाश्चात्य सभ्यता को भी दोषी मानते हैं जिसका अनुकरण कर हम बर्बाद हो रहे हैं और समाज को नुकसान पहुँचा रहे हैं। क्या पाश्चात्य सभ्यता में इतनी शक्ति है जो हमारी सदियों पुरानी सभ्यता का विनाश कर सके ? आज की स्त्री क्या वाकई में स्वच्छंदता या स्वतंत्रता की सीमा तोड़ चुकी है जिससे समाज लज्जित हो रहा है? स्त्रियों की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए एक नजर प्राचीन काल में डालकर देखते हैं और पता लगाते हैं कि आज की स्त्री उनसे कितनी अलग है।

पीछे मुड़कर देखने पर वैदिक और पौराणिक काल की मातृसत्तात्मक शासन व्यवस्था नजर आती है जिसमें घर की मुखिया स्त्री होती थी। वह पूर्ण आत्मनिर्भर सम्पूर्ण कुटुम्ब का भरण पोषण करने का अधिकार रखती थी। 'वर' जिसे पति कहते हैं ये शब्द ही स्त्री की स्वायत्तता सिद्ध करने के लिए काफी है। 'वर' शब्द का अर्थ 'चुना गया' और चुनने वाला होता है पर संस्कृत भाषा में

इसका स्त्रीलिंग नहीं है। अतः यह साफ है कि यह शब्द लड़कों के लिए ही प्रयोग में लाया जाता था। लड़की के लिए स्वयंवरा या पतिंवरा शब्द है। स्त्री अपना पति चुनकर उसे अपनी इच्छानुसार अपने पास रख सकती थी। स्वतंत्रता की बात करें तो उस युग में भी पुत्री के गुणों को देखते हुए सुवर्चला और सावित्री के पिता ने उन्हें स्वयं वर चयन करने की अनुमति दी और श्वेतकेतु एवं सत्यवान से विवाह करने दिया। परंतु आज की बात करें और नजर दौड़ा कर देखें तो आज के तथाकथित अत्याधुनिक युग में भी सत्तर प्रतिशत ऐसे पिता हैं जो विवाह के लिए पुत्री को स्वतंत्रता देना तो दूर उनकी मर्जी तक नहीं पूछते। उसकी इच्छा को लोक-लाज और इज्जत की वेदी में दफन कर दिया जाता है।

ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में स्त्रियों का उल्लेख ऋषि के रूप में किया गया है। ऋषि वह स्त्री कहलाती थी जो मंत्रों से पूर्णतः रूबरू हो और अपनी सक्रियता से समाज में सार्थक हस्तक्षेप करने के लिए स्वतंत्र हो। लोपामुद्रा, अपाला तथा घोषा को महिला ऋषि माना गया है। ऋग्वेद में मंत्रों की रचनाकार कवि के रूप में इनका उल्लेख किया गया है। इसके पंचम मंडल में आत्रेय ऋषियों के मंत्र के साथ अपाला तथा विश्वारा के मंत्र भी समाहृत हैं। इन महिला ऋषियों ने अपनी रचनाशीलता के बल पर न सिर्फ ऋषि की मान्यता हासिल कीं बल्कि ब्रह्मवादिनी भी हुईं। ब्रह्मवादिनी उन बुद्धिजीवी महिला को कहा जाता था जो वाद विवाद में खुली बहस कर सके, शास्त्रों की रचना कर सके और धर्मोपदेश दे सके। कौषीतकि ब्राह्मण में बताया गया है कि वेद में पारंगत स्त्रियों को 'पथ्यस्वस्ति वाक्' की उपाधि से सम्मानित किया जाता था। उत्तर-वैदिक काल में भी स्त्रियाँ पूर्ण स्वतंत्र और अपनी इच्छानुसार जीवन शैली जीने वाली हुई हैं। काशकृत्स्ना मीमाँसा दर्शन की आचार्य थीं। उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी और सुवर्चला आदि महिलाओं का जिक्र है जिन्होंने अपनी जीवनशैली स्वयं चुना था। ब्रह्मवादिनी गार्गी उस समय के बुद्धिजीवियों के बीच अकेली याज्ञवल्क्य के साथ बहस कर उनके ब्रह्मज्ञान को चुनौती दी। मैत्रेयी ने घर-बार और अटूट संपदा को त्याग कर याज्ञवल्क्य के साथ जाने का निर्णय लिया था और कात्यायनी अपने पति को छोड़ उसी घर-बार और ऐश्वर्य में रमने का फैसला किया। यज्ञों में पत्नी की सहभागिता अनिवार्य थी और वैदिक सीतायज्ञ तथा रुद्रयज्ञ जैसे यज्ञों का अनुष्ठान मात्र स्त्रियाँ ही करती थीं। अपनी पुरोहित

वह स्वयं होती थीं और कर्मकांड भी स्वयं सम्पन्न करती थीं। ऋग्वेद की स्त्रियाँ स्वेच्छा से हथियार उठाकर युद्ध में शरीक होती रही हैं।

कैकेयी को चाहे कितना भी बदनाम कर लें पर सच्चाई यह है कि कैकेयी जैसी स्वाधीनता के मूल्य को सत्यापित करने वाली स्त्री अन्यत्र कम ही हुई हैं। वाल्मीकि के अनुसार दशरथ ने कैकेयी के साथ विवाह राज्यशुल्क देकर किया था, अर्थात् उन्होंने कैकेयी के पिता को वचन दिया था कि उनकी लड़की से यदि लड़का होगा तो अयोध्या का राजपद उसी को दिया जाएगा। परंतु दशरथ के मन में राम के प्रति मोह था और उन्होंने कैकेय राज को बहला कर राम को राज्याभिषेक के लिए तैयार कर लिया। कैकेयी से अपने पुत्र के प्रति यह अन्याय बर्दाश्त नहीं हुआ और उसने दिए गए वचन का प्रयोग कर पुत्र को राजा बनाया। इसे चालाकी या मौका परस्ती नहीं बल्कि दशरथ को दिया गया दंड मात्र कहा जाएगा जो उनके ऐतिहासिक भूल के लिए मिली। वाल्मीकि की कथा में अहिल्या कोई पत्थर नहीं बल्कि जीती जागती स्त्री है। अहिल्या को इन्द्र से प्रेम था जो पति गौतम से बर्दाश्त नहीं हुआ और उन्होंने अपनी पत्नी को त्याग दिया। पति द्वारा छोड़े जाने पर भी अहल्या वर्षों अकेली रही। सीता भी कोई अबला नहीं थी। वनगमन के वक्त राम से वाद-विवाद कर स्वयं वन गई और पति की पथगामिनी बन पत्नीधर्म का निर्वाह की। अपहरण के वक्त रावण से जूझीं और अशोक वाटिका में उसे अपने पास फटकने नहीं दी। यही नहीं रावणवध के उपरांत राम के कटाक्ष को चुपचाप सहन न कर उनसे वाद और संवाद किया तथा पति द्वारा त्यागे जाने पर अकेले पुत्रों का लालन पालन कर योद्धा बनाई। मिन्नतों के बावजूद राम को क्षमा न कर राम के साथ रहने के बजाय स्वयं को पृथ्वी के सुपुर्द कर दिया। तारा, मंदोदरी और द्रौपदी जैसी सशक्त एवं दृढ़-निश्चयी स्त्रियाँ अपने पतियों से वाद, विवाद और संवाद कर पति को सही राह दिखाने की कोशिश की हैं। द्रौपदी ने जुआ में हारे पति को अपनी बुद्धि वैभव से गुलामी से निजात दिलाया। अपने एक सवाल से महावीर भीष्म को निरुत्तर कर दिया। शकुन्तला ने दुष्यंत द्वारा स्वयं को भूले जाने पर उसके महल में जाकर खूब बहस किया और प्रण करके पुत्र को पिता का राज्य छीनने योग्य बनाया। मंदोदरी रावण को सीता को लौटा देने के लिए कहती है जो रावण नहीं मानता पर युद्ध में अपनी हार निकट देख वह संधि हेतु मंदोदरी से सलाह माँगता है। तब मंदोदरी उसे डपटती है और कहती है कि अब संधि

करके कोई फायदा नहीं यदि तुमसे यह नहीं होगा तो मैं तलवार उठाती हूँ। विपरीत परिस्थितियों में भी इन महिलाओं ने हिम्मत और दृढ़ निश्चयता का परिचय देने में विश्वास किया है न कि 'बिनती बहुत करों का स्वामी' की रट लगाती फिरी हैं। हमने इनकी स्त्री सुलभ सहनशीलता, धैर्य और कर्तव्यपारायणता के गुण को कमजोर बताकर अबला बनाया और सशक्त पक्ष को नजरंदाज कर दिया। खुले विचार, वाक्चातुर्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की बात करें तो इसमें भी ऋग्वैदिक स्त्रियाँ पीछे नहीं रही हैं। उस वक्त भी महिलायें शारीरिक आवश्यकताओं को सहज और उन्मुक्त भाव से अभिव्यक्त करती थीं। स्त्रियों का दैहिक संसर्ग की कामना प्रकट करना तब भी बुरा नहीं माना गया। इस संबंध में लोपामुद्रा का पति अगस्त्य के साथ संवाद उल्लेखनीय है जब वह बूढ़े पति से कहती है कि "काया बुढ़ा जाए, फिर भी एक पति को कामना करती हुई पत्नी के पास आना चाहिए। (ऋग्वेद के पहले मंडल का १७६वाँ सूक्त)"

जिस संस्कृति की हम बात करते हैं वह क्या ये नहीं है? आज कितनी स्त्रियाँ इनके बराबर पहुँच पाई हैं। आज भी अधिकतर स्त्रियाँ हर क्षेत्र में संघर्षरत हैं। अथक परिश्रम और व्यवस्था से संघर्ष कर जिसने विशेष मोकाम हासिल किया है उनपर तंज कसे जाते हैं। उनके रहन-सहन, बात-विचार पहनावा-ओढ़ावा यहाँ तक कि उसके सोच को भी कलुषित मानकर संस्कृति की दुहाई दी जाती है। स्त्रियों के लिए स्वाधीनता का गलत फायदा उठाने की बात की जाती है। विकृत मानसिकता को जन्म देने के लिए भी महिलाओं के स्वच्छंद सोच को जिम्मेदार माना जाता है। यदि किसी ने बुरी नजर से देखा तो उसकी नजर में दोष नहीं बल्कि महिलाओं के परिधान में खराबी निकाली जाएगी। यदि स्त्री तलाक की शिकार होती है तो वह पत्नी धर्म के निर्वहन में असमर्थ है और यदि वह पति को त्यागती है तो चरित्रहीन कहलाती है। देह का व्यापार करती है तो वेश्या है और बलात्कार की शिकार होती है तो उसके उद्दाम और स्वच्छंद वर्ताव को दोषी माना जाता है।

सर्वगुणसम्पन्न स्त्री के व्यवहार और वर्चस्व को देखकर और अपना काम उसके वगैर न चलता देख मनु महाराज ने भी 'न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति' लिख कर पहले तो स्त्री को पराश्रित बनाया फिर बड़ी समझदारी से 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' कहकर उनकी, क्रोध, नाराजगी और विद्रोह से पुरुष जाति को बचा लिया। फिर पुरुषों ने स्त्री को वह स्त्री बनाया जो मात्र उसकी

सुख-सुविधा का ख्याल रख सके। प्रारम्भिक अवस्था में पारिवारिक अवधारणायें एवं आडम्बरों से रहित समाज को पितृसत्तात्मकता के साथ बंद एवं कट्टरता की नींव डाली और तथाकथित सुरक्षित समाज का नाम दिया। देवी का स्वरूप देकर पहले तो उसे भ्रमित किया गया और अच्छी भली स्त्री को मूर्ति के रूप में गढ़कर उसके गुणों और अधिकारों को पाषाण में जड़ दिया गया। उसकी प्राण प्रतिष्ठा इस तरह से की गई कि वह खुद ही समझ नहीं पाई कि उसके साथ जो हो रहा है वह सही है या गलत। स्त्रियों की रही सही ताकत इस्लामिक आक्रमणकारी एवं शासकों ने निचोड़ ली। न सिर्फ उनका शरीर बल्कि आत्मा को भी कालकोठरी में कैद कर रोशनी को उनके जीवन से सदा के लिए दूर कर दिया। देश, समाज और परिवार की इज्जत का बोझ उसपर लाद दिया गया और उसकी कोमलता का लाभ उठाते हुए उसे विवश किया गया कि यदि वह सिर उठाने की कोशिश करेगी तो उसका सिर शायद नहीं कटे परंतु समाज और परिवार का सिर लज्जा से सदा के लिए झुक जाएगा। स्त्री को दास बनाकर पुरुष मुखिया बना और उसे यह दासता गरिमापूर्ण लगे, इसके प्रति उसके मन में विद्रोह न हो इसलिए ममता, स्नेह, प्रेम, दायित्व, धर्म, कर्तव्य, शील आदि से उसे जोड़ दिया गया। शादी के लिए उम्र , शिक्षा और ज्ञान में पुरुष से स्त्री का कम होना अनिवार्य रखा गया ताकि उसपर शाषण करना आसान हो। सामाजिक, औपचारिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा देकर उसे स्त्री रूप में परिवर्तित किया गया तथा धर्म और कर्तव्य के दायरे में इस तरह कैद किया गया कि पुरुष और परिवार को खुश रखना ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया। शायद इसलिए कहा गया है कि स्त्री पैदा नहीं होती है उसे बनाया जाता है।

हमारे ग्रंथकार और धर्मशास्त्रज्ञों ने स्त्री को मात्र दोष की खान बताया। साहित्य हो या इतिहास उसे वह स्थान नहीं दिया जिसकी योग्यता वह रखती है। यहाँ तक कि स्त्रियों को शूद्र की श्रेणी में डाल दिया। महादेवी वर्मा जैसी साहित्यकार को वेद पढ़ने के लिए इलाहाबाद के वेद के गुरुजी इसलिए मना किया कि वह एक लड़की थी और लड़की वेद का अध्ययन नहीं कर सकती। लिहाजा उनका संस्कृत का अध्ययन जारी नहीं रह पाया। विश्पला और रुशमा जैसी योद्धा नारियों या अपाला और गार्गी जैसी वेदज्ञ स्त्रियों के देश में स्त्री को वेद पढ़ने का निषेध कितना उचित है? विद्वान एवं आलोचकों का पूर्वग्रहित दिमाग यह मानने के लिए तैयार नहीं होता कि वैचारिक, तर्कपूर्ण और निर्णायक मत

रखने की क्षमता स्त्रियाँ भी रखती हैं। बौद्धिक चर्चा तथा वाद विवाद में एक तो उन्हें शामिल नहीं किया जाता और अगर मजबूरन शामिल करना पड़े तो गृहसज्जा तक उनकी भूमिका को सीमित रखा जाता है। गृहनिर्माण में उनका उल्लेख नहीं किया जाता। लज्जा, धैर्य, सब्र, दया, माया, आदि गुण रखते हुए भी वीरता या पौरुषेय गुण जिनमें मर्द डींग मारे फिरता है और स्वयं को स्त्री से ऊपर रखता है उनमें भी ये पीछे नहीं रही है। चाँद सुल्तान, अहिल्याबाई, बैजाबाई, के साथ झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई जैसी स्त्रियाँ न सिर्फ रणबाँकुरी हुईं बल्कि राजनीति और नीति में भी अपनी योग्यता साबित की हैं। स्त्रियों को जब भी अवसर मिला है पुरुषों से बेहतर सिद्ध हुई हैं। पढ़ाई लिखाई हो या अन्य क्षेत्र कहीं भी वह पीछे नहीं है। इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि स्त्री धर्म और दया की मूर्ति होती है। वह धर्म की रक्षक भी है। हिंदू धर्म इन तथाकथित अबलाओं की दया पर ही टिकी हुई है। स्त्री की वास्तविक स्वरूप, उसका अस्तित्व, उसकी परंपरा, अतीत, स्मृति आदि से अवगत होना नई पीढ़ी का धर्म है। भूत से प्रेरणा लेकर भविष्य को सुधारा जा सकता है। इतिहास में भले ही स्त्रियों की शौर्य गाथा का बखान कम मिले पर पौराणिक स्त्रियाँ स्त्री की स्वाधीनता एवं स्वायत्तता का परिचय दिलाने के लिए काफी है।

हम जानते हैं कि जब भी अवसर मिला है विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ पुरुषों से बेहतर सिद्ध हुई हैं। वह अपनी ताकत और सूझ बूझ से घर और बाहर सभी दायित्यों का निर्वहन आसानी से कर सकती है जो पुरुषों के लिए कठिन है। शायद यही असुरक्षा का बोध पुरुषों का स्त्रियों को उचित अवसर प्रदान करने से रोकती है। छोटी इकाई हो या बड़ी संस्था, प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी स्त्रियों को मुखिया चुनने में आज भी पुरुष अहम् को धक्का लगता है। उनके अंदर काम करना उन्हें गँवारा नहीं होता। फलस्वरूप स्त्री वर्षों एक पद पर काम करती रहती है और उसके साथ काम करने वाले कहीं से कहीं पहुँच जाते हैं। उसके गुणों को सही दिशा देने के बजाय परंपरा, सभ्यता, संस्कृति, शील, अपमान आदि से जोड़कर उसकी प्रतिभा को ग्रहण लगा दिया जाता है। ऐसी कौन सी संस्कृति है जो अपने संवाहकों को परतंत्र बनाता हो। भारतीय संस्कृति का इतिहास तो ऐसा नहीं कहता।

हम जिन पाश्चात्य देशों से अपनी तुलना करते हैं और उनकी बुराई करते नहीं थकते उन देशों में समानता का यह हाल है कि स्त्री अपने प्रति दयादृ

ष्टि को बर्दाश्त नहीं कर सकती। कई यूरोपीय देशों में पुरुषों के द्वारा स्त्री के लिए बस, ट्रेन या किसी भी सार्वजनिक स्थल पर स्थान खाली करना उन्हें स्त्रीत्व की तौहीन लगती है। बराबरी में विशेषाधिकार को वे नहीं मानती। उन देशों में भी पहले स्त्रियों की हालत कोई बेहतर नहीं थी। काफी जद्दोजहद के बाद इन्होंने अपनी आजादी और समानता का अधिकार कमाया है। सभ्यता और संस्कृति की दुहाई देते हुए हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठीं। हमारे अंदर की हीनता हमें स्वयं को कमजोर और पाश्चात्य सभ्यता को बेहतर मानकर उनपर अपना दोष मढ़ना चाहती है। जबकि सच्चाई यह है हम उनसे कहीं बेहतर और उन्नत सभ्यता से जुड़े हुए हैं। पौराणिक स्त्रियाँ एवं भारतीय सोच उनसे कहीं आगे है। हमारी हीन भावना ने उन्नति के पथ में रोड़ा अटकाने का काम किया है। पाश्चात्य सभ्यता से तुलना कर हम स्वयं को कमजोर सिद्ध करते हैं। इतनी तरक्की के बाद भी भारत में कितनी महिलाएं प्राचीन स्त्रियों के बराबर खड़ी हो पाई हैं। आज स्त्री जमीन आसमान एक जरूर कर रही हैं परंतु नंबर अभी भी उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। सभ्यता और संस्कृति की दुहाई देकर स्त्री को कटघरे में खड़ा करना उनकी तरक्की में बाधा डालना है। भारतीय स्त्री को अन्य सभ्यता का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है। अपने पूर्वजों का अनुकरण कर ले उतना काफी है। स्त्री जननी है और जननी विनाशक नहीं हो सकती। भारतीय संस्कृति की आधार स्त्री है। संस्कृति के विनाश का जड़ इस आधार को कमजोर करना होगा न कि इसे सुदृढ़ करना। स्त्री आनुवंशिक रूप से संस्कृति की पोषक है न कि संहारक।

—93/सी वेंगलराव नगर, हैदराबाद — 500038

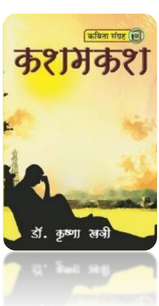

मधुराक्षर

कशमकश

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-8-5

संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

लेख

हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता और न्यू मीडिया

डॉ. शैलेश शुक्ला

भारत में पत्रकारिता की शुरुआत 1780 ई. में हुई। उस समय जेम्स ऑगस्टस हिक्की द्वारा प्रथम मुद्रित अंग्रेजी समाचार 'कलकत्ता जेनरल एडवरटाइजर (हिक्की गजट) प्रकाशित किया गया था। सन् 1780–1818 तक भारतीय पत्रकारिता पर केवल अंग्रेज ही छाए रहे। सभी पत्र अंग्रेजी में ही छपे। भारतीय भाषाओं में समाचार-पत्रों का इतिहास 1818 ई. से प्रारम्भ होता है। पहला भारतीय समचार-पत्र 1816 ई. में कलकत्ता में गंगाधर भट्टाचार्य द्वारा 'बंगाल गजट' नाम से निकाला गया। यह साप्ताहिक समाचार-पत्र था, परन्तु यह अंग्रेजी भाषा में छपता था। हिंदी का प्रथम समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' था। इसका प्रकाशन 30 मई, 1826 ई. में कलकत्ता से एक साप्ताहिक-पत्र के रूप में हुआ। इसका मुख्य उदेश्य भारतियों को जाग्रत करना तथा भारतियों के हितों की रक्षा करना था। इस प्रकार भारतेंदु के आगमन से पूर्व ही पत्रकारिता का आरम्भ हो चुका था। इस आधार पर 19वीं शताब्दी की हिंदी पत्रकारिता को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम उत्थान (1826–1867) : भारतेंदु के उदय से पूर्व पत्र-पत्रिकाओं के विकास का प्रथम दौर पूरा हो चुका था। भारतेंदु युग से पूर्व की पत्र-पत्रकाओं का सीधा सम्बन्ध जन-जागरण से होता था। उस समय जन-जागरण के केंद्र कलकत्ता था। हिंदी पत्रकारिकता का आरम्भ वहीं से हुआ। इस प्रथम उत्थान में ज्यादातर साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। इस काल की पत्र-पत्रिकाओं का उदेश्य जनता में जागरण तथा सुधार की भावना उत्पन्न करना था। साथ ही ये पत्रिकाएँ अपनी-अपनी सीमाओं में अन्याय का प्रतिकार भी कर रही थी। ये

पत्रिकाएँ दो या तीन भाषाओं में निकल रही थीं, जिनमें हिंदी भाषा, अपरिष्कृत और अपरिमार्जित थी।

द्वितीय उत्थान (1868–1885) : हिंदी पत्रकारिता के द्वितीय उत्थान में भारतेंदु हरिश्चंद्र का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने हिंदी भाषा के प्रत्येक अभाव को दूर करने का प्रयास किया। इस काल में काफी हद तक हिंदी भाषा का रूप स्थिर और परिमार्जित हुआ। जागरण सुधार की भावना के प्रसार हेतु गम्भीर लेख लिखे गए। शुद्ध साहित्यक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हुआ।

तृतीय उत्थान (1886–1900) : हिंदी पत्रकारिता के तृतीय उत्थान में 200 से अधिक छोटी-बड़ी हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। इनमें हिंदी भाषा की शक्ति और लोकप्रिय का बोध होने के साथ-साथ देशव्यापी जन-जागरण की सूचना भी मिलती है।

1900 ई. के पहले संचार करने के शुरुआती में चिठ्ठी सबसे पुरना जनसंचार है। जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हाथ से लिखे गए पत्राचार का उपयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में, पत्र डाक सेवा कह सकते है। 1792 ई. में, टेलीग्राफ का आविष्कार किया गया था। इसने संदेश को एक घोड़े से ज्यादा लंबी दूरी तक तेजी से पहुंचे जाते थे। यद्यपि टेलीग्राफ संदेश संक्षिप्त थे, वे समाचार और सूचना को व्यक्त करने का एक क्रांतिकारी तरीका थे। 1800 ई. के अंतिम दशक में दो महत्वपूर्ण खोजें हुईं- 1890 में टेलीफोन और 1891 में रेडियो। ये दोनों प्रौद्योगिकियां आज भी उपयोग में हैं। हालांकि आधुनिक समय में इसका उपयोग बहुत ज्यदा होने लगा था, टेलीफोन के आजने से लोगों को अपनी बात को दुसरे व्यक्ति तक पहुँचने में ज्यदा समय नहीं लगता था। रेडियो के अविष्कार से मानव जाति को बहुत लाभ हुआ। रेडियो से समाचार, मनोरंजन का एक साधन प्राप्त हुआ। 20वीं शताब्दी में प्रौद्योगिकी बहुत तेजी से बदलने लगी। 1940 ई. के दशक में पहले सुपर कंप्यूटर बनाए जाने के बाद, वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने उन कंप्यूटरों के बीच नेटवर्क बनाने के तरीके विकसित करना शुरू किया। यह बाद में इंटरनेट के जन्म का कारण बना। इंटरनेट के शुरुआती 1960 ई. के दशक में विकसित किया गया था। ईमेल के आदिम रूप भी इस दौरान विकसित किए गए। 70 के दशक तक, नेटवर्किंग प्रौद्योगिकी में सुधार हुआ। 1979 ई. के यूजनेट ने उपयोगकर्ताओं को एक आभासी समाचार पत्र के माध्यम से संवाद करने की अनुमति दी। १९९९ ई. में पहली बार ब्लॉगिंग साइटें

लोकप्रिय हो गईं, जिससे सोशल मीडिया सनसनी बन गई जो आज भी लोकप्रिय हैं। ब्लॉगिंग के आविष्कार के बाद, सोशल मीडिया ने लोकप्रियता में विस्फोट करना शुरू कर दिया।

2001 में सिक्स अपार्ट ने मूवेबल टाइप लान्च किया, जिसमें ब्लॉगिंग बहुत आसान और पहले से बहुत सक्षम हो गयी। छोटी–बड़े सभी संस्थान ब्लॉगिंग की अहमियत समझने लगे। 2003 में वर्ल्ड प्रेस के आने से ब्लॉग की तस्वीर ही बदल गयी। इन दोनों के आने से ब्लॉग्गिंग और लोकप्रिय हो गयी। फोटोबुकेट और फ्लिकर जैसी साइटों ने ऑनलाइन इंटरनेट शेयरिंग की सुविधा प्रदान की। YouTube 2005 में सामने आया, जिससे लोगों के बीच संवाद करने और एक दूसरे के साथ साझा करने के लिए पूरी तरह से नया रास्ता बना। 2006 तक, फेसबुक और ट्विटर दोनों दुनिया भर में उपयोगकर्ताओं के लिए उपलब्ध हो गए। ये साइटें इंटरनेट पर सबसे लोकप्रिय सामाजिक नेटवर्क में से हैं। Tumblr, Spotify, Foursquare और Pinterest जैसी अन्य साइटें विशिष्ट सामाजिक नेटवर्किंग को भरने के लिए पॉपअप करने लगीं। इंस्टाग्राम दुनिया भर के लोगों को जोड़ने के लिए दृश्य संचार और सामाजिक संपर्क का उपयोग करता है। यह उपयोगकर्ताओं को फोटो और वीडियो कहानियों को अपलोड करने और साझा करने की अनुमति देता है। इसमें कई फिल्टर हैं जो एक उबाऊ तस्वीर को इंस्टाग्राम–योग्य मास्टरपीस में बदल सकते हैं।

पत्रकारिता की शुरुआत एक मिशन के साथ हुई थी। किन्तु अब यह व्यापार में परिवतित होता जा रहा है। समाचार मीडिया और मनोरंजन की दुनिया के बीच का अंतर कम होता जा रहा है और कभी–कभी तो दोनों में अंतर कर पाना मुश्किल हो जाता है। आज मीडिया एक उद्योग बन गया है, समाचार उपभोग की वस्तु और दर्शक उपभोक्ता। जिसका मकसद अधिकतम मुनाफा कमाना है। इस तरह की बाजार–होड़ में उपभोक्ता को लुभाने वाले समाचार उत्पाद पेश किए जाने लगे हैं। जिसके कारण उन तमाम वास्तविक समाचारीय घटनाओं की उपेक्षा होने लगी है, जो उपभोक्ता के भीतर ही बसने वाले नागरिक की वास्तविक सुचना आवश्यकताएं थी, जिनके बारे में जानना उसके लिए आवश्यक है। इस दौर में समाचार मीडिया बाजार को हडपने की होड़ में अधिकाधिक लोगों की चाहत पर निर्भर होता जा रहा है। लोगों की जरूरत किनारे की जा रही है। यह

स्थिति हमारे लोकतंत्र के लिए एक गंभीर राजनितिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संकट पैदा कर रही है।

न्यू मीडिया संचार प्रौद्योगिकियां हैं जो उपयोगकर्ताओं के साथ-साथ उपयोगकर्ताओं और सामग्री के बीच बातचीत को सक्षम या बढ़ाती हैं। 1990 के दशक के मध्य में, मनोरंजन और शिक्षा के लिए इंटरैक्टिव सीडी-रोम की आमद के लिए बिक्री पिच के हिस्से के रूप में 'न्यू मीडिया' वाक्यांश का व्यापक रूप से उपयोग किया जाने लगा। नई मीडिया प्रौद्योगिकियों, जिन्हें कभी-कभी वेब 2.0 के रूप में जाना जाता है, में ब्लॉग, विकी, ऑनलाइन सोशल नेटवर्किंग, आभासी दुनिया और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे वेब-संबंधित संचार उपकरणों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। वाक्यांश 'न्यू मीडिया' कम्प्यूटेशनल मीडिया को संदर्भित करता है जो सामग्री को ऑनलाइन और कंप्यूटर के माध्यम से साझा करता है।

नया मीडिया पुराने मीडिया के बारे में सोचने के नए तरीकों को प्रेरित करता है। मीडिया एक दूसरे को स्पष्ट, रैखिक उत्तराधिकार में प्रतिस्थापित नहीं करता है, बल्कि अंतःसंबंधित फीडबैक लूप के अधिक जटिल नेटवर्क में विकसित होता है। न्यू मीडिया के बारे में जो बात अलग है वह यह है कि वे विशेष रूप से पारंपरिक मीडिया को कैसे नया रूप देते हैं और पुराने मीडिया नए मीडिया की चुनौतियों का सामना करने के लिए खुद को कैसे नया रूप देते हैं। जब तक उनमें ऐसी प्रौद्योगिकियाँ शामिल न हों जो डिजिटल जेनरेटिव या इंटरैक्टिव प्रक्रियाओं को सक्षम बनाती हैं, टेलीविजन कार्यक्रमों, फीचर फिल्मों, पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रसारण को नया मीडिया नहीं माना जाता है।

आज इंटरनेट और सूचना अधिकार ने पत्रकारिता को बहु-लोकप्रिय बना दिया है। आज कोई भी जानकारी पलक झपकते ही प्राप्त की जा सकती है। पत्रकारिता वर्तमान समय मे पहले से अधिक सशक्त, स्वतंत्र और प्रभावकारी बन गई है। अभिव्यक्ति की आजादी और पत्रकारिता की पहुंच का उपयोग सामाजिक सरोकारों और समाज के भले के लिए हो रहा है। लेकिन कभी-कभी इसका दुरुपयोग भी होने लगा है। अब स्नैपचैट, फेसबुक, इंस्टाग्राम और ट्विटर का जमाना है। ये सभी ऐसे प्लेटफॉर्म हैं जो अब पत्रकारिता की दुनिया को काफी प्रभावित कर रहे हैं तथा उसे नये तरीके से चला रहे हैं। हालांकि सोशल मीडिया जनता के लिए आसानी से उपलब्ध तो है, पर इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं

कि यह सच्ची पत्रकारिता करता है। ऐसा लगता है कि अब पत्रकारिता उन लोगों के लिए एक साधन बन गई है, जो विनाशकारी सोच के साथ काम करते हैं तथा अपनें काम में गपशप, घोटालें, तथा मनोरंजन जैसी चीजों का समावेश करते हैं और जो गंदगी में लिपटे रहना चाहते हैं। पत्रकारिता मुक्त होनी चाहिए। परन्तु अभी भी अनेक ऐसे प्रकाशन और पत्रकार हैं जो लोगों के लिए सच्ची और प्रामाणिक खबरें तैयार करते हैं। उन्हें दर्शकों के रूप-रंग, उनके रहन-सहन, जाति आदि से कोई फर्क नहीं पड़ता।

पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ भी कहा जाता है। इसने लोकतंत्र में यह महत्वपूर्ण स्थान अपने आप हासिल नहीं किया है, बल्कि सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति पत्रकारिता के दायित्वों के महत्व को देखते हुए समाज ने ही यह दर्जा इसे दिया है। लोकतंत्र तभी मजबूत होगा जब पत्रकारिता सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति अपनी सार्थक भूमिका का पालन करे। पत्रकारिता का उद्देश्य ही यह होना चाहिए कि वह प्रशासन और समाज के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी की भूमिका निर्वाह करे। पत्रकारिता मर नहीं रही है, वह अपना स्वरूप बदल रही है अब वह दूसरे आयाम में जा रही है। कल की पत्रकारिता बीत चुकी है, आज की पत्रकारिता चल रही है और विकसित हो रही है और कल की पत्रकारिता अभी बाकी है।

न्यू मीडिया की दुनिया सिर्फ एक साल में कितनी बदल गई। फेसबुक ट्विटर, यूट्यूब , ब्लॉग और सोशल मीडिया के तमाम दूसरे मंच बीते कई साल से सुर्खियां बटोरते रहे है, लेकिन 2011 जैसे साल पहले कभी नहीं दिखा। इस साल सोशल मीडिया के जरिए न केवल बड़े आन्दोलन परवान चढ़े, बल्कि इसकी ताकत का अहसास दुनिया भर की सरकारों को इस कदर हुआ कि इन मंचों पर पाबंदी के रास्ते खोजे जाने की एक प्रक्रिया शुरू हो गई। भारत के लाखों लोगों ने भी मिशन की क्रांति के दौरान वर्चुअल दुनिया में प्रदर्शनकरियों का समर्थन किया, लेकिन सोशल मीडिया के जरिए परवान चढ़ते आंदोलन की सही भनक उन्हें हजारे के आंदोलन के दौरान मिली। इंटरनेट पर ब्लोगों के माध्यम से अनेक तरह की आलोचनात्मक बहस होती है, उन तमाम तरह के विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है जिनकी मुखयधारा का कॉरपोरेट व्यापारिक हितों पर कुठाराघात करने की भी क्षमता होती है। भले ही ब्लॉग एक सीमित तबके तक ही सीमित हो, लेकिन फिर भी ये समाज का एक प्रभावशाली तबका है जो किसी

भी समाज और सष्ट्र को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। विकसित देशों में लगभग एक-चौथाई आबादी इंटरनेट का इस्तेमाल करती है। इसलिए ब्लॉग अभिव्यक्ति के एक में भी ब्लॉग लोकतांत्रिक विमर्श के मानचित्र पर अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज करा रहे है।

आज, सोशल नेटवर्किंग साइटों की एक जबरदस्त विविधता है, और उनमें से कई को क्रॉस-पोस्टिंग की अनुमति देने के लिए जोड़ा जा सकता है। अब यह एक ऐसा वातावरण बना गया है। जहां उपयोगकर्ता एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति से बात करने के लिए कई दिन, कई घटों इंतजार किये बिना बात कार सकते है और कोई त्याग किए बिना अधिकतम लोगों तक पहुंच सकते हैं। अगले कुछ वर्षों के बाद व्यक्ति सोशल मीडिया की अदि हो जायेंगे। हम केवल इस बारे में अनुमान लगा सकते हैं कि अगले दशक में या अब से 100 साल बाद भी सोशल मीडिया के प्रभाव से भविष्य क्या हो सकता है, लेकिन यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह तब तक मौजूद रहेगा जब तक मनुष्य जीवित है।

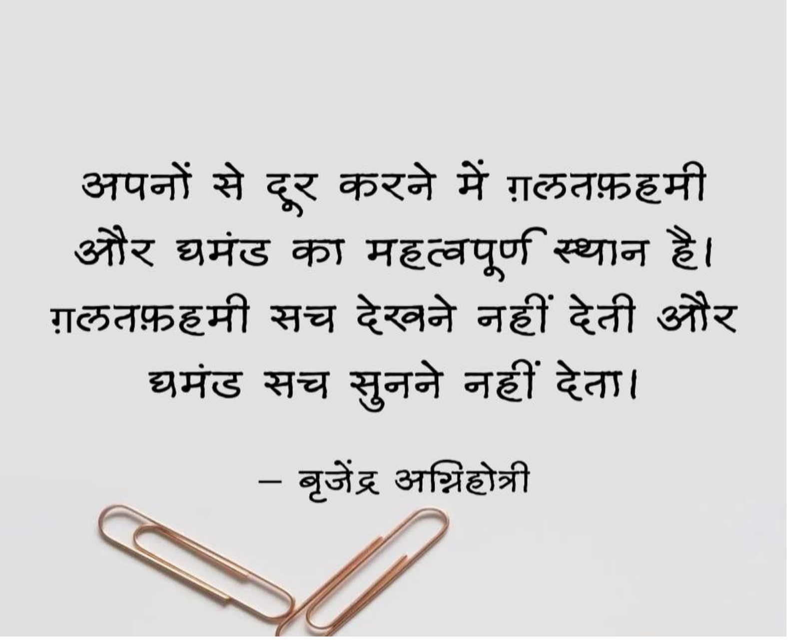

लेख

सत्ता के विकासात्मक आईने में मातृसत्ता का रूप

डॉ. अंकित अभिषेक

सत्ता शब्द का प्रयोग आम बोलचाल की भाषा में या दैनिक व्यवहार में किसी पद विशेष के लिए किया जाता है। राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक इन सब की सत्ता होती है और विशेष रूप से सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं की संकल्पना को साकार करने के लिए जो व्यवस्था को चलाने वाला तंत्र होता है उसे सत्ता कहा जा सकता है। आदिम काल से ही पूरे दुनिया में सभ्यता के विकास का इतिहास स्त्री के दमन एवं शोषण का भी इतिहास माना जा सकता है। पूरी दुनिया में स्त्री वर्ग का शोषण कहीं ना कहीं आदिकाल से ही देखने को मिलता है। वर्तमान में भी स्त्री अपने अधिकारों के लिए कहीं न कहीं इस शोषण से लड़ती हुई दिखाई दे रही है। मानव सभ्यता के आरंभ से ही इंसान समूह में रहना पसंद करता है उस समय घर का कार्य जैसी कोई अलग से व्यवस्था नहीं थी। प्रारंभ में पुरुष और स्त्री मिलकर शिकार करते थे और मछली पकड़ना, भोजन इकट्ठा करने जैसे कार्य सिम्मलित रूप से किया करते थे। यद्यपि सभ्यता के आरंभ से ही स्त्रियां अक्सर शिकार पर जाती थी। किंतु गर्भधारण करने के दौरान वह बच्चे के बड़े होने तक वह काफी लंबे समय तक घर में रहने को विवश होते थे। ऐसे समय में भी वे अपने आसपास के इलाकों से खाना इकट्ठा करने में खुद को व्यस्त रखते थे और बाद में जानवरों को पालतू बनाने की कला सीखने के बाद उन्होंने कृषि और मवेशी पालन जैसे महत्वपूर्ण खोज की। आदिम समाज में लिंग के आधार पर यह पहला प्राकृतिक श्रम विभाजन देखने को मिलता है। प्रस्तुत संदर्भ में आशारानी वोहरा के अनुसार, ''कभी स्त्री-पुरुष संबंधों में खुली छूट रही होगी दोनों के बीच लाड़ होगा तो लड़ाई भी। प्यार में क्रूरता निकली होगी। पर मनुष्य सब भोगता और खेलता था, प्रश्न नहीं उठाता था। प्रकृति के हाथों आसानी से खेलता रह सकता था।

पर प्रकृति पर्याप्त ना हो सकी उसके लिए, ना वन्य जीवन। समाज बनाना आवश्यक हुआ। भूख और भूख के अतिरिक्त भी नाना प्रकार के परस्पर आदान-प्रदान की सृष्टि हुई। सुविधा के लिए पैसा जन्मा और बीच में शासन संस्था आवश्यक हुई। यहीं से स्त्री-पुरुष संबंधों में पेंच पड़ने शुरू हुए। पुरुष के हाथों स्त्री पिट लेती थी पर इस कारण प्रश्न उपस्थित नहीं होता था। ना इसे समस्या समझा जाता था।'' (नारी शोषण : आईने और आयाम, पृ.8)

सत्ता की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। सभ्यता की शुरुआत से ही सत्ता का स्वरूप बनना आरंभ हो गया था किंतु हम यह नहीं कह सकते हैं कि सत्ता का स्वरूप किस काल विशेष और स्थान विशेष से बनना आरंभ हुआ। यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि सभ्यता निर्माण के पूर्व सत्ता का कोई परिपक्व स्वरूप ना होकर मात्र शक्ति प्रदर्शन ही उपस्थित रहा होगा। शक्ति प्रदर्शन एवं प्रयोग के नियम-कानून नहीं होते। शक्ति में स्थायित्व नहीं है क्योंकि जैसे ही एक शक्ति से बड़ी दूसरी शक्ति अस्तित्व में आती है तो वह पहली शक्ति को स्थानांतरित कर देती है। इसलिए व्यक्ति अपने विकास के साथ ही सत्ता की ओर अग्रसर होता है। सत्ता में शक्ति है लेकिन इसके साथ-साथ नियम और कानून का बंधन भी है। इस प्रकार सत्ता से अभिप्राय एक ऐसी शक्ति से है जो समाज, परिवार, संस्था, राजनीति आदि को नियामक एवं नियांतता के रूप में नियंत्रित करने में सक्षम है।

सत्ता परिवर्तनशील होती है। जब जब सत्ता बदलती है तब-तब प्रायः उसके नियम भी परिवर्तित हो सकते हैं। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि यह नियम सदैव ही परिवर्तित होते रहे। जैसे भारत में पहले राजशाही थी। सत्ता नियमन के उनके अपने नियम एवं कानून थे। कालांतर में सत्ता परिवर्तन होता है और ब्रिटिश साम्राज्य भारत में स्थापित हो जाता है। ब्रिटिशों ने अपनी सुविधानुसार और समाज की आधुनिकता को ध्यान में रखते हुए निरंतर नए-नए नियम और कानून बनाते रहे। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात एक बार फिर सत्ता परिवर्तन होता है और भारतीय गणराज्य की स्थापना होती है। भारतीय जनमानस के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए नए संविधान का निर्माण किया गया और अधिक से अधिक समाजोन्मुख नियम कानून बनाए गए। इससे यह स्पष्ट है कि सत्ता परिवर्तन के साथ-साथ प्रायः नए नियम- कानूनों का भी निर्माण होता है। यह भी ध्यातव्य है कि समय के विकास के साथ-साथ नियम

कानून अधिक से अधिक समाजोन्मुख होते जाते हैं। मनुष्य नागरिक के रूप में अपने अधिकारों के प्रति जितना अधिक सजग होता जाता है नियम-कानून और सत्ता उसी क्रम में समाजोन्मुख होते जाते हैं।

सत्ता के विभिन्न रूप होते हैं सामाजिक सत्ता, राजनैतिक सत्ता, पारिवारिक सत्ता, सांस्कृतिक सत्ता, धार्मिक सत्ता, जातीय सत्ता और आर्थिक सत्ता। चुकी भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज है इसलिए उपर्युक्त सभी संस्थाओं का सत्ता संचालन पुरुष वर्ग के द्वारा ही किया जाता रहा है। जैसे समाज को जब भी सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, धार्मिक, जातीय एवं आर्थिक स्तर पर जो भी निर्णय लेने होते हैं वह निर्णय पुरुष वर्ग ही अमूमन लेता है। यद्यपि यह सभी निर्णय आपसी सहमति और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत लिए जाते हैं। परिवार के निर्णय भी पुरुष ही लेता है लेकिन यह निर्णय लोकतांत्रिक नहीं होता क्योंकि परिवार का मुखिया कहीं ना कहीं अधिक सशक्त होता है और जो भी सदस्य उसके निर्णय की अवहेलना करता है वह उस सदस्य को परिवार से बेदखल कर देते हैं।

सत्ता अपने विभिन्न रूपों में अंततः समाज और सामाजिक संस्थाओं को व्यवस्थित रखने का प्रयास करती रहती है। यद्यपि आधुनिक विचारों को में प्रायः सत्ता को दमनकारी स्वीकार किया और सामाजिक एवं सामाजिक संस्थाओं की सत्ता को ध्वस्त करने में अपना विश्वास जताया है। प्रस्तुत संदर्भ में ओम प्रकाश गाबा ने सत्ता को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''सत्ता किसी व्यक्ति संस्था नियम या आदेश का ऐसा गुण या क्षमता है जिसके कारण उसे सही या प्रमाणिक मानकर स्वेच्छा से उसके निर्देशों का पालन किया जाता है। सत्ता के प्रयोग के कारण ही अधिकारी नीतियां, नियम और निर्णय समाज में स्वीकार किए जाते हैं और प्रभावशाली ढंग से लागू किए जाते हैं।'' (विवेचनत्मक राजनीति, विज्ञान कोश, पृ.23)

मानव सभ्यता के आरंभ में जब आदिमानव जंगलों और गुफाओं में रहते थे और कंदमूल फल फूल आदि खा कर अपना जीवन यापन करते थे तब उनके लिए ईश्वर या धर्म का कोई अस्तित्व नहीं दिखाई देता था। तत्पश्चात मानव जाति आगे चलकर आग के अविष्कार के साथ पशु पक्षियों को भूनकर खाना प्रारंभ किया। उसने पत्थरों से तेज धार वाले यारों का निर्माण करना प्रारंभ कर दिया जिससे उन्हें शिकार करने में आसानी होती थी। हम कह सकते हैं कि

इस काल तक मानव समाज में पारिवारिक संबंधों का निर्माण अभी तक नहीं हुआ था। इस काल तक स्त्रियों को कोई रोक-टोक नहीं थी और वे स्वतंत्र रहकर भोग विलास की आशा में स्वतंत्रतापूर्वक जीवन यापन कर रही थी। प्रस्तुत संदर्भ में श्रीधरम के अनुसार, ''वन्य युग की स्त्रियां इसी स्वतंत्रता की तरफ इशारा करती है। आगे चलकर मानव ने कुल्हाड़ी बनाई, बर्तनों का निर्माण करना सिखा। बांस और घास से झोपड़ी बनाना सीखा और पशुपालन के साथ कबीलों में रहने लगा। इस काल में प्रकृति से भयभीत मानव ने सर्वप्रथम पेड़ों, बांबियों और पत्थरों की पूजा प्रारंभ की। मातृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण पेड़ों और पत्थरों की जगह आदिमानव देवियों की पूजा करने लगे। इस समय बच्चों को माँ के बारे में जानकारी तो थी लेकिन यह जानकारी नहीं होती थी कि उसके पिता कौन हैं इसलिए स्त्री आधारित रक्त संबंध होता था और सारे अधिकार एवं प्रतिष्ठा भी स्त्रियों को ही प्राप्त थे।'' (स्त्री-संघर्ष और सृजन, पृ.11)

मानव समाज में पितृसत्ता के उदय का कारण एंगेल्स व्यक्तिगत संपत्ति की अवधारणा को मानते हैं। एंगेल्स अपनी पुस्तक 'परिवार, व्यक्तिगत संपत्ति और राज्य की उत्पत्तिश के माध्यम से समाज के सामने यह मत प्रस्तुत करते हैं कि समाज का मातृसत्ता से पितृसत्ता में परिवर्तन हुआ है। इनके अनुसार पाषाण काल में खेती का अधिकारी पूरा कबीला होता था और स्त्रियां बागवानी संभालती थी। आदिम समाज में श्रम के इस विभाजन के आधार पर स्त्री और पुरुष समाज को संगठित करने का कार्य कर रहे थे। अधिक श्रम वाला कार्य अपेक्षाकृ त पुरुष अधिक कर रहा था और स्त्रियों के लिए हल्के कामों का प्रावधान था। अधिक श्रम वाले कार्य को करने के कारण पुरुष के अंदर अहंकार की भावना पनपने लगी। व्यक्तिगत संपत्ति को लेकर अधिक लालच की वजह से पुरुष में अहंकार की भावना का निरंतर विकास होता चला गया। प्रस्तुत संदर्भ में श्रीधरम के अनुसार, ''धातुओं के संबंध में जानकारी बढ़ने के साथ विकास की संभावनाएं अधिक व्यापक हुई। व्यक्तिगत संपत्ति के लोभ से पुरुष में स्वामित्व की भावना विकसित हुई। वह जमीन का मालिक था, गुलामों का मालिक था और अब स्त्री का भी मालिक बन गया। यहीं से औरत की गुलामी की कहानी शुरू होती है जिस स्थिति में घरेलू कामकाज संभालने के कारण औरत को परिवार में सर्वोच्च सत्ता के सिंहासन पर बिठाया था वहीं अब औरत की गुलामी का आधार बन गई।'' (स्त्री-संघर्ष और सृजन, पृ.12)।

आदिमानव समाज अब धीरे-धीरे विकसित होने लगी थी और यह समाज धीरे-धीरे शिकारी एवं संग्रहकर्ता से आगे बढ़कर कृषि कार्यों में संलिप्त होने लगे थे। कृषि काल में आकर यह आदिम समाज पूर्ण रूप से पितृसत्तात्मक होने लगा था। पितृसत्तात्मकता के विकास होने से अब धीरे-धीरे पशु और गुलाम के साथ-साथ स्त्री भी इस शोषण का शिकार होना प्रारंभ हो गई थी। धर्म भी धीरे-धीरे संहिताकरण के रूप में परिवर्तित होने लगा था। जिस आदिम समाज में स्त्री की स्थिति सबसे ऊंचे पायदान पर थी अब उसकी कीमत गांव के पशु और नौकर की भांति रह गई थी। उस समय भी दलित और स्त्री दोनों को शिक्षा से वंचित रखा गया था ताकि उन पर आसानी से शासन कर सके एवं उनका शोषण कर सके। पितृसत्तात्मक समाज ने पीढ़ी दर पीढ़ी शासन के द्वारा उनमें गुलामी की मानसिकता का निर्माण किया और उन्हें यह अच्छे से समझाया कि यही तुम्हारा धर्म है।

स्त्री और पुरुष के बीच आदिकाल से ही श्रम का विभाजन तो था ही जिसमें पुरुष के जिम्मे में शिकार पर जाना और स्त्रियों के जिम्मे में बच्चे की देखभाल व खाद्यान्न इकट्ठा करना था। तत्पश्चात इनके बीच के संबंध का सत्ता के संबंध में परिवर्तित होना इसी श्रम विभाजन का परिणाम माना जाता है। कुछ स्त्रीवादी विद्वानों का यह मत है कि शिकार खाद्यान्न संग्रह युग के समाज में भोजन का 60 प्रतिशत कंदमूल, मछली व फल होते थे जिन्हें संग्रहित करने का कार्य मुख्य रूप से स्त्री और बच्चे करते थे। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि स्त्रियों का कार्य पुरुषों की तुलना में कतई हीनतर नहीं था। इस इस संदर्भ में उमा चक्रवर्ती के कथनानुसार, ‘‘बड़े आखेटों में पुरुषों के साथ स्त्रियों के शरीक होने के चित्रण मध्य भारत में प्राप्त हुए। ईसा पूर्व 5000 (मध्यपाषाणकालीन) भीमबेटका की गुफाओं के पेंटिंग में देखने को मिले हैं। पेंटिंग में स्त्रियां फल और अन्य खाद्य पदार्थ बटोरने के साथ-साथ टोकरी और जाल द्वारा छोटे-मोटे आखेट करते हुए दर्शाई गई है। पेंटिंग में एक स्त्री के कंधे से टुकड़ी लटक रही है जिसमें दो बच्चे हैं और उसके सिर पर एक पशु लदा हुआ है यानी एक साथ माँ और संग्रहकर्ता की भूमिका निभाती स्त्री। एक अन्य स्त्री हिरन का सींग पकड़ कर खींच रही है तो एक अन्य मछली पकड़ रही है। टोकरी लिए हुए स्त्रियों को प्रायः गर्भवती ही चित्रित किया गया है। सामूहिक

शिकार दृश्यों में स्त्रियां भी शामिल दिखाई गई है।" (जाति समाज में पितृसत्ता, पृ.45)

पुरातात्विक सर्वेक्षणों के आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप के आरंभिक प्रागैतिहासिक समाज में औजार मिट्टी के बर्तन आवास के आधार पर इनका खाका खींचा जाता है। लेकिन इस बात के अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला है कि समाज के गठन का स्वरूप कैसा था और स्त्री पुरुष के बीच सत्ता संबंध था या नहीं था। किंतु प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि मानव सभ्यता के अपने आरंभिक समय में लिंग आधारित भेदभाव ना के बराबर था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी प्रकार का निश्चित श्रम विभाजन समाज में नहीं था स्त्रियों का आर्थिक योगदान पुरुषों से ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं माना जा सकता है।

स्त्री का उसके प्रजनन क्षमता के आधार पर उसकी भूमिका पुरुषों के मुकाबले अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा सकता है। गर्भवती स्त्री का चित्रण, माँ की भूमिका निभाती हुई स्त्री का चित्रण, यहां तक कि संतानोत्पत्ती का चित्रण उस समय के समाज में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाने के लिए पर्याप्त कहा जा सकता है। यही कारण है कि संतानोत्पत्ति करती स्त्री के चित्र को मातृ देवी माना गया। प्राचीन संस्कृति के साक्ष्य स्थलों पर भी स्त्री का मातृ देवी के रूप का चित्रण किया गया है। प्रस्तुत संदर्भ में कुसुम त्रिपाठी का मत है कि "यह जल्दी ही साबित हो गया कि श्रम विभाजन पर लगा पुरुषों का ठप्पा प्राकृतिक नहीं बल्कि सामाजिक रूप से बनाया गया था। लेकिन जैसे ही युद्ध खत्म हुए और पुरुष मोर्चे पर से वापस आ गए महिलाओं ने इन पुरुष के नौकरियों को छोड़ दिया और अपने महिला क्षेत्रों में वापस चली गई। लेकिन इसने एक चीज साबित कर दी कि महिलाएं वह सारे कार्य कर सकती है जिसके लिए पुरुष दावा करते हैं कि सामाजिक स्तर पर केवल वे ही सक्षम है। इस तरह पुरुषों और महिलाओं के काम में फर्क चाहे किसी भी कसौटी पर आधारित हो शारीरिक ताकत जैसे सामंतवाद कहता है या दक्षता जैसी पूंजीवाद कहता है पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह के अलावा कुछ नहीं है।"(स्त्री संघर्ष के सौ वर्ष, पृ.49)

-सी.वी.एस.कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

लेख

हिंदी साहित्य में स्त्री आत्मकथा लेखन

डॉ. अहिल्या मिश्रा

भारतीय संस्कृति में मानव निर्माण के साथ दो जातियों का निर्माण हुआ। स्त्री एवं पुरुष। पूर्व में स्त्री पुरुष के समान अधिकार युक्त थी। काल के गर्भ से प्रणीत सत्य धीरे-धीरे स्त्री को कई सारे बंधनों में बांधता चला गया। भारतीय स्त्री जो उच्चतम संस्कृति की वाहक थी उसे पदच्युत कर दिया गया। खैर लंबे समय के इतिहास के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में क्षरण के कई अध्याय सन्निहित है। मैं इसके विस्तार में नहीं जाकर मध्यकाल एवं परिवर्तित काल में स्त्री के स्थान में हुए निरंतर बदलाव एवं मानवी से इसके वस्तु या धन के रूप में परिवर्तित स्वरूप की ओर अपनी सोच को मोड़ती हूँ तो पाती हूँ कि एक-एक सीढ़ियां उतरते हुए स्त्री अपने पूर्व स्थापित सत्ता खोने लगी। इस बीच बाह्य आक्रमणों एवं बल प्रयोग ने अपनी मान्यताओं एवं बर्बरताओं के कारण हमारी सांस्कृतिक विरासत को चोट पहुंचाया। हम घूंघट, पर्दा, धर्म (स्त्री धर्म) के रूप में मानने एवं अपनाने हेतु बाध्य हुए। हम कोमलता, ममता, एवं शारीरिक क्षमता के आधार पर मूल्यांकित किये जाने लगे। इससे हमारा आत्मविश्वास कम हुआ और हमारा साहस टूटा। हमारा शौर्य क्षतिग्रस्त हुआ। हम गुलामी एवं पराधीनता के ग्रास बनने लगे। हमारा जीवन, हमारे भरण-पोषण के अधिकारी पुरुष के हाथों में पहुंचा और अपने लिए किसी तरह के निर्णय के अधिकारी नहीं रहे। मात्र कठपुतली बन कर रह गये।

मनुस्मृति के अनुसार भाई, पिता या पुत्र के संरक्षण में वयनुरूप जीने के लिए स्त्रियाँ सीमाबद्ध की गई। स्वाभाविक है इस पोंगापंथी विचारधारा में स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व कहाँ विकसित हो पाता। कोई भी स्त्री अपनी आत्मकथा कैसे लिख पाती। यह सोच भी उसके अंदर नहीं पनप सकता था। वैदिक काल के पश्चात् पौराणिक युग कथा कहानियों का युग रहा है। कई स्त्रियों की गाथाएं

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

रची गई। साहस की कथा गाथा लिखी गई। पंचकन्या से लेकर दुर्गा स्वरूप की कहानी बनी लेकिन यह औरों के द्वारा लिखी गई। कोई स्त्री यह संरचना या आत्मलेखन की ओर शायद ही प्रवृत्त हुई हो। सर्वप्रथम आधुनिक युग के आरंभ में कहीं यह विचारधारा पनपती नजर आती हैं। स्त्रियां बहुत बाद में अपनी आत्मकथा लेखन में रुचि दिखाने की साहस कर पाई है। पुरुष आत्मकथा लेखन की भरमार के बीच स्त्री आत्मकथा लेखन का स्रोत कहीं दूर तक दिखाई नहीं देती है। बहुत खोज के बाद मुझे जानकी बजाज द्वारा लिखित 'मेरी जीवन यात्रा' (सन् 1956) के रूप में पहली स्त्री आत्मकथा के दर्शन हुए। वर्षों से कैद और सहिष्णुता पूर्वक जीवन जीने वाली स्त्रियां कलम पकड़ने के पश्चात् भी अपनी आत्मकथा लिखने से परहेज करती रहीं कि उनके मिजाज का निजत्व इस लेखन से सार्वजनिक हो जाएगा। इससे उन्हें पारिवारिक एवं सामाजिक क्षति उठानी पड़ेगी। धीरे-धीरे पुरानी मान्यताएं टूटती गईं। नए सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं का निर्माण हुआ। इससे साहस संजोकर स्त्रियों के द्वारा आत्मकथा लेखन आरंभ हुआ और असूर्यपश्या सात-सात अवगुणों से आबद्ध, चूल्हे चौके के संग दुख-सुख का बंधन बांधने वाली, पति की मृत्यु पर सती हो जाने वाली, भीरू स्त्री इस परिवर्तित मूल्य बोध के प्रति जागरूक हुई और आधुनिक काल में अपने जीवन के संघर्ष को चित्रित करने लगी। मान्यताओं के टूटने पर महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगीं। समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं, रीति-रिवाजों और परंपराओं के बंधन से निकलने के लिए छटपटाहट बढ़ी। इन्होंने कलम को हथियार बनाया। बहुत सारी स्त्रियाँ कई क्षेत्र में कलम चलाने लगी।

अपने आत्मसंघर्ष को अपनी आत्मकथा में चित्रित करना भी आरंभ किया। मराठी, पंजाबी, बंगला आदि भारतीय भाषा में लिखित आत्मकथाओं से प्रभावित होकर हिंदी की लेखिकाएं भी आत्मकथा लेखन में प्रवृत्त हुईं। इस प्रकार आत्मकथा लेखन में कौशल्या बैसंत्री 'दोहरा अभिशाप' (1999), मैत्रेई पुष्पा 'कंस्तूरी कुंडलि बसै' (2002) एवं 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008), प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' (2007), रमणिका गुप्ता 'हादसे' (2005), सुशीला राय 'एक अनपढ़ कहानी' (2005), अनीता राकेश 'संतरें और संतरें' (2002), मन्नू भंडारी 'एक कहानी यह भी' (2007), कृष्णा अग्निहोत्री 'लगता नहीं है दिल मेरा' (2010) एवं 'और.. और.. औरत' (2011), सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द' (2011), 'मेरी कलम मेरी कहानी' (2014), अमृता प्रीतम 'रसीदी टिकट',

शिवानी कृत 'सुनौरू तात यह गत मोरी', पद्मा सचदेव कृत 'बूंद बावरी', चंद्रकिरण सौनरेक्सा कृत 'पिंजरे की मैना', रमणिका गुप्ता कृत 'अपहुदरी', निर्मला जैन कृत 'जमाने से' आदि आत्मकथाओं के माध्यम से महिलाओं ने अपनी करुणा व्यथा मानसिक घुटन एवं संघर्ष आदि को व्यक्त किया है।

इसी कड़ी में डॉ. अहिल्या मिश्र कृत 'दरकती दीवारों से झांकती जिंदगी' सन 2021 में प्रकाशित हुई है। उपरोक्त उल्लिखित आत्मकथा लेखिकाओं ने आत्म संघर्ष को पाठकों के समक्ष रखी है तो दूसरी ओर अन्य महिलाओं की जो समाज में अत्याचारों को सहकर भी चुप रहती है, अस्मिता को जगाती है, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करती हैं। अहिल्या मिश्र की आत्मकथा के साथ एक बात लीक से हटकर हुई है कि यह अपने में औपन्यासिक तत्व को समाहृत किए हुए है। इसमें आत्मकथा के प्रमुख तत्वों के साथ उपन्यास के सभी तत्व भी समाहृत है। लेखिका का बचपन, गांव, सामाजिक जीवन, पारिवारिक परिवेश एवं संघर्ष से शक्ति प्राप्ति अंकित है। जीवन के सुख-दुख, विकास की दिशा में बढ़ते कदम पारंपरिक स्त्री संघर्ष, विरोध के स्वर, पिता-पुत्र-पति के साथ तारतम्य, उनका योगदान तथा बदलते परिवेश के साथ किए गए समझौतों का सत्य एवं तथ्यपरक चिंतन उकेरा गया है। वस्तुतः आत्मकथा लेखन स्वयं के भीतर छिपे अदृश्य संसार को अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ उससे जुड़े समाज, सांस्कृतिक परिवेश सहित वस्तुनिष्ठ रूप से पूरी ईमानदारी के साथ पाठकों के समक्ष उद्घाटित करने की एक साहित्यिक विधा है।

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज एवं पुरुष वर्चस्ववादी रहा है। तदानुसार ही इसकी सामाजिक संहिताएं निर्मित है। महिला कथाकारों के अनुसार पुरुष वर्ग को हमारे सभी धर्म ग्रंथों में अपने पूर्ण स्वतंत्रता एवं सुविधानुरूप जीवन व्यतीत करने की आजादी प्रदान की गई है, वहीं स्त्रियों को पुरुषों के आदेशानुसार उनके प्रति पूर्ण समर्पण कर परतंत्रता की भावना को आत्मसात करते हुए जीवन यापन का निर्देश दिया गया है। इन नियमों के पालन हेतु स्त्रियों को बचपन से ही सहनशील होने की शिक्षा दी जाती है। इसके साथ ही उसे मानसिक रूप से पुरुषों द्वारा प्रत्येक शोषण को अपना भाग्य मानकर स्वीकारने तथा बिना शिकायत किए हुए जीने की सीख दी जाती है। यह तथ्य है जिसके कारण महिला सर्जनकारों में आत्मकथा लेखन में संकोच बना रहा। 20वीं सदी में तो कोई लेखन हुआ नहीं। स्वतंत्रता पश्चात भारत में केवल राजनैतिक स्तर

पर ही नहीं सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर भी विस्तृत रूप से बदलाव की आंधी चली। आधुनिक शिक्षायुक्त समाज का एक बड़ा वर्ग विशेष रूप से युवा वर्ग ने सदियों से प्रचलित सड़ी गली मानसिकता के जर्जर नियम तथा रूढ़ियों के विरुद्ध अपनी लेखनी चलायी। इससे दबे-कुचले वर्ग को वाणी मिली तथा इसका साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। एक व्यापक स्तर पर महिला लेखिकाओं द्वारा सामाजिक वर्जनाओं को अनदेखा कर बिना किसी लाग लपेट के आपबीती को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने की पहल एक सामाजिक क्रांति के रूप में साहसिक पहल थी। इसके माध्यम से समाज, संस्कृति तथा धर्म के नाम पर किए जाने वाले अत्याचारों का पर्दाफाश तो हुआ ही साथ ही एवं सुसंस्कृत कहे जाने वाले लोगों के चेहरे से मुखौटा भी उतरा। निम्न वर्ग में व्याप्त रिश्तों का दुरुपयोग तो अशिक्षा के कारण बाहर आ जाता था। किन्तु मध्यम वर्गीय तथा उच्च वर्गीय समाज अपने आप में सीमित रहने के कारण ढक-तोपकर आगे बढ़ जाता है। स्त्रियों ने पूर्ण साहस से सत्य को उद्घाटित किया।

21वीं शताब्दी के आरंभ में स्त्री विमर्श साहित्य के केंद्र में रहा तथा इसका प्रभाव साहित्य की एक विधा पर दृष्टिगत हुआ। विशेषतः आत्मकथा लेखन पर। साहित्य के प्रत्येक विधा के साथ इस गहन विमर्श ने स्त्रियों को स्वयं की पहचान करवाई। समाज में उनके होने एवं अपने अस्तित्व से परिचित करवाया। पूर्व में स्त्री केवल माँ, पत्नी, बेटी, भाभी, मौसी, चाची आदि संबोधनों से जानी जाती रही है। सिमोन द बाउवर की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' का उल्लेख यहाँ उचित होगा कि 'औरत पैदा नहीं होती बना दी जाती है।' उसे दोयम दर्जे का माना जाता है। आधुनिक शिक्षा से पूरित आत्मनिर्भर स्त्रियों ने इन तथ्यों को गहनतापूर्वक समझा। अपनी आवाज बुलंद करने का साहस दिखाते हुए भोगे हुए यथार्थ का उसकी समूची पृष्ठभूमि एवं उत्तरदायी कारणों (सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक) को ईमानदारी तथा तटस्थता सहित पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, प्रो. निर्मला जैन, शीला झुनझुनवाला, अजीत कौर, रमणिका गुप्ता, कृष्णा अग्निहोत्री, कौशल्या बैसंत्री, चंद्रकिरण सौनरिक्शा, डॉ. अहिल्या मिश्र आदि कुछ ऐसी लेखिकाएं हैं जिनकी आत्मकथा में उपरोक्त तथ्यों के साथ-साथ नारी अस्मिता निज से वाद-विवाद, यौन सूचिता आदि प्रश्नों पर गहन विवेचन-विश्लेषण प्राप्त होता है।

विवेच्य लेखिकाओं की आत्मकथा में चित्रित नारी जीवन में पर्याप्त भिन्नता पाया गया है। स्वाभाविक है कि उनके जीवन का विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश से उनका संबंध है कुछ का जन्म ग्रामीण परिवेश में तो कुछ का जन्म कस्बों में तथा कुछ का महानगरों में हुआ। संबंधित परिवेश की विविधता एवं इससे संबंधित प्रभाव जीवन एवं लेखन में परिलक्षित होता है। साथ ही कुछ लेखिकाओं की आत्मकथा में पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता का भी ब्यौरा मिलता है। यह उनके विदेश यात्राओं का प्रभाव है। निर्विवाद सत्य है कि सामाजिक आचार-विचार के साथ प्रत्येक देश, राज्य तथा क्षेत्र विशेष की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है जो उसकी पहचान होती है एवं वही समाज उससे जुड़ी संस्कृ ति के साथ व्यक्ति के जीवन को प्रभावित तो करता ही है साथ ही उसकी मानसिकता को भी गहन रूप से प्रभावित करता है। सामाजिक तथ्यों के साथ उपरोक्त लेखिकाओं की आत्मकथा में एक तथ्य विशेष रूप से उभर कर सामने आया है- नारी शोषण। नारी अपने बाल्यावस्था में हो, किशोरावस्था में हो, युवावस्था में हो,अधेड़वास्था में हो या वृद्धावस्था में, पुरुष सत्तात्मक समाज हर स्थिति में उसके विविध आयामों में उसे शोषित करता रहता है। शारीरिक स्तर से लेकर मानसिक एवं भावनात्मक रूप से शोषण प्रमुख है।

उपरोक्त लेखिकाओं की आत्मकथाओं में नारियों के शोषण के दोनों रूप शारीरिक एवं मानसिक शोषण के साथ भावनात्मक शोषण का भी अति सूक्ष्मता पूर्वक चित्रण हुआ है । ऐसे शोषण का शारीरिक कोई लक्षण दिखाई नहीं देती है किंतु मन मस्तिष्क पर इसका गहन प्रभाव पड़ता है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी ऐसी भी' इसका जीवंत एवं साक्षात् उदाहरण है। सुप्रसिद्ध लेखक स्व राजेंद्र यादव से उनका प्रेम विवाह असफल सिद्ध हुआ। अपने पति से उन्हें जीवन पर्यंत बेवफाई, तिरस्कार तथा अवहेलना मिला। प्रेम विवाह एक खोखला विवाह संस्कार बन गया। प्रेम हवा-हवाई होकर मात्र विवाह शेष रह गया था। दाम्पत्य जीवन के आरम्भ में ही उन्हें 'समानांतर जीवन का सूत्र' सिखा दिया गया। यानी कि छत एक ही होगा परंतु दोनों के अधिकार के क्षेत्र एक अलग अलग होंगे। मन्नू लिखती हैं- ''प्रथम रात्रि को राजेंद्र जब मेरे पास आए तो उनके रंगों में लहू नहीं अपने किए का अपराधबोध था... बिलकुल ठंडे और निरुत्साहित। और फिर यह ठंडापन हमारे संबंधों के बीच स्थायी बनकर जम गया।''

मन्नू जी पैंतीस वर्षों तक इस निर्जीव रिश्ते को ढोती रहीं। निरंतर तनाव ग्रस्त रहने के कारण उन्हें न्युरोलहृजिया के दर्दनाक दौड़े पड़ने लगे। ऐसी स्थिति में भी राजेंद्र यादव उनकी दर्द और तकलीफ को अनदेखा कर अपने मित्र एवं उसकी पत्नी के साथ एक गोष्ठी में जहाँ मन्नू जी भी आमंत्रित थीं जाने का कार्यक्रम बना लिए। उनकी असम्वेदनशीलता को उजागर करते हुए मन्नू जी लिखती हैं कि राजेंद्र जी उनसे कहने लगे, 'मन्नू नहीं जा रही है तो क्या हुआ, मैं तो हूँ, देखिए तो क्या मौज करवाता हूँ... और खूब मस्ती मारेंगे.. आप अपना कार्यक्रम बिलकुल कैंसिल नहीं करेंगी... मेरे छटपटाते मन पर मौज करेंगे, मस्ती मारेंगे' जैसे शब्द खुदते चल रहे थे। और उससे उपजी तकलीफ आंसुओं में बहती चली जा रही थी। मन्नू जी प्रेरणा प्रोत्साहन के अभाव में कहानी लिखती हैं। वह कहानी छप जाती है। तब लेखिका मन्नू भंडारी को अपना एक अलग अस्तित्व नजर आती है। 'महाभोज' और 'आपका बंटी' के लेखक से अपना अलग अस्तित्व का कर्म कर पाईं। इसी तरह की मानसिक त्रासदी से अजित कौर को भी दो चार होना पड़ा। एक सुशिक्षित पति जो कि पेशे से डॉ. है उसका व्यवहार उनके प्रति असंवेदनशील रहा है। अपने चरित्रहीन पति और ससुराल वालों को प्रसन्न करने का हर संभव प्रयत्न किया। किंतु उनके व्यवहार में कोई अंतर नहीं आ पाया।

पति का घर त्यागने के पश्चात् कृष्णा अग्निहोत्री को महाविद्यालय में नौकरी मिली। वहाँ की महिला प्राचार्या उनकी नियुक्ति का आदेश देखते ही बोली– ''तुम यहाँ क्यों आई? तुम्हें और कोई जगह नहीं मिली? इसी में अभी भी तुम्हारी भलाई है कि किसी और जगह चली जाओ।'' इसी तरह 'पिंजरे की मैना' में चंदकिरण सोनरिक्शा सास द्वारा एक अल्पायु बालिका वधू के शोषण को उद्घाटित करती हुई कहती हैं कि घर में बहू के आते ही सास ने उससे सौतेलेपन का व्यवहार शुरू कर दिया। मिसरानी छुड़ा दी गई। पाँच-छह व्यक्तियों का खाना वह बारह-तेरह वर्ष की बालिका बना लेती पर जो गाँव से समय-असमय आने वाले मेहमान थे उनके लिए सेरों आटे की रोटियाँ सेंकना उसके लिए कठिन हो जाता था। एक अन्य स्थान पर चंद्रकिरण लिखती हैं कि उनके रिश्ते की एक बाल विधवा का पुनर्विवाह कराया गया। किंतु उसके प्रति व्यवहार अति द्वेषपूर्ण रहा। वह हरदम उसे नीचा दिखाने के बहाने ढूँढती रहती। यहाँ तक कि बच्चों से उनकी जासूसी करवाती। उन्हें स्कूल तक जाने नहीं देती। इसी संबंध में बच्चा

अपने पिता से कहता है कि ‘‘बाबूजी दादी ने मुझे चौकीदार बना दिया है मैं स्कूल का नागा कब तक करूँगा... नई माँ दूध में पानी तो नहीं मिला रही है। मलाई छिपा कर तो नहीं रखती।’’ यहाँ यह सच सिद्ध होता है कि केवल पुरुष ही कटघरे में खड़े नहीं किये गये हैं। कई स्त्रियाँ भी भी इस घेरे में में आती हैं। आत्मकथा के विभिन्न प्रसंगों के बीच रिश्तों का विरोधी स्वरूप एवं स्त्री का स्त्री के प्रति द्वेष भी सामने आता है।

मैत्रेयी पुष्पा अपने कॉलेज के समय की एक घटना स्मरण करती हुई बताती हैं कि ‘‘गरीब एवं गाँव से संबंधित होने के कारण कॉलेज में पढ़ने वाली अमीर घराने की लड़कियाँ उन्हें नीचा दिखाकर उनका आत्मविश्वास तोड़ने एवं दुख पहुँचाने के बहाने ढूंढती थी। एक दिन तो उनलोगों ने एक बेहद शर्मनाक घटना की रचना रच दी कि मैत्रेयी को अपने लड़की होने पर शर्म हुआ हुआ साथ ही रोना आया। वे रोती हुई उस कुर्सी के पास ठहर गई जहाँ से ये दाग लगे थे। किसी क्रूर लड़की ने कुर्सी पर लाल रंग ही उड़ेल कर लड़की होने का मजाक उड़ाया था।’’ (कस्तूरी कुंडल बसै- मैत्रेयी पुष्पा)। कस्तूरी मैत्रेयी जी की माँ का नाम है। वास्तव में ‘कस्तूरी कुंडल बसै’ आत्मकथा उन्हीं के संघर्षों का लेखा जोखा है। कस्तूरी के पति का देहाँत होने के बाद एक बाल विधवा द्वारा गोदी की बच्ची को पालना पहाड़ पर चढ़ने के समान था। समाज में पुरुषों की नजर से अपने को बचाते हुए तथा बच्ची की रक्षा करते हुए, उसे शिक्षित करते हुए आत्म निर्भर बनाने के लिए किए जानेवाले प्रयास एवं संघर्ष की एक लम्बी शृंखला है जो कभी न खत्म होने वाले रास्ते पर जाती है। कस्तूरी ने छोटी उम्र में जो दुःख झेले जीवन के कठिनतम परिस्थितियों ने उन्हें लड़ना सिखा दिया। उनका कथन है कि एक नारी तभी सम्मान प्राप्त करती है जब वह शिक्षित एवं आत्मनिर्भर हो। लेखिका का मानना है कि नारी का पढ़ा लिखा होने के साथ साथ गृहस्थ जीवन में संतुलन भी बनाने आना चाहिए। उसमें आत्मनिर्भरता भी होना चाहिए जिसके आधार पर जीवन का निर्णय वह स्वयं ले सके। इनका मानना है कि पारिवारिक जीवन में जिम्मदारियों को निभाते हुए विकास करना ही जीवन की सफलता है, मनमानी करना नहीं।

मैत्रेयी जी ने अपने दूसरे उपन्यास ‘गुड़िया भीतर गुड़िया’ में अपने संपूर्ण जीवन को खोलकर इसके सभी पन्नों पर फैला दिया है। अलीगढ़ की भंटी बहू से लेकर मिसेज शर्मा से होते हुए मैत्रेयी पुष्पा बनने तक की कहानी है यह

आत्मकथा। विवाह के पच्चीस वर्ष बाद लेखिका की पहली कहानी 'आक्षेप' साप्ताहिक में छपी तो मिसेज शर्मा से पूर्व मैत्रेयी पुष्पा का नाम पुनः सूर्य की भाँति चमकने लगा। फिर शुरू हुआ लेखिका का लेखन संघर्ष एवं अस्तित्व की तलाश। मैत्रेयी जी ने आत्मकथा में स्पष्ट किया कि चाक, अल्मा कबूतरी, अगन पक्षी, इदन्नमम जैसे उपन्यास क्यों लिखे। 'कहे इश्वरी फाग' लिखने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई। लेखिका के अनुसार, ''विवाह स्त्री के सुरक्षा का गढ़, संरक्षण का किला, शांति के नाम पर निश्चिंतता की सन्नाटे भरी गुफा और गुलामी का आनंद।" लेखिका को पति सत्ता के किले में रहते हुए अपना लेखन कार्य छिपा कर करना पड़ता है। अस्तित्व की इस लड़ाई की खोज में पारिवारिक कलह के समक्ष अडिग अपने स्वत्व की खोज में लेखिका मानती है कि स्त्रियों का जन्म एक ऐसे पौधे के रूप में होता है जिन्हें हिलाने-डुलाने और विकसित करने के लिए हवा जरूरी है। लेकिन हमारे माली बने लोग कहते हैं बौनसायी रहा करते नहीं तो बढ़कर अपनी खूबसूरती खो देते हैं।'' लेखिका के अनुरूप भारतीय समाज में गृहस्थों के संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु व पिंडदान तक पुत्रों से बंधा होता है। तीन पुत्रियों की माँ बनने के साथ अपमान एवं सन्नाटा का हृदय विदारक वर्णन लेखिका ने किया है।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'कोयला खदानों' राजनीति तथा सड़क पर मजदूरी करने वाली स्त्रियों की दैहिक तथा मानसिक शोषण को उजागर करती है। निर्मला जैन की आत्मकथा पढ़े लिखे लोगों की सामाजिक विडंबना को सबके सामने लाती है साथ ही शिक्षण संस्थानों में चल रहे शिक्षकों एवं प्रशासन के आपसी घात-प्रतिघात से पाठक को रूबरू करवाती है। एक उच्च शिक्षा प्राप्त स्वाबलंबी स्त्री होने के उपरांत भी उनके जीवन में गुटबाजी एवं घटिया राजनीति के कारण चारित्रिक लांक्षण का सामना करना पड़ता है। उनके चरित्रहरण का प्रयास किया जाता है। तब उन्हें तत्कालीन कुलपति से सहायता हेतु प्रार्थना करती करनी पड़ती है। उन्हीं के शब्दों में- ''भर्राई आवाज में इतना ही कह पाई, मुनीस भाई मेरी इज्जत बचाने के लिए आप क्या कर सकते हैं। कहते हुए मेरी आँखें भर आईं।''

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा में स्त्रियों पर होने वाले यौन शोषण के कई उदाहरण मिलते हैं। बचपन में उसकी विधवा माता ग्राम सेविका की नौकरी के चलते उन्हें अपने पास न रखकर परिचित तथा संभ्रांत परिवारों में रखती है।

उद्देश्य होता है कि वह वहाँ रहकर सुरक्षित रहेगी एवं शिक्षा प्राप्त कर सकेगी। किंतु उसका विश्वास तब खंडित होता है जब मैत्रेयी उन्हें अपनी आपबीती मर्मांतक शब्दों में लिखती है- ''माता जी, वह मुझे रात भर सोने नहीं देता...मैं यहाँ नहीं रहूँगी। गांव भाग जाऊंगी। शहर के लोग कैसे हैं।'' इसके पश्चात मैत्रेयी की माताजी उसे किसी दूसरे घर में रखती हैं। वहाँ इस घर का वृद्ध व्यक्ति उससे बलात्कार का प्रयास करता है, किंतु उसके विरोध में कहीं से कोई आवाज नहीं उठाई जाती है। वास्तव में ऐसे बहुत सारे लोग मनुष्य के रूप में छुपे हुए भेड़िए हैं जो दोमुहा जीवन जीते हैं। बाह्य रूप से यह सभ्य तथा आदर्शवादिता स्वर निकालते हैं किंतु वास्तविक रूप से रक्षक ही भक्षक बनते हैं।

बाल्यावस्था से ही शारीरिक शोषण का शिकार हुई रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि उनका दैहिक शोषण बाहर वालों ने नहीं, अपितु घर में रहने वालों ने तथा काम करने वालों ने किया। अभिजात्य परिवार में पली-बढ़ी रमणिका जी के माता-पिता अति व्यस्त जीवन जीते थे। बच्चों को नौकरी एवं अभिभावकों के सहारे छोड़ दिया गया। एक विश्वसनीय आर्य समाजी मास्टर को अपनी बेटियों की शिक्षा के लिए के पिता ने रखा, किंतु वही रामणिका का शीलहरण करने लगा। उन्हीं के शब्दों में देखें- ''पापाजी और बीबीजी का कमरा अलग था। उन्हें मास्टर जी पर इतना विश्वास था कि देर रात तक उसे मेरे कमरे में रहने पर एतराज नहीं करते थे। मास्टर सारी रात मेरे कच्चे शरीर से खिलवाड़ करता रहा। मैं इतनी भयभीत थी न बोल सकती थी न रो सकती थी। मैं वही करती गई जो मास्टर कहता गया। फिर यह रोज का किस्सा हो गया।''

प्रभा खेतान अन्या से अनन्या में लिखती हैं कि वे यहाँ नौ वर्ष की आयु में अपने ही घर में स्वयं अपने भाई द्वारा यौन-शोषण का शिकार हुईं। विडंबना यह है कि दुष्कर्मकर्ता को सजा मिलने की जगह उन्हें ही चुप रहने की नसीहत दी गई। देखें उनके शब्दों में- ''जब मैं 9 साल की थी तब घर में... मैं एकदम चुप हो गई... उस दिन दाई माँ ने भी तो यही कहा था कि काहू से न कहियो बिटिया, अपने पति से भी नहीं।'' पर क्यों? उत्पीड़न के बावजूद औरत को खामोश रहने को कहा जाता है।

पुरुषों द्वारा नारी को मात्र भोग्या समझने या सामग्री समझने की मानसिकता सदियों से चली आ रही है। जन्म से ही उसे लड़के की तुलना में हेय समझा जाता है। उसकी अवहेलना की जाती है। बेटा के जन्म पर खुशी

बेटी के जन्म पर दुख मात्र अनपढ़ लोगों का ही पूर्वाग्रह नहीं, समाज का उच्च शिक्षित वर्ग भी इसी संकीर्ण मानसिकता का शिकार पाया जाता है। केवल पुरुष ही स्त्री शोषण के दोषी नहीं, स्त्रियां भी उत्तरदायी होती हैं। कौशल्या बैसन्त्री अपनी माँ का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि उन्हें बेटा का बड़ा शौक था। हर प्रसूति के समय पुत्र की लालसा रहती थी। संतान लड़की पैदा होने पर माँ बहुत उदास हो जाती। वे कहती थीं कि जाओ उसे कूड़े में फेंक आओ। प्रभा खेतान लिखती हैं कि ''अम्मा ने मुझे कभी गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा जी मुझे भीतर बुला लें। शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं। एक शाश्वत दूरी बनी रही हम दोनों के बीच।'' कौशल्या बैसंत्री ने भी अपनी माँ की कठोरता का वर्णन किया है। वे बात-बात पर बैसंत्री को पीटती थीं। एक बार तो इतना पीटा की पांव का अंगूठा घायल हो गया और अस्पताल ले जाना पड़ा। यहाँ निर्मला जैन के लेखकीय क्षेत्र के एक अनुभव के माध्यम से पुरुष संपादकों की मानसिकता का उदाहरण प्रस्तुत है-

'हंस के सम्पादक राजेंद्र यादव अपने अहं तुष्टि के लिए जाने जाते हैं। उनकी ऐसी हरकतों पर मन्नू जी से गाहे-बगाहे उनकी कहा-सुनी तो होती ही रहती थी। उन्होंने अपनी इन हरकतों से कई लोगों से नाराजगी मोल ले ली थी। डॉ. नगेंद्र उनमें से एक थे। नतीजा यह हुआ कि डॉ. साहब भी उन्हें नाम से नहीं, अपशब्दों से नवाजा करते थे। ऐसे ही एक प्रसंग में, मैंने हंस में कभी न लिखने की प्रतिज्ञा की थी। हुआ यह कि एक बार मैं और जैनेंद्र जी एक सेमिनार के लिए जम्मू विश्वविद्यालय में आमंत्रित किए गए। साथ में जैनेंद्र जी के साहबजादे प्रदीप जी भी थे। उस यात्रा के दौरान दो-तीन दिन लगातार उनका साथ बना रहा। उस बीच मेरे मन में उनके बारे में यह धरना और पुष्ट हो गई कि उनके व्यक्तित्व की बनावट खासी जटिल है जिसे समग्रता में समझना आसान नहीं होता।

वापिस लौटकर मैंने उस अनुभव से प्रेरित होकर एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था- 'सिरा कहाँ है?' राजेंद्र यादव बड़े उत्साह से उसे छापने के लिए तैयार हो गए। लेख छप गया। मैंने देखा, पर पढ़ने की जहमत नहीं उठाई। अंक मिलने के दो-तीन दिन बाद अचानक राजी सेठ का फोन आया। लेख उन्होंने खुद तो पढ़ ही लिया था, मुझसे बात करने के पहले अज्ञेय जी को भी

पढ़वा दिया था। अज्ञेय जी की प्रतिक्रिया हुई थी- 'ये तो कोई बहुत अच्छा काम नहीं किया निर्मला ने!'

कुछ ऐसा ही महसूस किया था राजी ने भी। अज्ञेय जी से पुष्टि हो गई तो हिम्मत करके मुझे फोन मिलाया। शुरुआत कुछ इधर-उधर की बातों से करके जैसे वे साहस जुटाती रहीं और फिर धीरे से बोलीं- 'आपका लेख पढ़ा 'हंस' में...' एक क्षण की चुप्पी के बाद जोड़ा उन्होंने, 'वैसे आपने हिम्मत बहुत की।'

मेरा चौंकना स्वाभाविक था, 'ऐसी हिम्मत वाली क्या बात है उसमें। मुझे जैसा लगा मैंने लिख दिया।'

बात आगे बढ़ी, 'फिर भी हर कोई तो इस तरह लिखने का साहस नहीं कर सकता। अज्ञेय जी भी ताज्जुब कर रहे थे।'

इस बार मेरा माथा ठनका। मैंने बात वहीं रोककर कहा कि 'मैंने तो छपने के बाद पढ़ा ही नहीं है। एक बार पढ़के देखती हूँ, फिर तुमसे बात करूँगी।'

संवाद वहीं ठप्प।

मैंने तुरंत हंस की 'प्रति' उठाई। लेख पढ़ते ही मेरे पाँव के तले की जमीन खिसक गई। राजेंद्र जी ने दो-तीन जगह कलम चला कर उसे खासा कटखना और आपत्तिजनक बना दिया था।

मैंने तुरंत फोन मिलाकर जवाबतलबी की तो ठहाका लगाकर बोले, 'अरे आपने क्या लिखा था, गुड़ी-गुड़ी मजा तो अब आएगा जब लोग पढ़ेंगे। इतना अधिकार तो संपादक का होता ही है।'

मैं फट पड़ी, 'छापने या न छापने का अधिकार होता है। लेखक की बिना सहमति के कलम चलाकर तरमीम करने का नहीं। और जहाँ तक मजा आने का सवाल है, वह तो आना शुरू हो गया है। मेरी भर्त्सना शुरू हो गई है।' और मैंने उन्हें राजी अज्ञेय का प्रसंग सुना दिया।

उन पर कोई असर नहीं हुआ इसका। वे उसी तरह ठहाका लगाते रहे। उनका खयाल था कि पत्रकारिता में यह सब तो होता ही रहता है। इसमें इतना परेशान होने की कोई बात है ही नहीं।

संयोग से उन्हीं दिनों जैनेंद्र अस्वस्थ होकर अस्पताल पहुँच गए। मेरी अगली चिंता यह थी कि बीमारी की हालत में अगर किसी शुभचिंतक ने

यह बात उन तक पहुँचा दी या स्वस्थ होने पर उन्होंने 'हंस' पढ़ लिया तो वे कितने आहत होंगे! मैंने अगला फोन प्रदीप को मिलाकर उन्हें इस कांड से अवगत कराते हुए अनुरोध किया कि वे हंस की प्रति जैनेंद्र जी के हाथ न आने दें। मैंने राजी को भी इस स्थिति की जानकारी देकर अनुरोध किया की वे अज्ञेय जी को भी इस स्थिति से अवगत करा दें। जाहिर है अज्ञेय जी ने अपने मितभाषी स्वभाव के अनुरूप इतना ही कहा, 'तो फिर इसमें निर्मला का क्या कसूर है? पर राजेंद्र यादव को ऐसा करना नहीं चाहिए था।'

बात इतने पर खत्म नहीं हुई। मैंने राजेंद्र जी को इस प्रसंग पर एक लम्बा पत्र लिखा, यह इसरार करते हुए कि वे इसे 'हंस' में छापें, अन्यथा मैं पूरे ब्यौरे के साथ किसी और पत्रिका में छपवा दूँगी। पत्र की एक प्रति मैंने प्रदीप के पास भेज दी।

पत्र मिलते ही राजेंद्र जी के होश-फाख्ता हो गए। वे स्वप्न में भी ऐसी प्रतिक्रिया की उम्मीद नहीं कर पा रहे थे। अपनी संपादकीय दादागिरी भुलाकर उन्होंने मुझसे मिलकर बात करने का आग्रह किया।?

घर आए। देर तक मुझे इस बात के लिए कायल करने की कोशिश करते रहे कि मैं उस पत्र को छापने का इसरार न करूँ। जब तर्क-युक्ति से काम नहीं चला तो अपनी आदत के अनुरूप उन्होंने ठहाका लगाते हुए फरमाया, 'अरे यार बस भी करो! अब हो गई गलती, तो क्या जान ही ले लोगी! लो पकड़ लिए तुम्हारे पैर। अब तो बख़्श दो। मैं अपने ढंग से छाप दूँगा। गलती का सुधार करते हुए...' और यह कहते हुए उन्होंने सचमुच हाथ बढ़ाकर मेरे पाँव पकड़ लिये।

जाहिर है, इसके बाद कहने-सुनने लायक कुछ बचा ही नहीं। मैंने भरोसा किया, पर उन्होंने वायदे की औपचारिकता पूर्ति में जो दो पंक्तियाँ छापीं, उनका कोई अर्थ नहीं था। बस नतीजा यह हुआ कि मैंने 'हंस' में लिखना छोड़ दिया। (आत्मकथा पुस्तक से यह अंश उद्धृत किया गया है)।

उपेक्षा का यह चक्र ही नहीं रुकता। जीवनपर्यंत गतिशील रहता है। हाँ रूप बदलते रहते हैं। नारी के शोषण दमन के विरुद्ध सबसे सशक्त शस्त्र शिक्षा को ही माना गया है। शिक्षा ही वह शस्त्र है जिसके माध्यम से नारी स्वाबलंबी, अपने अधिकारों के प्रति सजग तथा शोषण के विरुद्ध आवाज उठा सकती है। विवेच्य आत्मकथाओं के अनुशीलन के पश्चात चौंका देने वाले तत्वों का उद्घाटन

होता है। यह सारे तथ्य वास्तव में गहन विश्लेषण की माँग करते हैं। इन पर विमर्श आवश्यक है। प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या तक' अपनी आत्मकथा में अपने जीवन सत्य का कठोर सामाजिक एवं पारंपरिक वर्जनाओं के भीतर पली-बढ़ी एक साधारण-सी लड़की अपने बल पर एक सफल उद्योगपति तथा कलकत्ता चेंबर ऑफ कॉमर्स की प्रथम महिला अध्यक्ष बनती है। आर्थिक रूप से एक सफल एवं सशक्त स्त्री होते हुए भी वह भावनात्मक स्तर पर कमजोर साबित होती हैं। अपने जीवन के एकाकीपन को दूर करने हेतु डॉ. सर्राफ के साथ तथा उनके परिवार के साथ 25 वर्षों के रिश्तों के पश्चात इस बेनाम रिश्ते से वे मात्र तिरस्कार बटोर पाती हैं। वे लिखती हैं कि 'मैं अकेली थी। इतनी अकेली कि मैं किसी का रोल मॉडल नहीं बन सकी। कोई लड़की मेरे जैसी नहीं होना चाहिए। मेरी तमाम सफलताएं सामाजिक कसौटी पर पछार खाने लगती हैं। सारी उपलब्धियां अपनी चमक खो देतीं...। जहाँ तनाव अधिक था, कभी न खुलनेवाली गांठें थीं। डॉ. सर्राफ पर उनकी निर्भरता आत्ममानसिक रुग्णता बनने लगी। इसे वह सुरक्षा स्वरूप लेने लगी। डॉ. सर्राफ प्रेमी से अभिभावक बन गए। आय, व्यय बचत आदि का लेखा-जोखा बच्चों की तरह लेने और रखने लगे। किंतु इनको शक की नजरों से देखते हुए इनपर निगरानी भी रखने लगे। इस प्रकार वह स्वावलंबी होकर भी परावलंबी बनी रही।

कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा से भी यह स्पष्ट होता है कि एक अच्छे परिवार की सुशिक्षित तथा आत्मनिर्भर नारी परायों के साथ-साथ अपनों द्वारा भी छली जाती है। उनका अपना भाई उन्हें पैतृक अधिकार से वंचित करता है। अपने चरित्रहीन आईपीएस पति द्वारा अमानवीय व्यवहार का शिकार बनती है। उच्च शिक्षा ग्रहण कर अपने पैरों पर खड़ी होने के पश्चात कार्यस्थल पर तिरस्कृत होना पड़ता है। पति से अलग रहने तथा जवान व सुंदर होने के कारण उन्हें स्वच्छंद प्रवृत्ति का माना जाता है और चारों ओर उपस्थित पुरुषों को लगता है कि वे सहज उपलब्ध होने वाली स्त्री है। 60 वर्ष की आयु में गोवा के रोहिताश्व चतुर्वेदी को अपना उपन्यास प्रकाशन हेतु देना था। उसने उनके सामने गोवा आकर अकेले में मिलने का प्रस्ताव रखा- 'मेरी पत्नी यहाँ नहीं रहती है। गोवा में मैं बहुत अकेला हूँ। इस उम्र में हम कुछ कर तो नहीं सकते पर साथ तो चाहिए।' यह उन्हीं का लेखन है। यानी स्त्री मात्र देह और दर्शनीय वस्तु भर है। पुरुष अकेली स्त्री को देखकर सभी सीमाएँ लांघने को उद्दत हो उठता है।

इसे उजागर किया गया है। पुरुषों द्वारा नारी को मात्र भोग्या या भोग की वस्तु समझे जाने के विषय में कृष्णा जी कहती हैं कि 'सेक्स के अतिरिक्त भी स्त्री के सामने कई चुनौतियां रहती हैं। उसमें भी वह भागीदारी चाहती है। इसकी पूर्ति एक योग्य भाई, पति, बेटा या मित्र कर सकता है।' विवेच्य आत्मकथा में नारियों के शारीरिक शोषण के अलावा मानसिक शोषण का भी सूक्ष्मता पूर्वक चित्रण हुआ है। ऐसे शोषण का शरीर पर कोई चिह्न नहीं होता है या दिखाई देता है किंतु मन मस्तिष्क पर यह प्रभाव पड़ता है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी ऐसी भी' इसका जीवंत उदाहरण है। राजेंद्र यादव से परिवार के विरोध के बावजूद भी प्रेम विवाह एवं इसकी असफलता के कारण पति की बेवफाई, तिरस्कार एवं अवहेलना की प्राप्ति होती है। प्रेम विवाह मात्र खोखला संस्कार सिद्ध होता है। इसमें प्रेम कहीं नहीं रहता।

अजीत कौर को भी मानसिक त्रासदी से गुजरना पड़ा है। एक सुशिक्षित डाक्टर पति का व्यवहार उनके प्रति अति असंवेदनशील रहा है। अपने चरित्रहीन पति तथा ससुराल वालों को प्रसन्न रखने का उन्होंने हर संभव प्रयास किया। किंतु उनके प्रति उनके व्यवहार में कोई अंतर नहीं आता। एक बार वे बहुत बीमार हो जाती है। अपने पति से कहती है कि 'मुझे संतरे ला दो या संतरे के लिए पैसे ही दे दो। डा. ने जूस पीने को कहा है।' बीमारी में उनसे सहानुभूति जताने के बजाय उनके पति ने कहा, 'जा अपने बाप के घर अगर संतरे चाहिए तो।'

'पिंजरे की मैना' में चंद्रकिरण सोनरेक्शा सास द्वारा एक अल्पायु बालिका वधू के शोषण को उद्घाटित करती हैं। ऊपर संदर्भित स्थिति में एक बालिका पर ढाए जानेवाले जुर्म एवं मानसिक त्रासद का विशद विवरण देती हैं। इसी में आगे के विवेचन को भी देखा जाना चाहिये। ऐसे कई पंक्तियों के बीच वे एक स्थान पर वह कहती हैं कि एक बाल विधवा का विवाह या पुनर्विवाह रचा गया, किंतु उसकी सास का उसके प्रति बहुत ही दोषपूर्ण व्यवहार रहा। वह हरदम उसे नीचा दिखाने का बहाना ढूंढती रहती। यहाँ तक कि बच्चों द्वारा उसकी जासूसी करवाती। उन्हें स्कूल तक नहीं जाने देती। एक बच्चा अपने पिता से कहता है कि 'बाबूजी दादी ने मुझे चौकीदार बना दिया है।' इन पंक्तियों को दुबारा रखने में मेरा मकसद है कि स्त्री विमर्शों के इस भाव के द्वारा स्त्रियों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार का उल्लेख लगभग सभी आत्मकथाकारों ने किया है।

पारिवारिक क्लेश की बात करें तो सर्वप्रथम सास-बहू, ननद-भाभी, देवरानी-जेठानी के रिश्तों पर उंगली उठती है। दांपत्य जीवन में दरारें औरत ही डालती है। वैसे भी ससुराल मैके के बीच आधिपत्य का दंश भी बहू को ही झेलना पड़ता है। ससुराल में मैके से जुड़ी स्त्री को कई बार सास एवं अन्य रिश्तेदारों के ताने झेलने या सुनने पड़ते हैं। स्त्री का अपना कोई व्यक्तित्व गिना ही नहीं जाता। यह भी कुछ आत्मकथाओं में पढ़ने को मिला। इससे उनके कोमल मन पर एक अतिरिक्त दवाब बनता है और वह बेचौन हो उठती है।

21वीं सदी के उत्तरार्ध के पश्चात उत्तर एवं पूर्वकालिक समय में एक आत्मकथा आई है। जिस पर पिछले कुछ समय से चर्चा चल रही है। डॉक्टर अहिल्या मिश्र कृत 'दरकती दीवारों से झांकती जिंदगी'। यह आत्मकथा अभिव्यक्ति की सादगी, जीवन के प्रतिफल में जीया गया अनुभवों का खाड़ापन सार्वजनिकता और उत्तर देने की ताकत एवं साहस सार्थक अर्थों को प्रतिपादित करने की क्षमता भावों की संप्रेषनियता के साथ मानवीय मूल्यों को जीने की ललक सहित विभिन्न स्तरों पर संघर्ष, सामाजिक मान्यताओं को तोंड़कर नई स्थापना की शक्ति से लबालब, जीवंत एवं जोश से भरी आज की स्त्री का चित्रण है। परिवार, समाज एवं रिश्तों में बलिदान देने के बजाय रिश्तों की नई परिभाषा गढ़ना ही इस उत्साही स्त्री की कहानी है। स्त्री शोषण, जमींदारी प्रथा, सीमाओं का बंधन तोड़ते हुए विकास के रास्ते पर बढ़ना यही लक्ष्य है उस स्त्री का। वर्ग भेद एवं इनके सामाजिक आचरण के साथ स्त्री शिक्षा को सर्वोच्च मान्यता देने वाली स्त्री की कहानी जीती एक स्त्री है।

इस आत्मकथा में पितृसत्तात्मक समाज से उलझती अहिल्या संघर्षरत है। स्त्री स्वाभिमान हेतु संघर्ष के चरम भी दिखाई देता है। आत्मनिर्भरता का पाठ ही साहस एवं सफलता की कुंजी है। पति के साथ अनजान प्रदेश की यात्रा का साहस अदम्य है। पुनः साहित्यिक क्षेत्र में पुरुष वर्चस्व के बीच पहचान का संघर्ष एवं पुरुष साहित्यकारों की पिछलग्गू नहीं बनने पर उनके द्वारा दी गई संत्रास एवं दबाव को झेलने की क्षमता दिखाना आदि कई स्वरूप उभरकर सामने आए हैं। इस आत्मकथा के माध्यम से हम अहिल्या के मजबूत इरादे के साथ स्त्री उत्थान एवं दृढ़ता से सत्य कहने के साहस का संचार स्त्री के बीच फैलाते हुए पाते हैं। बहुत ही सकारात्मक भाव बनता दिखाई देता है। हाँ स्त्री का एक नया स्वरूप कहानी में दिखता है। भोजन बनाने की अक्षमता पुरुष सहयोग

स्वसुर के रूप में तथा निडरता का व्यापक चित्रण मिलता है। एक वाक्य नारी के परिवर्तित मानसिकता का चित्रण करती है, 'खोल अपनी धोती ले अपनी साड़ी आज से तेरा मेरा रिश्ता खत्म।' वह स्त्री इसके साथ ही मायके प्रस्थान कर जाती है। इस प्रकार शोषण के विरोधी स्वर एक स्तम्भ सा सामने खड़ा दिखाई पड़ता है। अभी इस आत्मकथा पर कई टिप्पणियां आ रही हैं। पाठकों की रुचि बनी हुई है।

स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार का उल्लेख प्रायः सभी आत्मकथाओं में उभर कर आया है। नारी जीवन का विविधा पूर्ण चित्रण करती विवेच्य लेखिकाओं की आत्मकथाओं में एक तथ्य समान रूप से दृष्टिगोचर होता है वह है शोषण का प्रतिकार। देर अवश्य हुआ किंतु अब आधुनिक समय की स्त्रियों ने यह दिखा दिया है कि वे अब शोषण नहीं सहेंगीं। कौशल्या बैसंत्री ने 61 वर्ष की आयु में अपने पति को तलाक देकर जीना शुरु किया। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी पुत्री सहित पति का घर त्याग दिया। अजीत कौर ने भी पति की अवहेलना के प्रतिउत्तर में अपनीदोनों बेटियों के साथ अलग जीवन जीने लगी। रमणिका गुप्ता अपनी शर्तों पर जीवन जीती रही। प्रभा खेतान विवाह संस्कार को खतरा बताते हुए अपने प्रेम को वरण कर जीवन जीती रहीं। निर्मला जैन भी राजनीति से उभरकर अपनी स्व पहचान बनाने में सक्षम रही। अहिल्या मिश्र अनजान स्थान पर अपनी अस्मिता की स्थापना कर एक नई पहचान बना पाई है। उपरोक्त सभी आत्मकथाओं से गुजरते हुए यह स्पष्ट होता है कि पुरुष वर्चस्व के कैद में जकड़ी स्त्री अपने स्वत्व के लिए अपने मान-सम्मान के लिए अपने अंतर्मन के स्त्री को प्रबल, सबल करती है। एवं उनका आत्मविश्वास एवं साहस उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि 21वीं एवं 22वी सदी के आरंभिक दशकों में नारी आत्मकथाओं के बीच स्त्री के सफल एवं सशक्त रूप उभर कर एक नई स्थापना करने में सफल एवं सक्षम हुए हैं। ये सभी नारियां अपने अधिकारों के प्रति जागरूक एवं अपनी अस्मिता के लिए बड़ी चुनौती का सामना सामना करने से नहीं हिचकिचाती है। सभी स्वतंत्रता, स्वावलम्बन आत्मनिर्भरता एवं नारी अस्मिता को शिक्षा के साथ अर्थायित करती है।

साक्षात्कार

हिंदी पढ़ाते हुए मैं मातृभूमि के प्रति कर्तव्य का निर्वहन कर रही हूँ : हंसादीप

डॉ. दीपक पाण्डेय

हंसादीप जी कनाडा के यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में हिंदी अध्यापन से जुड़ी हैं। आज हिंदी जगत में हंसादीप जी का सृजनात्मक हिंदी लेखन विशेष रूप से पहचान बना रहा है। हंसादीप की अनेक कहानियां, डायरी और संस्मरण हिंदी की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। आपकी कहानी पाठक बहुत पसंद कर रहे हैं तभी तो इनकी कहानियों का पंजाबी, गुजराती,मराठी भाषों में अनुवाद हुआ है। हंसादीप के तीन कहानी संग्रह– चश्मे अपने–अपने, प्रवास में आसपास, शत प्रतिशत तथा दो उपन्यास– कुबेर और बंद मुट्ठी प्रकाशित हो चुके हैं। और नया उपन्यास 'केसरिया बालम' प्रकाशन के क्रम में आ चुका है और मातृभूमि नामक पत्रिका में धारावाहिक रूप में छपने लगा है। हंसादीप जी ने अंग्रेजी फिल्मों के अनुवाद भी किए हैं।

*अपनी कहानियों में हंसादीप जी ने भारतीय परिवेश और प्रवासी जीवन का ताना–बाना बहुत ही बारीकी से बुना है। लेखिका जहां भारतीयता से जुडी हैं तो जहाँ वे निवास कर रही हैं वहां का परिवेश, वातावरण,दैनिक–चर्या को कथा से जोड़ा है और बहुत ही संयमित रचनाएँ पाठकों को दी हैं जो आज हिंदी में चर्चित भी हो रही हैं। आपकी कहानियों में सामाजिक सरोकारों का दायरा काफी विस्तृत है उनके पात्र रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़े हैं तभी कहानी में रोचकता और पठनीयता का समावेश हो जाता है। हंसा जी का कथा सृजन के बारे में मानना है कि **"कथा संघर्ष से शुरू होती है, विसंगतियों का पर्दाफाश करती है और सकारात्मकता के साथ अंत होती है।"** हाल ही में प्रकाशित 'शत–प्रतिशत' संग्रह शीर्षक कहानी बाल शोषण के संवेदनात्मक पक्ष को पाठकों के सामने रखती है. जिसका मुख्य पात्र साशा के मानसिक अंतर्द्वंद का सूक्ष्म विश्लेषण कर लेखिका ने पिता की क्रूरताओं से उपजी अपराधी मानसिकता को फौस्टर माता–पिता कीथ व जोएना के प्रेम ने और फिर लीसा की निकटता से साशा के हृदय परिवर्तन को दिखाकर समाज को सीख देकर रचनात्मक अंत किया है।*

'बंद मुट्ठी' उपन्यास बहुत ही रोचक कथा के साथ सामने आता है। इसमें लेखिका ने मातृत्व के द्वन्द, परिवार की पूर्णता को सभी पक्षों के साथ बहुत ही सहज अंदाज में प्रस्तुत किया है। कथा का प्रवाह इतना सहज है कि पाठक

उस प्रवाह से बाहर नहीं निकल पाता .भाषा और भाव का सम्मिश्रण कथा की रोचकता को बढ़ते हैं। 'कुबेर' उपन्यास में हंसादीप जी ने कथा में मानवीय रिश्तों के भावनात्मक पहलुओं के साथ व्यवसायिक–पक्षों को भी प्रभावी तरीके से अभिव्यक्त किया है। धनु का जीवन संघर्ष घर से भागना, ढाबे पर काम करना, जीवन–ज्योत एनजीओ जाना, धनु से डी.पी. बनना, मैरी बहन का मिलना, नैन्सी से प्रेम और बिछोह, डी.पी. सर उर्फ कुबेर बनाने में जो कथात्मकता का संयोजन किया है, वह अद्भुत है और चमत्कृत करता है। कहीं भी बनावटीपन नहीं है। कथा जिस रफ्तार से शुरू होती है, उसी रफ्तार से चली जाती है। गरीब और बेसहारा बच्चों के प्रति सहानुभूति उनके कार्यक्षेत्र और दक्षता को उनके गंतव्य तक पहुंचाता है।

हंसादीप जी आपका हिंदी-लेखन के प्रति लगाव कैसे उत्पन्न हुआ और इसमें परिवार की क्या भूमिका है ?

हंसादीप : धन्यवाद दीपक जी, आपके साथ संवाद प्रारंभ करना मेरा सौभाग्य है। परिवार व हिंदी-लेखन दोनों ही जीवन के दो अंग-से हैं। ऐसे स्तंभ हैं ये दोनों जो मजबूत नींव भी देते हैं और अंधेरों में लाइट हाउस की तरह रौशनी भी देते हैं। आदिवासी बहुल क्षेत्र मेघनगर, जिला झाबुआ, मध्यप्रदेश में जन्म लेकर पली–बढ़ी मैं बचपन से ही आसपास के माहौल से आंदोलित होती रही। एक ओर शोषण, भूख और गरीबी से त्रस्त आदिवासी भील थे तो दूसरी ओर परंपराओं से जूझते, विवशताओं से लड़ते, एक ओढ़ी हुई जिंदगी जीते हुए मध्यमवर्गीय परिवार थे। हर किसी का अपना संघर्ष था। रोटी–कपड़ा–मकान के लिये जूझते आसपास के लोग मन को दुरूखी करते थे। मालवा की मिट्टी और मेघनगर का पानी संवेदित लेखनी को सींचते रहे। हालांकि ठौर–ठिकाने बदलते रहे। एक गाँव से दूसरे गाँव, एक राज्य से दूसरे राज्य यहाँ तक कि एक देश से दूसरे देश घर बसाती गयी मैं। शहरों और देशों का बदलता परिवेश कहानियों के कथानक को विविधता देता रहा और रचनाओं को आकार मिलता रहा। अपने जीवनसाथी (धर्मपाल महेंद्र जैन) के कवि और व्यंग्यकार वाले व्यक्तित्व ने इसे भरपूर उर्वरक ऊर्जा दी। आए दिन आपस में रचनाएँ सुनकर-सुनाकर हम दोनों के लेखन को एक स्थायी पहला श्रोता मिल गया था। यों आपसी तालमेल से गृहस्थी आगे बढ़ती रही, लेखन बढ़ता रहा और "निंदक नियरे राखिए" को सार्थक करते हुए एक दूसरे की कमियों को महसूस कर रचनाएँ बेहतर करने की कोशिशें जारी रहीं। हालांकि लेखन कभी पूर्णकालिक नहीं रहा, कई बार तो महीनों और सालों तक अपनी रोजी–रोटी–घर–गृहस्थी के चलते विराम देना पड़ा। सबसे अच्छी बात तो यह है कि विराम के चलते भी कलम तो चल ही जाती

थी बस रचना पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाती थी। परिवार के साथ कदम से कदम मिलाकर चलते हुए, अलग-अलग देशों की धरती ने भी पाला-पोसा है लेखन को, विविधता दी है और नये आयाम दिए हैं। विदेश में मेरा पहला पड़ाव अमेरिका था। 1993 से 1998 तक, मैं न्यूयहर्क शहर में रही। न्यूयहर्क शहर ने मुझे बहुत कुछ दिया, विदेश में बसने का साहस और मुश्किलों से टकराने का हौसला। उस शहर की मैं कर्जदार हूँ जिसने मुझे अपनी ताकतको पहचानने में बहुत मदद की। वहाँ की धरती ने मुझे चुनौतियों के साथ अपनापन दिया। वह प्यार मेरे दिल में कुछ इस तरह अंकित है कि इस शहर का नाम सुनते ही मुझे पहली बार विदेश में कदम रखने की अनुभूति आज भी वैसे ही होती है जैसे तब हुई थी। न्यूयार्क शहर की भव्यता ने मुझ जैसी हिन्दी प्रेमी को एक जगह दी और आगे के लिये एक ठोस आधार दिया। मेरा उपन्यास कुबेर अमेरिकी जीवन और वहाँ संघर्षरत परोपकारी लोगों पर आधारित है। यही अनुभव यहाँ यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में काम करते हुए भी मुझे प्रेरित करता है।

भारतीयता से गहन रूप से जुड़ी हुई थी मैं मगर अमेरिका और कैनेडा जैसे देशों में रहकर, पूरब और पश्चिम के अंतर को महसूसते हुए यह भी देखा कि देश कोई भी हो, इंसान तो एक वैश्विक मन लिये होता है, विशालता की प्रतिमूर्ति, जो कहीं भी रहे जननी के गौरव की अमिट छाप मन से हटा नहीं पाता। इसी के साथ नयी धरती को भी वह उतना ही सम्मान देता है। यही वजह है कि लेखनी आज भी किसी भी परिदृश्य को लिये हो पर अपनी मिट्टी की छाप तो छोड़ ही देती है कागज पर। सही मायने में लिखना तो अब शुरू हुआ है, जब अपनी जिम्मेदारियों का बोझ कम हुआ है। अब कलम चलती है तो बस चलती रहने को चलती है क्योंकि रोटी-कपड़ा और मकान की चिंता से मुक्ति मिली है। मुझे लगता है कि हर कलाकार के साथ ऐसा ही होता है जब वह अपनी कला पर पूरा फोकस कर पाता है, तभी वह कुछ दे पाता है जो देना चाहता है। इसीलिये मैं अपने मित्रों से कहती हूँ कि मेरी लेखनी शैशवकाल से अब किशोरावस्था की ओर कदम रखते हुए अनवरत आगे बढ़ने की कोशिश कर रही है। बहुत कुछ सीखना, बहुत कुछ पढ़ना और पढ़ाना, सब कुछ ताल से ताल मिलकर चले तो ही लेखनी में परिपक्वता आ सकती है। इसके लिये प्रयास जारी हैं।

आप विदेश में रहकर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ साहित्य सृजन भी कर रही हैं। हिंदी लेखन के लिए प्रोत्साहित करने वाली परिस्थितियों की जानकारी दीजिए।

हंसादीप : दीपक जी, अगर मैं कहूँ कि मेरा आज तक का संपूर्ण जीवन ही हिंदीमयी रहा तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बचपन से शिक्षकों ने मेरे लिखे प्रश्नों के उत्तरों को, प्रतियोगिताओं में लिखे निबंधों को बेहद सराहा, मुझे लिखते रहने के लिये बढ़ावा दिया। मेरी पीएच.डी. थीसिस के परीक्षक ने एक ही बात कही थी मुझसे कि- 'मैं आपकी भाषा से बहुत प्रभावित हुआ हूँ।' उनके ये शब्द मुझे बहुत ऊर्जा दे गए और आज भी देते हैं। हिंदी विषय मेरा पैशन ही नहीं, प्रोफेशन भी रहा। भारत में मध्यप्रदेश के विदिशा, ब्यावरा, राजगढ़ (ब्यावरा), और धार महाविद्यालयों में लगभग ग्यारह वर्षों तक स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में हिंदी का अध्यापन करने के बाद न्यूयहर्क शहर की कुछ संस्थाओं में हिंदी अध्यापन किया और उसके बाद टोरंटो, कैनेडा की यहर्क यूनिवर्सिटी में हिंदी कोर्स डायरेक्टर के रूप में तथा 2004 से यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में हिंदी पढ़ा रही हूँ। हिंदी अध्यापन के कारण देश छोड़कर विदेश में बसने का मेरा निर्णय कभी अपराधी भाव महसूस नहीं करने देता, क्योंकि मुझे लगता है कि मैं अपनी भाषा को पढ़ाते हुए मातृभूमि के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर रही हूँ। स्नातक और स्नातकोत्तर की हिंदी कक्षाओं को भारत के महाविद्यालयों में पढ़ाने के बाद मेरे लिये अहिंदी भाषी बिगिनर्स- इंटरमीडिएट की हिंदी कक्षाओं को हिंदी पढ़ाना एक बड़ी चुनौती थी। अपनी हिंदी को सरलतम बनाना था, जो सबसे कठिनतम कार्य था। छात्र हिंदी लिखना तो चाहते, लेकिन रोमन लिपि में। विदेश ही क्यों भारत में भी इन दिनों युवा पीढ़ी इसी परंपरा में शामिल हो रही है। जब सोशल मीडिया पर रोमन लिपि में लिखे हिंदी के संदेशों को पढ़ने की जी-तोड़ कोशिश करती हूँ, तब सवाल उठता है कि हिंदी जानने वाले भी हिंदी लिखने से क्यों कतराते हैं, क्यों डरते हैं हिंदी लेखन की गलतियों से। सच तो यह है कि ऐसे सवालों के जवाब हमारे पास हैं। अपनी कट्टर विचारधारा से परे हम सोचें, कारण समझना चाहें, तो स्वयं को कठघरे में खड़ा पाएँगे। ग्यारह स्वर और तैंतीस व्यंजनों के मूल चवालीस अक्षरों में मात्राएँ जोड़कर, आधे-पूरे अक्षर मिलाकर, कितने संयुक्ताक्षर बना लिए हैं, फिर इनको सजाने के लिए हर तरह के बिंदु को स्थान दिया, जहाँ जैसे जगह मिली, शिरोरेखा के ऊपर, अक्षर के अगल-बगल, ऊपर-नीचे। अनुस्वार- अनुनासिकता के साथ, यानि बिंदु, चंद्र बिंदु के साथ, चंद्र, विसर्ग, हलंत तो जरूरी थे ही, उर्दू, अरबी, फारसी शब्दों के लिए क ख ग ज फ में नुक्ता लगाना जरूरी होता गया। अन्य भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा में स्थान देकर अपनी भाषा को हमने उदार तो बनाया है, लेकिन हमने अपनी लिपि में बहुत कुछ जोड़ लिया है। भारत में ही कई नगरों-महानगरों

में, गली-मोहल्लों में साइनबोर्ड पर हिंदी तो है पर रोमन लिपि में लिखी हुई। ये हमें ग्लोबल वार्मिंग की तरह चेतावनी तो नहीं देते, पर हाँ संभल जाने का आह्वान जरूर करते हैं। जीवन की भागमभाग में हमारा ध्यान इस मूक चेतावनी पर नहीं जा रहा है। समय की इस तेज दौड़ में भाषा का सरलीकरण चाहिए लेकिन हम क्लिष्टीकरण में विश्वास रखते हैं। धीमी गति से हिंदी के साथ वही हो रहा है जो संस्कृत और लेटिन जैसी अपने जमाने की समृद्ध भाषाओं के साथ हो चुका है। अंग्रेजी का दबदबा इसीलिये है कि सिर्फ छब्बीस अक्षरों में वह दुनिया की कई भाषाओं के, कई शब्दों को अपने में समा लेती है और सभी भाषाओं पर राज करती है।

भारत हो या भारत के बाहर, हर ओर एक सवाल है कि हिंदी के पाठक कहाँ, हिंदी की पुस्तकों की बिक्री क्यों नहीं, हिंदी पुस्तकें छपें तो पढ़ेगा कौन, आदि आदि। भारत में यदि ये सारे सवाल परेशान कर सकते हैं तो हम जैसे विदेशों में हिंदी पढ़ा रहे शिक्षकों की क्या हालत हो रही होगी यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है। हिंदी को हमें जीवंत रखना है तो सरलीकरण के नये प्रयोगों से कतराना नहीं बल्कि उन्हें स्वीकारना होगा। तभी हम आज की हिंदी को सामयिक बनाकर भाषा की जीवंतता में वृद्धि कर सकते हैं। घर हो या घर के बाहर, काम पर या काम से इतर, हिंदी बोलने-लिखने-सुनने-देखने का एक जुनून-सा सवार हो, हर हिंदी भाषी को अपनी जिम्मेदारी का अहसास हो, तभी तो हम हिंदी को उसका सही स्थान दे पाएँगे। ये ही वे परिस्थितियाँ हैं जो हिंदी अध्ययन-अध्यापन-लेखन को निरंतर आगे बढ़ाने के लिये, इस सागर में अपनी एक बूँद मिलाने के लिये मुझे निरंतर प्रयासरत रखती हैं।

आपने बताया कि हिंदी क्षेत्र के मध्यप्रदेश की उच्च्च कक्षाओं में में हिंदी-अध्यापन का कार्य किया, और बाद में आपको न्यूयार्क में हिंदी-अध्यापन का अवसर मिला। दोनों स्थानों में हिंदी भाषा शिक्षण का परिवेश और परिस्थितियाँ बिलकुल भिन्न रहीं और संभव है कि आपको अमेरिका में भाषा-शिक्षण के दौरान अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा होगा। आपने इन चुनौतियों का संवहन कैसे किया ?

हंसादीप : दीपक जी, मध्यप्रदेश की स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाने के बाद बिगिनर्स व इंटरमीडिएट कोर्स को पढ़ाना मेरी अपनी सोच में बहुत आसान काम था। लेकिन असल में यह सबसे मुश्किल काम था। दोनों स्थानों की परिस्थितियों में जमीन-आसमान का अंतर था। भारत में कक्षाओं में भूलवश भी अंग्रेजी का कोई शब्द प्रयोग नहीं किया जाता था मगर यहाँ अंग्रेजी के माध्यम

से हिन्दी पढ़ानी थी। पहली कक्षा के बाद ही समझ में आ गया कि यह इतना भी आसान नहीं है। सरल से सरल शब्दों और सरलतम वाक्यों से आधारभूत हिन्दी का आधार स्वयं तय करना था। भारत की चालीस मिनट की कक्षाएँ यहाँ दो घंटों और तीन घंटों की कक्षाओं में बदल गयी थीं और कक्षा में वे छात्र थे जो उच्चतम अंकों के साथ इस नामी यूनिवर्सिटी में अपने अतिरिक्त विषय के तौर पर हिंदी को चुन रहे थे। अपनी भारतीय उच्चारण वाली अंग्रेजी के साथ उन छात्रों को विदेशी भाषा पढ़ानी थी, जिनका वाक्य और शब्द तो दूर, हिंदी-ध्वनियों से भी परिचय नहीं था। मैं उनके लिये विदेशी भाषा हिंदी को, अपने लिये विदेशी भाषा अंग्रेजी द्वारा पढ़ा रही थी। तब मुझे अहसास हुआ कि हिंदी कितनी कठिन भाषा है।

इन चुनौतियों को मैंने स्वीकार किया। छात्रों के स्तर तक जाकर समझने की कोशिश की। हर सत्र में छात्रों का समूह बदलता और उनके सवाल, उनकी जिज्ञासाएँ भी बदल जातीं। इस तरह सत्र से सत्र की कठिनाइयों की तह तक पहुँचते हुए मैंने उनके अनुसार अपने शिक्षण को ढाला और यह भी महसूस किया कि हर नये छात्र-समूह के लिये शिक्षण में परिवर्तन आवश्यक है। साथ ही स्थानीय उदाहरण से उनके लिये समझना अपेक्षाकृत आसान है। लिहाजा मैंने अपने आधारभूत कोर्स पैक तैयार किए जो हर सत्र में कुछ नया जोड़ कर नयी कक्षा के लिये तैयार किये जाते हैं। इस लचीलेपन से हर बार उनकी जरूरतों के अनुसार कुछ जोड़ने-घटाने में काफी मदद मिलती है।

अमेरिका और कनाडा में हिंदी-शिक्षण के दौरान आपको किस-किस का सहयोग और प्रोत्साहन मिला।

हंसादीप : दीपक जी, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। मैं अपने परिवार से, अपने मित्रों से लगातार चर्चा करती हूँ। कई बार सामान्य बातचीत में बड़े-बड़े सवालों के हल मिल जाते हैं। इसके साथ ही कई अन्य भाषाओं को पढ़ा रहे शिक्षकों से भी बातचीत होती है। वे भी अपनी भाषा जैसे अरबी, फारसी, जर्मन, इटालियन, फ्रेंच आदि को पढ़ाते हुए आमतौर पर कुछ वैसी ही कठिनाइयों से जूझते हैं तो इस तरह आपस में संवाद, कक्षा में बेहतर शिक्षण के लिये मददगार होता है। विभाग और अन्य सहकर्मियों की राय से रास्तों की रुकावटें कम होती जाती हैं। जैसे चिकित्सकों को अपने इलाज व नवीनता को स्वीकार करने के लिये लगातार पढ़ना पड़ता है, ठीक वैसे ही भाषा भी बदलते समय के साथ आए बदलावों को स्वीकार करने के लिये तैयार रहे यह दायित्व भाषा के शिक्षकों को अपने कंधों पर लेना ही चाहिए।

क्या अमेरिका और कनाडा में हिंदी अध्ययन-अध्यापन के लिए पर्याप्त पाठ्य-सामग्री उपलब्ध है ? इन देशों में किस सतर्कता के साथ हिंदी अध्यापन का कार्य करना चाहिए ?

हंसादीप : पाठ्य सामग्री आंशिक रूप में उपलब्ध है लेकिन जहाँ तक मेरा अनुभव है जगह बदलते ही कुछ परिवर्तन आवश्यक से हो जाते हैं। जैसे वाक्य बनाने में यहाँ की स्थानीय जगह का नाम हो तो उनके लिये समझना आसान हो जाता है। यहाँ तक कि कैंपस भी अगर बदलता है तो छात्रों के समूह का स्तर और उनकी जरूरतें बदल जाती हैं। इसीलिये मेरी प्राथमिकता होती है कि हर संस्थान के लिये मैं अपने लिखे कोर्सपैक में आवश्यक परिवर्तन करूँ और अपनी पढ़ाने की शैली में भी उनके अनुरूप परिवर्तन करूँ तभी मेरा पढ़ाना छात्रों को समुचित रूप से ग्राह्य होगा। यह कहा जा सकता है कि उचित पाठ्यक्रम और समय की आवश्यकता के साथ बदलाव इन कक्षाओं की लोकप्रियता का एक महत्वपूर्ण आधार है। बाजार की माँग के अनुरूप पूर्ति करना अगर अर्थशास्त्र का आधारभूत सिद्धांत है तो बदलते समय, बदलते कक्षा समूह के साथ पाठ्यक्रम में बदलाव भी शिक्षण की योजनाओं का एक महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए। इस बदलती तकनीकी दुनिया में हर दिन नयी खोज और नयी तकनीक का आना हर विषय-वस्तु को उसके अनुरूप बदलने के लिये नया कैनवास, नया धरातल देता है। 'बिगिनर्स कोर्स' में जहाँ भाषा की व्याकरण खत्म की गयी वहीं से आगे की व्याकरण को जोड़ते हुए 'इंटरमीडिएट कोर्स' में अनुच्छेद लेखन पर फोकस करते हुए आगे बढ़ने की कोशिश होती है। नयी व्याकरण के साथ नयी शब्दावली, नयी धरा पर नये विचार लाती है। छात्र का विश्वास जागने लगता है कि अब वह भाषा की आधारभूत जानकारी से परिचित है। हिन्दी फिल्मों की लोकप्रियता को देखते हुए कई बार उनसे भी सीखने-सिखाने में मदद मिलती है।

हंसादीप जी, आपने कहा कि हमें हिंदी को सरल बनाने की दिशा में काम करने की आवश्कता है। इस दिशा में आपके दृष्टिकोण से कौन-कौन से कदम उठाए जाने अपेक्षित हैं ?

हंसादीप : दीपक जी, मुझे इस बात का गर्व है कि हिंदी ने अपना दिल बहुत बड़ा किया है। वह हर ग्लोबल शब्द को जगह दे रही है। आज की तकनीकी उन्नति के साथ हिंदी कदम से कदम मिलाकर चल रही है। लेकिन यह उदारता हमें अपनी लिखित भाषा को बदलने के लिए मजबूर नहीं कर सकती। आए दिन हम अपनी लिपि में बदलाव ला रहे हैं। दूसरी भाषा के बहुप्रचलित शब्दों का

दिल खोलकर स्वागत करने के लिए अपनी लिपि को बदलना कहाँ तक उचित है। अन्य भाषाएँ तो ऐसा नहीं करतीं। अंग्रेजी के दबदबे से हम क्यों नहीं सीख सकते जो न जाने कितनी भाषाओं के प्रचलित शब्दों को साधिकार लेती है लेकिन अपने छब्बीस अक्षरों में कोई बदलाव नहीं करती। जो भी बदलाव करती है उन्हीं छब्बीस अक्षरों के दायरे में। वे ही छब्बीस अक्षर दुनिया भर के शब्दों को लिखते हैं चाहे फिर टोरंटो शहर का 'ज' हो या किसी तान्या नाम की लड़की का 'ज'। और निःसंदेह इन्हीं छब्बीस अक्षरों ने दुनिया में हल्ला मचा रखा है। यूँ हर भाषा के अस्तित्व को चुनौती देती अंग्रेजी भाषा पूरी दुनिया पर राज कर रही है। सपाट शब्दों में कहा जाए तो हिंदी में हमने धीरे-धीरे, एक-एक करके अपनी लिपि को जिस तरह बदला है, वे भाषा के सारे सौंदर्य प्रसाधन अपने "साइड इफेक्ट्स" की कहानी कह रहे हैं। गुस्सा बताने के लिए भी नुक्ता लगाकर गुस्सा लिखना पड़ता है। फिल्म और फेसबुक तो अंग्रेजी के शब्द हैं, वहाँ भी नुक्ता लगाना अनिवार्य कर देते हैं हम। शायद हमारे फल वाले 'फ' में इतनी ताकत ही नहीं कि वह फिल्म और फेसबुक को ध्वनि दे सके। पहले ही अक्षर के बीच में, ऊपर-नीचे, अगल-बगल, मात्राओं की, बिंदुओं की कमी नहीं है, तिस पर हर जगह नुक्ते ने अपनी जगह बना ली है। यह नुक्ता कब और कैसे अपनी जगह बनाकर नीचे टिकता गया पता ही नहीं चला। हिंदी की बिंदी तो ऊपर थी ही, नीचे ड और ढ की बिंदी थी। नुक्ते ने नीचे खाली जगह में अपनी जगह बना ली। हिंदी के भाषायी सौंदर्य प्रसाधनों की बढ़ोतरी होती ही जा रही है। बेचारे एक छोटे-से बच्चे को हम अंग्रेजी स्कूल में भेज रहे हैं। हिंदी के इतने अनुस्वार, मात्रा, नुक्ते, संयुक्त व्यंजन का रट्टा लगाकर वह कैसे ढंग से सीख पाएगा अपनी भाषा हिंदी! वह भी ऐसे में, जब उसकी पहली भाषा हिंदी को हम उसकी दूसरी भाषा बना चुके हैं, क्योंकि पहली भाषा के रूप में तो अब अंग्रेजी ही स्वीकार्य है हमें। इसीलिए वह हिंदी को अंग्रेजी में लिखकर अपना काम चला लेता है।

सारे हिन्दीदाँ को सोचने के लिए नहीं, परिवर्तन के लिए कदम उठाने हैं। चाहे शिक्षक हों या छात्र, लेखक हों या पाठक, कभी तो हम यह सोचें कि कहाँ हम हिंदी को सरल कर सकते हैं। दुःख के बीच से विसर्ग हटा कर दुख कर दें, या भगवान् में हलंत न लगाकर भगवान लिखें, या फिल्म से नुक्ता हटाकर फिल्म लिखें तो हमारी हिंदी का कतई अपमान नहीं होगा। हाँ, नए लिखने-पढ़ने वाले के लिए कम से कम तीन चीजें तो कम होंगी। तीन ही नहीं, ध्यान से सोचें तो ऐसे कई प्रयोग हम कर सकते हैं। यह हिंदी को रोमन लिपि में लिखने से

तो लाख दर्जा बेहतर होगा। इस बारे में आंशिक पहल कई संपादकगण कर चुके हैं, और शेष कर सकते हैं।

मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मैं एक खतरनाक मुद्दे को विषय बना रही हूँ। लेकिन विदेशी माहौल में हिंदी कक्षाओं के जीवित रखने के उत्साह को बनाए रखने के लिए ऐसे मुद्दों से हर रोज निपटना पड़ता है। मैं भी कट्टर हिन्दी प्रेमी हूँ और समय के साथ बदलावों को स्वीकार करने में अपना दिल और दिमाग खुला रखती हूँ। अपनी भाषा के मूल को जिन्दा रखते हुए उसे जितना सरल बना सकती हूँ, बनाने का प्रयास करती रहूँगी। सरलता लाने के लिए भी मानकता जरूरी है और उसके लिए हम सबके प्रयासों की जरूरत होगी। हिंदी के सरलीकरण को अपनाने की दिशा में ठोस कदम उठाने आवश्यक हैं। चीनी भाषा ने अपनी क्लिष्टता से मुक्ति के लिये 'सिमप्लीफाइड चाइनीज' को प्रोत्साहित किया है। इससे उनकी लिपि या भाषा खत्म नहीं हुई, सरल रूप में भावी पीढ़ियों ने इसे अपना लिया। हिंदी को हमें जीवंत रखना है तो सरलीकरण के नये प्रयोगों से कतराना नहीं, बल्कि उन्हें स्वीकारना होगा और सरलीकरण का मानक रूप घोषित कर सभी को अनिवार्य रूप से अपनाना होगा। तभी हम आज की हिंदी को सामयिक बनाकर भाषा की जीवंतता में वृद्धि कर सकते हैं।

आपने हिंदी अध्यापन के साथ-साथ अनेक अंग्रेजी फिल्मों के लिए हिंदी में सबटाइटल अनुदित किए हैं। इस प्रकार के सृजनात्मक कार्य से आपका जुड़ाव कैसे हुआ ? इस प्रकार का कार्य कथा लेखन में कैसे सहायक है?

हंसादीप : दीपक जी,जीविका की तलाश में यह नया कार्य बेहद सहायक एवं रुचिकर रहा। नये देश में सबटाइटल्स के अनुवाद का कार्य एक बेहतरीन अनुभव था जिसने भाषाओं की अपनी ताकत से रूबरू करवाया। एक बार अनुवाद कार्य शुरू किया तो एक के बाद एक फिल्में आती रहीं अनुवाद के लिये। अंग्रेजी फिल्मों के अनुवाद में फिल्म लगातार व बार-बार देखनी पड़ती थी ताकि स्त्रीलिंग-पुल्लिंग की पहचान समस्या न बने। कई ऐसे शब्द भी होते थे, जिनके लिये हिंदी शब्द ढूँढना टेढ़ी खीर होता था। तब भाषा विशेष की अपनी अभिव्यक्ति के महत्व का पता लगता था। जरा-सा भी फोकस हटा नहीं कि अर्थ का अनर्थ होना इतना सहज हो जाता था कि पकड़ पाना मुश्किल हो जाता। तब मैंने जाना सही अनुवाद करना एक बड़ी चुनौती है। मूल लेखक की भावनाएँ जो रचना में हैं उन्हें बगैर चोट पहुँचाए अन्य भाषा के दर्शकों तक पहुँचाना एक बहुत बड़ी कला है। अनुवादक शब्द से शब्द का नहीं बल्कि अर्थ से अर्थ का मिलान करे

तो ही अनुवाद बेहतर हो पाता है वरना मूल भाषा की मिठास उसमें नहीं बचती। साथ ही जिस भाषा में अनुवाद हो रहा है, उस भाषा के लोगों को यह पढ़ना-सुनना बनावटी-सा लगता है। अनुवाद की चुनौती को स्वीकार करके अनुवादक दो भाषाओं के बीच सेतु बनकर अपने कौशल से इस कार्य को सशक्त बनाता है।

अनुवाद कार्य ने मुझे न्यूयार्क और टोरंटो जैसे शहरों के बहुसांस्कृतिक माहौल को अपना कर यहाँ की जीवन शैली को गहराई से समझने में अत्यधिक योगदान दिया। इस रचनात्मक अनुभव ने लेखन में निश्चित ही सहायता की। मेरी सोच इस तथ्य को स्वीकार करने लगी कि कथातंतुओं को चुनते हुए किसी देश-काल की सीमाओं को नहीं बल्कि मनुष्य की भावनाओं को महत्ता दी जाए। मूल अंग्रेजी भाषा में बनी फिल्में हिंदी दर्शकों तक ले जाने का उद्देश्य एक लेखक के लिये संदेश दे जाता कि कला को सर्वकालिक और सर्वग्राही होना चाहिए। किसी चित्र की अनुभूतियों को चित्रकार समझाता नहीं है चित्र स्वयं समझाता है, वही संदेश लेखनकला के लिये कथाकार को अपनी कहानी को सीमाओं से परे रखने में मदद करता है।

किसी कहानी का कथ्य मिल जाने के बाद उस कथ्य को अभिव्यक्ति के स्तर तक पहुंचाने में कितनी छटपटाहट रहती है और यह प्रक्रिया कहाँ तक और कैसे आत्मसंतुष्टि तक पहुँचती है ?

हंसादीप : दीपक जी, लेखन प्रक्रिया में हर रचना की अपनी एक अलग अभिव्यक्ति शैली होती है। हो सकता है कि जिस तरह मैं सोचती हूँ और लेखन को आगे बढ़ाती हूँ वैसा और लेखकों के साथ न हो। मेरा अपना यह अनुभव रहा है कि अपनी किसी कहानी का कथ्य मिल जाने के बाद उस कथ्य को अभिव्यक्ति के स्तर तक पहुंचाने में रास्ता आसान होता है। कथ्य मिलने भर की देर होती है और वह तब होता है जब मुझे या तो कोई घटना बहुत अच्छी लगती है या बहुत तकलीफ देती है, उस घटना से जुड़े इंसानों का स्वभाव दिल को छूता है या फिर कचोटता है। बस वहीं कथ्य सामने होता है एक कहानी के रूप में। एकबारगी लगता है कि ऐसी घटनाओं पर तो बहुत लिखा जा चुका है पर फिर भी लेखनी चल ही जाती है। लेखन की छटपटाहट पीड़ा वाली नहीं होती कि 'बस अभी इसे खत्म करना है।' एक पैराग्राफ में वह कथ्य लिखकर सुरक्षित करने के बाद फिर समय मिलने पर विस्तार होता रहता है, क्योंकि परिवार और नौकरी की प्राथमिकताओं के बाद ही लेखन हो पाता है। कई बार ऐसे उलझ

जाना पड़ता है कि समय को पकड़ना मुश्किल हो जाता है। जब समय का वह टुकड़ा मेरी मुट्ठी में होता है तो यह मेरे लिये अपना समय होता है मन के अवकाश का, जब मैं अपने चरित्रों के साथ घुलमिल जाती हूँ। मुझे याद है जब बंद मुट्ठी उपन्यास लिख रही थी, तब उसके पात्र सैम और तान्या मुझे कक्षाओं के भीतर, बाहर, कॉफी शाप पर, हर जगह दिखाई देते थे।

आत्मतुष्टि ही रचनाकार का सबसे बड़ा सुख है, जब वह रचना आकार ले लेती है। प्रारंभ में तो शब्द छूटते हैं, अर्थ बिखरते हैं और भाव जुगाली भर करके रह जाते हैं। इन सबको साथ में लाने का प्रयास करना ही आत्मतुष्टि दे जाता है। जब तक स्वयं को संतुष्टि नहीं मिलती रचना पूरी नहीं होती। कई बार ऐसा होता है कि अपनी साल भर पहले लिखी कहानियों को पढ़ने का मन करता है। कई बार पात्रों के नाम भी वही सूझते हैं जो पहले आ चुके हैं। बहुत सामान्य रूप से बगैर किसी तनाव के ही लिखने का आनंद लेती हूँ मैं। समय की सीमाओं में बंधकर नहीं लिख पाती, न ही किसी तरह का दबाव स्वीकार्य होता है।

'प्रवास में आसपास' कहानी संग्रह की कहानियों के कथ्य में वैविध्य है, समाज के विविध रूप-रंग इसमें समाये हैं। कहानियाँ पढ़ते हुए पात्रों के संवाद में भारतीय दर्शन के आयाम परिलक्षित होते हैं, स्थान और पात्र तो विदेशी हैं पर विस्तार में भारतीय संवेदना है। प्रवास में भारतीय समाज और संस्कृति से जुड़ाव के संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

हंसादीप : जी, आपने सही कहा दीपक जी, सबसे पहली बात तो मैंने अपने जीवन के अड़तीस वर्ष भारत में गुजारे हैं और प्रवास में मैं अपने परिवार की पहली पीढ़ी में हूँ इसलिये भारतीयता मुझ में रची-बसी है। मेरे बच्चों ने अपने जीवन के आठ-दस साल भारत में गुजारे हैं, यह दूसरी पीढ़ी आंशिक रूप से जुड़ी है भारत से। लेकिन अब उनके बच्चे जिनका जन्म यहाँ हुआ है उनमें वह अंश ढूँढना चाहें तो न के बराबर मिलता है। कहने का तात्पर्य है कि पहली पीढ़ी के प्रवासी रचनाकार से यह अपेक्षा करना कि वह पूरी तरह विदेशी मानसिकता के साथ लिखे तो यह पूर्णतः असंगत प्रतीत होता है।

दूसरी बात, मैं कैनेडा के टोरंटो शहर में रहती हूँ और अमेरिका के न्यूयहर्क शहर में मैंने छह वर्ष बिताए हैं। दोनों ही शहर बहुसंस्कृति में रचे-बसे हैं। घर के आसपास कोई चीन से है कोई कोरिया से, कोई ईरान से, कोई बांग्लादेश से, कोई श्रीलंका से, हंगरी या फिर यूगांडा से। ऐसे में हर कोई अपनी संस्कृति वाले से जुड़ कर अपने त्योहार मनाता है हम भी वही करते हैं। शेष

लोगों से या ता काम के या फिर हाय-हलो वाले संबंध होते हैं। जर्मनी में पूरी तरह जर्मन संस्कृति या फिर रूस की तरह रूसी संस्कृति जैसी कोई एक संस्कृति इन शहरों की बसाहट में नहीं है। मेरा यह मानना है कि लेखक कहीं भी रहकर लिखे अपनी भावनाओं को बदल नहीं सकता। कई आलोचक मित्रों ने भी रचनाओं पर अपनी टिप्पणी देते हुए यह कहा है कि 'स्थान और पात्र तो विदेशी हैं पर विस्तार में भारतीय संवेदना है।' जहाँ तक मैं सोचती हूँ संवेदनाएँ कभी किसी देश की सीमाओं में बंध नहीं सकतीं। संवेदनाएँ तो मानवीय होती हैं देशों, पात्रों और नामों से परे। मेरी कोशिश यही होती है कि उन मानवीय संवेदनाओं को कहानियों में जगह दूँ। मुझे याद है एक कहानी को पढ़कर संपादक जी ने कहा था 'कहानी तो अच्छी है पर इसमें पता ही नहीं चलता कि पात्र किस देश के हैं।' मैंने इसे एक सुखद प्रतिक्रिया के रूप में स्वीकार किया था। रचना के पात्र देश-काल की सीमाओं से परे अपनी बता कह जाएँ तो बदलते देश-काल से परे रचना को मानवीय संदर्भों में परखा जा सकता है। आज भी लिखते समय मैं भारत, अमेरिका व कैनेडा के बारे में नहीं सोचती, शायद तब भी मैं सिर्फ मानवीय संवेदनाओं और सरोकारों को उकेर रही होती हूँ। तब मेरे लिये पात्रों के नाम व स्थान मायने नहीं रखते। यह आक्षेप भी मायने नहीं रखता कि विदेश में रहकर भी आपके लेखन में भारतीयता ही झलकती है। इसके अलावा भी, संवेदनाओं को समझने की शक्ति इंसान को अपने परिवेश से प्राप्त होती है, जो मैंने अपनी भारतीय जड़ों से ग्रहण की है, वह शायद कभी बदलने वाली नहीं है।

'उसकी औकात' कहानी में समाज में व्याप्त मौकापरस्ती और दोगलेपन का जीवंत चित्रण है। आपको इस कहानी का कथ्य कैसे मिला, क्या इस प्रकार का वातावरण आपके प्रवास वाले देश में भी विद्यमान है ?

हंसादीप : दीपक जी, मेरा यह सौभाग्य है कि दुनिया के तीन देशों, भारत, अमेरिका व कैनेडा में नौकरी करने का व कामकाजी माहौल से पूरी तरह परिचित होने का मौका मिला। भारत के कई अलग-अलग शहर तो मेरे कार्यस्थल रहे ही, न्यूयार्क और टोरंटो जैसे शहर भी मेरे कार्यस्थलों में एक विशेष स्थान बनाए रहे जहाँ दुनिया के हर देश के लोगों के साथ मेरा आमना-सामना हुआ, जिसने मुझे बाहरी दुनिया का अनुभव वैश्विकता के साथ दिया। इस अनुभव ने ही मुझे यह सोचने के लिये प्रेरित किया है कि संवेदनाएँ, चाहे फिर वे सद्भावनाएँ हों या दुर्भावनाएँ, मानव मात्र में मौजूद होती हैं। हाँ, इनका आवेग कभी कम तो

कभी ज्यादा हो सकता है। समाज में व्याप्त मौकापरस्ती और दोगलेपन का मानवीय चरित्र देश काल के अनुसार अपना आकार अवश्य बदलता है, स्वभाव नहीं। 'उसकी औकात' कहानी किसी जगह विशेष को नहीं मनुष्य की प्रवृत्तियों को उजागर करती है जो मुझे हर कहीं दिखाई दिए। यह कहानी कार्यस्थल के उन्हीं अनुभवों की एक छोटी सी झलक मात्र है। वैसे भी कथ्य मिलता है तो कहानीकार की कल्पना उसे सँवारती है, उसे कभी किसी रिपोर्ट की तरह नहीं लिखा जा सकता। वही कल्पना कथ्य को एक नया रूप दे पाती है। जो घटना का विवरण भर न रहकर एक रचनात्मकता लिये हुए होता है, फिर चाहे उसे जो भी नाम दिया जाए वह किसी जगह विशेष की घटना नहीं रह जाती।

आपकी दृष्टि में नारी-स्वातंत्र्य क्या है, और इसकी सीमाएँ कहाँ तक होनी चाहिए ?

हंसादीप : मेरी दृष्टि में दीपक जी, नारी-स्वातंत्र्य एक आंदोलन के रूप में नहीं बल्कि एक चुनौती के रूप में है कि अगर कोई भी इंसान, फिर चाहे वह नारी हो या पुरुष, अगर परतंत्रता की जंजीरों में जकड़ा हुआ है तो ही उसे स्वतंत्रता चाहिए और उसके लिये खुद उसी को प्रयास करने होते हैं। उसे अपने जीवन के लिये स्वयं ही कुछ करना होगा। नारी ने भी अपनी सामाजिक जंजीरों को तोड़ने के लिये स्वयं कदम उठाए हैं। जब-जब नारी ने यह प्रयास किया तब ऐसे किसी शब्द से उलझना नहीं पड़ा। वही आज भी हो रहा है। नारी इंसान ही है, जानवर नहीं कि कोई उसे बांध कर रख सके, या फिर उसकी स्वतंत्रता के लिये कोई सीमाएँ निर्धारित की जाएँ। यह तो उसीपर निर्भर है कि वह अपना जीवन कैसा चाहती है। क्या हमारे समाज ने पुरुषों के लिये कोई सीमाएँ तय की हैं, बिल्कुल नहीं तो फिर नारी की स्वतंत्रता के लिये सीमाएँ तय क्यों की जाएँ। तय करेगा कौन, उसे स्वयं तय करने का अधिकार है कि वह कैसे अपना जीवन जीना चाहती है। वह आज जहाँ तक पहुँच गयी है वहाँ तक किसी ने नहीं पहुँचाया है वह अपने स्वयं के प्रयासों से पहुँची है।

'अपने मोर्चे पर' कहानी में आपने सवि और नेहा के नारी-स्वातंत्र्य की पक्षधरता के माध्यम से पारिवारिक संबंधों में आने वाले परिवर्तन को दर्शाया है। क्या आप आधुनिक समाज में नारी-स्वातंत्र्य के कारण कोई विघटन को देखती हैं ?

हंसादीप : दीपक जी, 'अपने मोर्चे पर' कहानी में आज की नारी और आज की पारिवारिक स्थिति चित्रित है। आधुनिक परिवेश में जब नारियों को अपनी ताकत का अहसास हो गया है तो घर के पुरुष उनकी पूरी सहायता करते हैं। अब

कामों पर कोई ठप्पा नहीं लगा है कि घर में सफाई सिर्फ महिला करेगी या फिर खाना वही बनाएगी। जो भी, जिस समय, जो कुछ कर सकता है आपसी समझबूझ से, तो ही घर चलता है। पारिवारिक विघटन की कोई संभावना ही नहीं है जब दोनों मिलकर घर चलाएँ। निश्चित रूप से ये विघटन के संकेत नहीं हैं कि महिलाएँ बाहर जा रही हैं, अपितु ये बदलाव के संकेत हैं। महिला को अगर पुरुष का साथ चाहिए तो यही स्थिति पुरुष की भी हो कि उसे भी वैसा ही साथ चाहिए तो ही परिवार सशक्त बन सकेगा और जुड़ा रह सकेगा। आज के बदलावों में नारी और पुरुष को एक टीम की तरह जीना सीखने की जिम्मेदारी दोनों की है। 'अपने मोर्चे पर' कहानी में नारी के बढ़ते कदम उसे परिवार से विस्तृत फलक पर जोड़ रहे हैं, फिर वह बेटी या पत्नी की भूमिका में हो, अपनी बात कहने का और रोजमर्रा के कामों में अपनी सहभागिता से परिवार को बेहतर बनाने की उसकी कोशिश है, यह संगठन की शक्ति है, विघटन नहीं।

हंसा जी आपका कहानी संग्रह 'प्रवास में आसपास' हिंदी जगत में लोकप्रिय हो रहा है। आपको भी इस बात की सूचना होगी कि हाल ही में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इस संग्रह की समीक्षाएँ प्रकाशित हुई हैं। हिंदी समाज में इस संग्रह के स्वागत से आप कैसा महसूस करती हैं ?

हंसादीप : बहुत अच्छा लग रहा है दीपक जी, ठीक वैसा ही जैसा अपने बच्चों की प्रशंसा में कुछ कहा जा रहा हो। नौ महीनों की वह बेचैनी और छटपटाहट बच्चे के जन्म के साथ ही खुशियों में बदल जाती है, तो रचना का जन्म भी मन के कड़े संघर्ष के बाद ही हो पाता है। उसके बाद जब अपनी कृति पर सराहना मिलती है तो वह सारी पीड़ा याद नहीं रहती बल्कि पूर्णता का अहसास होता है। साथ ही, जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है कि अगली बार और अधिक परिश्रम करना होगा ताकि श्रेष्ठ रचनाक्रम की निरंतरता बनी रहे। यह कभी न खत्म होने वाली खुशी तो है ही साथ ही और, और लिखने व सराहना पाने की भूख भी जगा जाती है। प्रवास में आसपास कहानी संग्रह की प्रत्येक कहानी हिंदी साहित्य की सुस्थापित पत्रिकाओं में छप चुकी हैं व कई प्रतिक्रियाएँ मिल चुकी हैं। इन कहानियों पर मित्रों द्वारा की गयी कुछ ही टिप्पणियों को मैं संग्रह में स्थान दे पायी हूँ, व कई को सिर्फ धन्यवाद ही कह पायी हूँ। मित्रों के इस स्नेह की वजह से मेरा उत्साहवर्धन हुआ, मार्गदर्शन भी हुआ व रचनाओं को तराशने में मदद मिली। यही कारण है कि इस पुस्तक के आने के बाद मुझे पूरा विश्वास था कि इसका स्वागत होगा।

स्त्री-विमर्श और स्त्री-आंदोलन के संबंध में आपकी क्या धारणा है और साहित्य में इसे किस रूप में स्थान मिलना चाहिए ?

हंसादीप : स्त्री विमर्श व स्त्री आंदोलन पर मेरी सोच हमेशा इसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार करती है। सदा से स्त्रियों के साथ अन्याय होता रहा है जिसे बरसों पहले भी साहसी स्त्रियों ने चुनौती के रूप में लिया व अपने अधिकारों के लिये सफलतापूर्वक लड़ती रहीं। आज भी आंदोलन का चाहे कोई भी स्वरूप क्यों न हो हर स्त्री को स्वयं ही आगे आना पड़ता है व अपने अधिकारों के लिये लड़ना पड़ता है, तो ही वह अपनी लड़ाई में जीत सकती है। जहाँ यह सजगता है वहाँ किसी आंदोलन की नहीं, हिम्मत की जरूरत है। परंपराओं के नाम पर थोपे गए सामाजिक बंधनों को तोड़ना भी है और परिवार को विघटित भी नहीं होने देना है। स्त्री-पुरुष परिवार की गाड़ी के दो पहिए हैं। फिर दोनों में से कोई भी एक खुश नहीं तो गाड़ी अटक ही जाएगी और परिवार टूट जाएगा। यह पारिवारिक विघटन आने वाली कई पीढ़ियों को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। यह घर की चहारदीवारी के भीतर की समस्या है कोई तीसरा इसे सुलझा ही नहीं सकता। इसीलिये परिवार के दोनों पहिए आपसी तालमेल से ही अपनी गाड़ी चला सकते हैं। तब किसी आंदोलन से नहीं बल्कि आपसी समझदारी व सूझबूझ से ही घर की नींव मजबूत होगी।

मुझे इस बात का गर्व है कि आज अधिकांशतः महिलाएँ अपना रास्ता तय कर रही हैं, परिवार के साथ। अपवादों की संख्या आज भी काफी है जहाँ उसे पिसना पड़ रहा है लेकिन तेजी से आता बदलाव हमें इस बात का संकेत अवश्य दे रहा है कि गाँवों, कस्बों और महानगरों में परिवर्तन की हवा तेजी से बह रही है। महिलाओं के प्रति अन्याय, शोषण यह सदियों से चली आ रही एक सामाजिक समस्या है। और 'साहित्य तो समाज का दर्पण है', इसलिये समाज की विसंगतियों को साहित्य में स्थान तो मिलता ही है, तो स्वाभाविक ही यह साहित्य का हिस्सा है। चाहे कोई स्वीकार करे या न करे स्त्री विमर्श आज एक सार्थक बहस के रूप में अपना स्थान ले चुकी है।

हंसा जी आपको 'कुबेर' उपन्यास का कथ्य कैसे मिला, और इसकी रचना प्रक्रिया में क्या उतार-चढ़ाव आये ? कहीं यह अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने की मेहनती दृ ढ़ इच्छा शक्ति का परिणाम तो नहीं ?

हंसादीप : दीपक जी, कुबेर उपन्यास बरसों से मेरे मस्तिष्क में था। पिछले वर्ष इसे जब पूर्ण किया तो मुझे लगा कि मैं जो कहना चाहती थी वह मैंने पूरे न्याय

के साथ कह दिया है। उतार-चढ़ाव तो बहुत थे, जो मनःस्थिति को प्रभावित करते थे, अमूमन ऐसा होता है जब कहानी ढाई सौ पृष्ठों में जा रही हो। लेकिन ऐसे कई मोड़ आए जो मुझे बहुत कुछ सिखा कर गए। उपन्यास को विस्तार देते हुए कई ऐसी घटनाएँ होती हैं जो कहानी का हिस्सा बनकर अनायास ही शामिल हो जाती हैं। और तब, यह भी लगता है कि पाठक के लिये बहुत कुछ ऐसा न हो जाए जो पूरी तरह से नया हो। उपन्यास का अधिकांश हिस्सा अमेरिका के न्यूयहर्क शहर के घटनाक्रमों को चित्रित करता है। स्वाभाविक ही एक सवाल उठता था मनोमस्तिष्क में कि भारत के वृहत हिंदी पाठक वर्ग को इसमें शामिल होकर कहानी के मर्म को पकड़ना आसान होगा या नहीं। न्यूयार्क शहर की जानकारी देते हुए वहाँ के व्यावसायिक जगत से परिचित करवाना एक साहसिक व जिम्मेदारी पूर्ण कदम था। उस सामग्री को सरल-सहज व सुग्राह्य बनाने के लिये भी अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता महसूस की मैंने। यही कारण था कि न्यूयहर्क शहर की पेशेवर जिंदगी के बारे में विवरण देते समय बहुत सावधानी बरतनी पड़ी। लेकिन मुझे इस बात की खुशी है कि प्रतिक्रिया उत्साहवर्धक रही। कई आलोचक मित्रों ने यह भी कहा कि ऐसे आदर्शवादी लोग होते कहाँ हैं, आपके उपन्यास में आदर्शों की भरमार है। जवाब में, मैं सिर्फ यही कह पायी कि मैंने यह पुस्तक माननीय कैलाश सत्यार्थी जी को समर्पित की है, उनके जैसे आदर्श चरित्र को ही तो लाना था मुझे। आज उनके जैसे कई चरित्र हैं जो समाज के लिये स्वयं को समर्पित कर चुके हैं। जब ऐसे कई चरित्र हैं हमारे समाज में तो आखिर क्यों सिर्फ बुराइयों का चित्रण ही एक अच्छी रचना का मापदंड हो।

कुबेर उपन्यास में गरीबी और अमीरी, दो सभ्यताओं में पिसते मानवीय मूल्यों का उदघाटन करता है और कथानक इतना रोचक बन पडा है कि अब आगे क्या होगा जानने की इच्छा पाठक को लगी रहती है। कृपया इस उपन्यास की कथा-बुनावट के अपने अनुभवों को साझा कीजिए।

हंसादीपः दीपक जी, मैं भारत, मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले से हूँ, आदिवासी बहुलता वाले इस क्षेत्र में गरीबी को मैंने अपनी आँखों से देखा है। आज से साठ साल पहले मेरे छोटे-से गाँव मेघनगर में न कोई कान्वेंट था, न कोई निजी स्कूल। सरकारी स्कूलों की जर्जर हालत और बहनजी के रौब से चुपचाप पढ़ते बच्चे तब कुछ बड़ा सोच ही नहीं सकते थे। जो है उसी में खुश थे। आज यहाँ एक विकसित शहर टोरंटो में रहने वाले के लिये उन दिनों वहाँ की जो स्थिति

थी वह अकल्पनीय है। यही कारण है कि वहाँ से मेरा पात्र निकल कर ऐसी जगह पहुँचा जहाँ आज मैं हूँ, या मेरा परिवार है। मेहनत व दृढ़ इच्छाशक्ति से ही तो मैं झाबुआ जिले में पली-बढ़ी, शिक्षित हुई और आज टोरंटो की जानी-मानी यूनिवर्सिटी में पढ़ा रही हूँ। मैं आज से पचास-साठ साल पहले के सरकारी स्कूलों की उपज हूँ, यहाँ तक पहुँची हूँ, तो किसी चमत्कार से तो पहुँचना संभव नहीं था। ठीक इसी तरह जब कुबेर का पात्र धन्नू न्यूयहर्क शहर के रईसों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता है तो कहीं न कहीं मैं अपनी कहानी को रचनात्मक बना रही होती हूँ। जिसमें मुझे सच्चाई अधिक और कल्पना कम लगती है। तब मेरा पात्र धन्नू सिर्फ एक आदर्श नहीं रहता, बल्कि यथार्थ की ही अभिव्यक्ति करता है। मैंने झाबुआ की गरीबी को करीब से देखा है तो लोगों का निठल्लापन भी देखा है। संदेश यही देना चाहती थी कि काम करो, अपनी गरीबी दूर करो। प्यासे को पानी तक ले जाया जा सकता है मगर पीने को बाध्य नहीं किया जा सकता। गरीबी का चरम देखने, महसूसने के बाद मैंने अमेरिका की अमीरी को बेहद करीब से देखा है। मेरा पात्र धन्नू बनाम डीपी, भारत से न्यूयार्क जब पहुँचता है तो वहाँ की भव्यता से नहीं अपनी मेहनत से कामयाब होता है। तब मैं यह संदेश देना चाहती थी कि मैं गरीब हूँ, मैं गरीब हूँ चिल्लाने से कोई अमीर नहीं होता। स्वयं मेहनत करनी पड़ती है। इसके साथ ही, अमेरिका के कई शहरों में बड़े-बड़े टावर देखती थी जिन पर व्यक्ति विशेष के नाम लिखे हुए रहते थे। न्यूयार्क में, लास वेगस में हर जगह ऐसे टावर को देखते दौलत की चकाचौंध को महसूस किया था। तभी मैंने कल्पना की थी कि एक देसी कुबेर लाना है मुझे, जो राजनीति के गलियारों से दूर एक समाजसेवी होगा और अपने कमाए पैसों का उपयोग समाजसेवा में करेगा और ऐसे कई टावर अपने शीर्ष पर उसके नाम के साथ शान से खड़े होंगे। बस तभी से यह विचार फल-फूल रहा था। एक सफल व्यवसायी अपनी मेहनत व दिमाग से ही उस जगह पहुँचता है। कुबेर के लिये मेरे दिमाग में सिर्फ अमेरिका के नहीं भारत सहित दुनिया भर के कई समाजसेवी थे जो आज खुद इतने समर्थ हैं कि धनवानों की सूची में लगातार रहते हैं, अपनी मेहनत से व अपने श्रम से कमायी गयी दौलत से जी भर कर समाजसेवा कर रहे हैं। लिखते-लिखते कई नए विचार आए-गए और देसी कुबेर की छवि लेकर मुझे झिंझोड़ते रहे। मार्क जुकरबर्ग भी सामने आए, बिल गेट्स भी नजरों में रहे। और भी कई व्यावसायिक चेहरे थे, जो मेरा रास्ता आसान करते रहे। इन सब महारथियों ने अपने बलबूते पर बहुत कमाया और समाजसेवा में लगाया। आदर्शों को देखने के लिये हमें किसी और युग में जाने

की जरूरत नहीं हमारे सामने आज कई ऐसे उदाहरण हैं। इस चुनौती से लड़ते, अपने कुबेर को संघर्ष करते देखते, लगभग एक साल लगा मुझे कहानी को वहाँ तक पहुँचाने में।

मैं अपने लेखन में सकारात्मकता की पैरवी करती हूँ, गरीबी से लड़कर कोई आगे आता है तो यह कोई आदर्श नहीं, यथार्थ है। शू पॉलिश कर या फिर खिचड़ी बनाकर जीविका अर्जन करके जब ये लोग अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं, दुनिया चमत्कृत महसूस करती है, तब मेरा कुबेरमयी विचार सार्थक हो जाता है। कुबेर आज की दुनिया का यथार्थ है सिर्फ आदर्श नहीं है और अगर आदर्श भी मान लिया जाए तो सकारात्मक संदेश भी तो एक पहलू है जीवन का। मुझे खुशी है कि कुबेर ने आलोचना के क्षेत्र में हलचल की है और मुझे अपने खट्टे-मीठे स्वाद से परिचित करवाया।

हंसादीप जी आपने भारतीय और अंतरराष्ट्रीय परिवेश में जीवन जिया है। आप इन दोनों परिवेशों में नारी-जीवन की स्थितियों में क्या अंतर पाती हैं, और इस अंतर को हिंदी पाठकों तक पहुंचाने के प्रयास में आप कहाँ तक सफल रही हैं ?

हंसादीप : दीपक जी, विश्व के अत्यधिक गरीब और पिछड़े इलाके से लेकर विश्व के अत्यधिक धनी और विकसित इलाके में रहकर मैंने यह अनुभव किया है कि स्त्री बहुत शक्तिशाली है। 'नो मीन्स नो', 'मी-टू' जैसे शब्दों ने तो हमें अब ताकत दी है लेकिन वर्षों पहले भी झाँसी की रानी थी, आज भी कोई कमी नहीं हैं झाँसी की रानियों की। फर्क सिर्फ इतना है कि लड़ने के लिये उनके सामने फिरंगी नहीं हैं, उनके अपने हैं और वे खुद्दारी से लड़ रही हैं। हम सब खुली आँखों से देख रहे हैं कि आज की महिलाएँ पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं।

भारतीय स्त्री और पश्चिमी स्त्री के संदर्भ में मैं एक ही बात कहना चाहती हूँ कि दोनों के क्षेत्र अलग हैं पर मूलभूत मानसिकता वही है। मसलन, आज के भारत की बात न करूँ तो भी आज से साठ साल पहले भी, जिस गाँव में मैंने जन्म लिया वहाँ भी पुरुष सत्ता तो थी पर सारे अधिकार तो महिलाओं के पास थे। वे मना कर दें तो मजाल है कि कोई कदम उठा लिया जाए। मान भी लें कि यह हमारे घरों में था पर यकीन मानिए कि एक आदिवासी युवती भी जो उस जमाने में हमारे घर काम करती थी, वह भी आए दिन शराब पीए हुए अपने पति की पिटाई कर देती थी और फिर इसलिये रोती थी कि 'वह ऐसा काम करता है कि मुझे उसे मारना पड़ता है।' और फिर आज की बात करते

हुए विदेश में पली कई लड़कियों को देखती हूँ... वे सारे अंदर-बाहर के काम विशेषज्ञता के साथ करती हैं। एक नहीं हजारों काम, यह सब वे कैसे कर पातीं अगर अपने साथी पति से उनकी आपसी समझ, साथ-साथ बढ़ने की नहीं होती। नारी-पुरूष की इस समानता के उदाहरण बहुलता से हमारे आसपास मिल जाएँगे। बेशक, तब यह धारणा बलवती होती है कि किसी भी देश में और किसी भी परिवेश में, नारी अगर ठान ले, तो स्वयं को एक पिलर की तरह मजबूत बना लेती है। यह हर उस महिला ने किया है जो अपने पैरों पर खड़ी है और रचनात्मक कार्यों से स्वयं को ऊर्जित कर रही है। मैं एक बात स्पष्ट कर दूँ कि मैं बलात्कार पीड़ितों या फिर घरेलू हिंसा जैसे बिंदुओं को यहाँ सम्मिलित नहीं कर रही हूँ क्योंकि वे अपराध हैं और उन्हें अपराधों की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। अशिक्षा की वजह से भारतीय नारी ने बहुत कुछ झेला है, कठिन परिस्थितियों का सामना किया है व आज एक ताकत के रूप में उभर कर सामने आयी है। भारतीय नारी ताकत हो या विदेशी नारी ताकत, अब तो सब परदे से बाहर आकर पूरी ताकत से काम कर रही हैं। आज की स्त्री इतनी सक्षम हो गयी है कि स्वयं अपनी लड़ाई लड़ने के लिये आगे आ रही है। चाहे ठेठ देहात हो या महानगर, महिला स्वयं जागरुक होकर, अपने पंखों से उड़ान भरने के लिए खुद ही आकाश में छलांग लगाने को तैयार हो रही है। शायद इसी कारण मेरे नारी पात्र असहाय नहीं होते, रोते-गाते बैठे नहीं रहते, जो करते हैं अपने साहस और कर्मठता से करते हैं। हाँ, कहीं-कहीं पुरुषों पर हावी होते महिला पात्र भी हैं, जो मुख्यधारा से अलग अपनी सच्चाई को उजागर करने का दुःसाहस करते हैं।

आज अमेरिका या कनाडा में ही नहीं, भारत में भी कामकाजी दंपत्ति एक साथ किचन में काम करके एक साथ बच्चों का, घर का दायित्व निर्वहन कर रहे हैं। जीवन के अलग-अलग पड़ावों पर, अलग-अलग देशों के अनुभवों से मैंने महसूस किया है कि भारतीय स्त्री अधिक मजबूत है, अधिक मेहनती है, अधिक समझदार व होशियार भी है। इसका सबसे बड़ा कारण है उसकी कर्तव्यपरायणता एवं वह संस्कृति जिसमें उसने साँसें ली हैं। उसके कंधे इतने मजबूत हैं कि घर और बाहर दोनों जगहों का काम करके घर को, समाज को और देश को सँवारने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। हर इंसान को अपने रास्ते खुद ही बनाने पड़ते हैं। अगर मैं कहूँ कि यहाँ अधिक आजादी है भारत में नहीं तो वह सिर्फ शिक्षा का ही अंतर होगा। आज जैसे-जैसे भारत में नारी शिक्षित हो रही है, वैसे-वैसे उसके रास्ते आसान हो रहे हैं। परतंत्रता व निर्भरता

की बेड़ियाँ ही नहीं हों तो फिर स्थिति खराब हो ही नहीं सकती। मैंने अनुभव किया है कि भारतीय या अंतरराष्ट्रीय, कैसा भी परिवेश हो अगर नारी अपने स्व के साथ जीना चाहती है तो अपनी स्थिति में सुधार कर ही लेती है।

साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है। इस संदर्भ में कथा-साहित्य के विभिन्न पात्रों के साथ सामंजस्य बनाने में निजता का क्या प्रभाव होता है ?

हंसादीप : मैं सोचती हूँ दीपक जी कि लेखक कहीं से भी कथ्य ले, किसी भी पात्र को अपनी कहानी में स्थान दे, उसे वह ज्यों का त्यों चित्रित नहीं करता। उसमें लेखक की कल्पना उसकी विचारशीलता व उसकी सोच सदैव ही हावी रहती है। उस चरित्र के साथ लेखक इतना घुलमिल जाता है कि तब उसे यह ध्यान नहीं रहता कि यह उसकी कहानी का चरित्र है, वह स्वयं नहीं। मुझे याद है जब मैं बंद मुट्ठी उपन्यास लिख रही थी तब मुझे कक्षा में, कक्षा से बाहर हर जगह सैम और तान्या दिखाई देते थे। वह मेरी कल्पना थी और मैं ही उसे साकार रूप में देखती थी। कहानी पढ़ने के बाद भी किसी और को वे पात्र वहाँ दिखाई नहीं देंगे।कहने का तात्पर्य है कि वे लेखक के अपने बनाए हुए पात्र हैं, चरित्र हैं जो कहानी के साथ-साथ, लेखक के साथ भी कदम से कदम मिलाकर चलते हैं। बहुत कुछ बाहरी दुनिया का होने के बावजूद लेखक की अपनी सोच का मुलम्मा तो कथ्य पर चढ़ता ही है। समाज की सोच, समाज की विसंगतियाँ और समाज के संगठन-विघटन के तार्किक पहलुओं के साथ लेखक की अपनी अनुभूतियाँ उजागर होती हैं।वैसे भी लेखक जो लिखता है वह किसी वाद के घेरे में बंधकर नहीं लिखता, अपने आसपास जो देखता है वही लिखता है, उन पात्रों को अपने भीतर जीने की आजादी दे कर, वह अपनी रचना को पूर्णता देता है।

वर्तमान समय में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार में नवीनतम सूचना-प्रौद्योगिकी तकनीक का क्या योगदान है ?

हंसादीप : दीपक जी,सूचना-प्रौद्योगिकी तकनीक के कारण ही मेरा आपसे परिचय हुआ। भारत से 1992 में जब मैं न्यूयार्क आयी थी तब भारत में पत्र-पत्रिकाओं व लेखन से संपर्क लाख चाहने पर भी नहीं रह पाया था। एक-दो साल तक रचनाएँ डाक से भेजीं लेकिन वे कहीं पहुँची ही नहीं। और तब, सिर्फ यहाँ की स्थानीय पत्रिकाओं में ही अपनी रचनाएँ भेज पाती थी। अब लेखन की निरंतरता इसलिये भी है कि हम ईमेल से रचनाएँ भेज पा रहे हैं, वे निरंतर प्रकाशित हो रही हैं व समकालीन रचनाकारों तक, समालोचकों तक पहुँचने लगी हैं। सोशल

मीडिया पर कई रचनाकार मित्र बन रहे हैं और इस तरह एक दूसरे की सराहना से रचनाधर्मिता को प्रोत्साहन मिल रहा है। सूचना-प्रौद्योगिकी तकनीककी वजह से, हिंदी को ग्लोबल देखकर बहुत अच्छा लग रहा है। हिंदी भाषा से संबंधित हर चीज अब सर्वसुलभ है, हर चीज अब आनलाइन उपलब्ध है। हिंदी भाषा पढ़ाई जा रही है, आनलाइन कक्षाएँ भी हो रही हैं, यूट्यूब पर सीखने के लिये कई वीडियो लगाए जा रहे हैं। किसी भी शब्द की जाँच-परख करनी हो तो गूगल कर लो। सब कुछ तो उंगलियों की पोरों तक सिमट कर आ गया है। यहाँ तक कि कई साहित्यकारों की रचनाएँ भी ऑनलाइन उपलब्ध होने से साहित्य का प्रचार-प्रसार तेजी से हो रहा है। कोई एक श्रेष्ठ रचना कहीं प्रकाशित होती है तो तुरंत इच्छुक पाठक उसका आस्वादन कर लेते हैं व अपनी राय भी जाहिर कर देते हैं। मैं सोचती हूँ कि इससे अच्छा प्रचार-प्रसार पहले कभी था ही नहीं जो आज है व उम्मीद करती हूँ कि यह बेहतर बनेगा।

हंसा जी बंद मुट्ठी उपन्यास में कथानक तो भारत, सिंगापुर और कनाडा के परिवेश का है पर तान्या के माता-पिता का चरित्र भारतीय समाज की रूढ़िवादी और परम्परावादी मानसिकता को प्रदर्शित करती है। क्या आप सहमत हैं ?

हंसादीप : बंद मुट्ठी उपन्यास में कथानक के अनुसार तान्या के माता-पिता ने अपने जीवन के कई साल भारत में ही बिताए हैं। ऐसी स्थिति में उनकी सोच पूरी तरह से भारतीय है। निःसंदेह, एक परिपक्व उम्र के बाद अपनी सोच बदलना मुमकिन नहीं हो पाता। चाहे आप किसी भी देश में चले जाएँ, अपनी वेशभूषा, अपनी भाषा बदली जा सकती है लेकिन विचारों और संस्कारों की गहरी पैठ को बदलना संभव नहीं हो पाता। और खासतौर से तब, जब वह बच्चों की शादी से या उनके जीवन से जुड़ी हो तो उस सोच को बदलना चाहकर भी नहीं बदल पाते माता-पिता। मेरे ख्याल में, उनके इस चरित्र को लाते हुए मैं अपने बारे में सोचती थी कि मेरे अंदर जिन सिद्धांतों को जगह मिल गयी है, क्या वह कभी खत्म हो सकती है, शायद नहीं। एक छोटा सा उदाहरण दूँ आपको... जैसे कि बचपन से जैन परंपराओं का पालन करते हुए शुद्ध शाकाहारी खाना खाया है तो भारत छोड़ने के बरसों बाद भी आज तक कभी जैन भोजन पद्धति को छोड़ा नहीं। यहाँ के माहौल में भी आज तक कभी अंडे वाले केक को छू नहीं पायी, तो किसी माँसाहारी चीज को खाने के बारे में सोचने का तो सवाल ही नहीं उठता। तो अगर कोई स्थिति मेरे साथ ऐसी होती तो मेरी प्रतिक्रिया थोड़ी कम,या थोड़ी अधिक, शायद वैसी ही होती जैसी तान्या के

माता-पिता की थी। इन रिश्तों को स्वीकार कर लेना एक अलग बात होती है और मन से अपना लेना दूसरी बात। इसे हम चाहें तो संकुचित मानसिकता कह सकते हैं लेकिन समय के साथ इस भावना की तीव्रता निश्चित रूप से कम हो जाती है। समय तो बड़े से बड़े घावों को भरने में सक्षम होता है। और यही बात होती है तान्या के माता-पिता के साथ। जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता है वैसे-वैसे उनका गुस्से का आवेग घटता जाता है। वे अपनी नातिन रिया से बातें करके तान्या तक पहुँचने की कोशिश करते हैं और रिश्तों की डोर को टूटने नहीं देते।

इस उपन्यास में तान्या की विपरीत परिस्थितियों में सैम की सकारात्मक सोच और पत्नी के प्रति समर्पण से समाज में आप बताना चाहती हैं कि दाम्पत्य जीवन में स्त्री और पुरुष का सकारात्मक दृष्टिकोण सब दुःखों का निवारण कर देता है।इस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

हंसादीप : दीपक जी, किसी एक जीवनसाथी का सकारात्मक सोच एक हद तक परेशानियों को, दुःखों को कम कर देता है और तब रिश्तों की उलझनों का खिंचाव निश्चित रूप से कम होता है। अगर दोनों ही नकारात्मक रहें तो फिर टूटन के सिवा कुछ नहीं बचता। यही कारण था कि विपरीत परिस्थितियों में भी सैम के संपूर्ण साथ से तान्या अपने निर्णयों पर अटल रह पायी और आखिर में प्यार की जीत हुई। यह इंसान की फितरत में शामिल है कि वह बुरा पहले सोच लेता है। जिससे अधिक प्यार करता है उसे लेकर बुरी भावनाएँ हमेशा पीछा करती हैं। इसी कारण चाह कर भी समझौता नहीं कर पाता परिस्थितियों से। ऐसी भावनाएँ अमूमन नारी जाति की सोच में अधिकता लिये हुए होती हैं। तान्या, तान्या की मम्मी ये उदाहरण हैं कि वे एक दूसरे से बहुत प्यार करते हैं इसीलिये दूरगामी बुरे ख्याल उनका पीछा नहीं छोड़ते और रिश्तों में खिंचाव लगातार बना रहता है। जिससे अधिक लगाव नहीं उसके बारे में अच्छे-बुरे ख्यालों के कोई मायने होते ही नहीं। तान्या की नकारात्मकता को सैम एक हद तक दूर करता है, लेकिन तान्या की मम्मी को उसके पिता के द्वारा ऐसा कोई समर्थन नहीं मिलता, बल्कि और अधिक उकसाया जाता है। निश्चित ही सैम की सकारात्मकता से दाम्पत्य जीवन बना रहा, वरना टूटने की कगार पर तो खड़े ही थे वे दोनों।

'बंद मुट्ठी' उपन्यास की कथा तान्या और सैम की जिस छटपटाहट से शुरू होती होती है, समापन में वह दुगुनी खुशी या उत्साह में बदल जाती है। इस कथ्य की पृष्ठभूमि में कौन-सी घटना रही है ?

हंसादीप : दीपक जी, सच कहूँ तो बंद मुट्ठी उपन्यास की कहानी के इस समापन पर मेरी अपनी सोच का प्रभाव लगता है क्योंकि मैं एक आशावादी इंसान हूँ। किसी को मैं दुःख में छोड़कर अलग नहीं हो पाती, ऐसा ही संबंध अपने पात्रों के साथ भी बन जाता है। यही वजह थी कि जितने तनाव की स्थिति में मैं उपन्यास शुरू करती हूँ, खुशी के पड़ाव पर आ कर पात्रों से विदा लेती हूँ। शुरू से आखिर तक सैम और तान्या एक मानसिक द्वंद में लगातार रहते हैं। जिस तरह लगातार द्वंद में कहानी आगे बढ़ती है उसमें खुशी आना जीवन का एक हिस्सा है। सकारात्मक सोच जीवन मूल्यों को बेहद प्रभावित करती है, लेखक को भी, पाठक को भी। और फिर उपन्यास का कैनवास इतना बड़ा होता है कि अंत तक आते-आते अगर कोई घटना होगी तो भी वह प्रवाह के साथ बदलने का सामर्थ्य रखती है। पात्रों का व्यवहार, चरित्र सब कुछ किसी न किसी बदलाव के साथ उपस्थित होने लगता है। कभी-कभी भाषायी प्रयोग भी यह अहसास दिलाते हैं कि पात्रों में किस करवट बैठने की क्षमता है। तो मैं यही कहूँगी कि कोई एक घटना नहीं, घटनाओं की कतार होती है जो प्रारंभ और अंत के बीच में आकर अपना प्रभाव छोड़ जाती हैं।

'बंद मुट्ठी' में आपने अनेक सूक्तियों में भी अपनी बात की है, पर मेरे विचार से इस उपन्यास के कथा की मूल उक्ति है- 'बच्चों की खुशी में खुश रहना ही माँ का प्यार है।'

हंसादीप : सदा से ही पीढ़ियों का अंतर रहा है दीपक जी, और रहेगा। इन दिनों वह खाई और भी अधिक बढ़ गयी है जब सोशल होने के कई अन्य साधन युवा पीढ़ी के लिये उपलब्ध हो रहे हैं। बच्चों के पास अपनी खुशियों को ढूँढने के कई तरीके हैं जिनकी भूलभूलैया में खोकर वे अपने जीवन को गलत दिशा में ले जा सकते हैं। इसी बात का डर माता-पिता को खाए जाता है और वे कठोर हो जाते हैं। समय की माँग है कि बच्चे बदल रहे हैं तो माता-पिता को भी बदलना चाहिए। इस उपन्यास में तान्या की सुखी जिंदगी भी माता-पिता को खुश नहीं कर पा रही थी। तब शायद एक अहं था, जो रिश्तों के बीच में आ रहा था। जैसे ही उस अहं का भाव मद्दम होता है रिश्ते सुलझने लगते है। निश्चित ही मैं यह नहीं कहना चाहती हूँ कि बच्चे हमेशा सही होते हैं या

माता-पिता हमेशा सही होते हैं लेकिन कई बार ऐसा होता है कि बड़ों को बच्चों की खुशी के लिये अपने स्व को छोड़ना पड़ता है व कई बार बच्चे भी अपनी खुशियों से परे हटकर माता-पिता के बारे में सोचते हैं। ताली दोनों हाथों से ही बजनी चाहिए, लेकिन कभी-कभी दूसरे हाथ को थोड़ी प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है, चाहे फिर वह एक हाथ बच्चों का हो या फिर माता-पिता का हो।

यह उपन्यास जहाँ कनाडा के प्राकृतिक जीवन की जानकारी देता है वहीं यहाँ अध्ययन के लिए आने वाले विद्यार्थियों की विविध समस्याओं को भी उठाता है। क्या विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान परमानेंट रेसीडेंसी से संभव मानती हैं ?

हंसादीप : चूँकि बंद मुट्ठी उपन्यास के दोनों प्रमुख पात्र, तान्या व सैम यूनिवर्सिटी के इंटरनेशनल छात्र हैं। मेरा सामना इन छात्रों की मजबूरियों से आए दिन होता रहता है, इसलिए मेरे लिये इन छात्रों की इस बड़ी समस्या पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना जरूरी था, जो वास्तव में माता-पिता के लिये भी एक बड़ी धनराशि की व्यवस्था लगातार चार सालों तक करते रहने की विवशता को कुछ हद तक राहत देता है। इन विद्यार्थियों की सबसे बड़ी समस्या होती है आर्थिक बोझ। इंटरनेशनल छात्रों की फीस के आँकड़े आसमान को छूते हैं। उस पर रहना-खाना-आना-जाना सब मिलकर इस बोझ को बढ़ाते ही रहते हैं। इसे कम करने के लिये काम करने के अवसर भी बहुत कम होते हैं, क्योंकि उनके पास वर्क परमिट नहीं होता। इस वजह से इन छात्रों के बाहर काम करके कुछ पैसा कमाने के अवसर सीमित हो जाते हैं। इसका एक ही सरल उपाय हो जाता है परमानेंट रेसीडेंसी। तब फीस तो कम होती ही है, बाहर काम करने के अवसर बहुत अधिक मिलते हैं, साथ ही पढ़ाई करते हुए कई जगहों पर काम का अनुभव आगे जाकर काफी मदद करता है। इसके अलावा भी, यहाँ से पढ़ाई खत्म करने के बाद 95 प्रतिशत छात्र यहीं रहकर अपना काम करते हैं। ऐसे में डिग्री मिलते ही कागजात तैयार हों तो तत्काल नौकरी मिल जाती है। चूँकि कागजात बनने में साल-दो साल समय तो लगता ही है, इसीलिये अपने दूसरे या तीसरे साल तक कई छात्र परमानेंट रेसीडेंसी के लिये आवेदन कर देते हैं, ताकि डिग्री मिलते ही वे काम करना शुरू कर सकें। ऐसा भी नहीं है कि परमानेंट रेसीडेंसी हो तो कोई समस्या नहीं रहती, पर हाँ एक बड़े मुद्दे को अपना समाधान मिल जाता है। कोई जरूरी नहीं कि परमानेंट रेसीडेंसी लेने के बाद वे यहीं रहें, चाहें तो कभी भी जा सकते हैं, लेकिन इस लंबे समय को कागजात बनवा कर कुछ हद तक आरामदेह बना सकते हैं, जैसे कैंपस के छोटे कमरों के आवास से बाहर

निकलकर बाहर कोई फ्लैट किराए से लेकर रह सकते हैं, या फिर गर्मियों के अवकाश में पूरे समय काम करके अपनी फीस का जुगाड़ कर सकते हैं। बस यही कारण था कि मैंने परमानेंट रेसीडेंसी के इस बिंदु को कहानी में जगह दी थी।

-सहायक निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली 110066

सठियाई औरत

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-9-2

संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

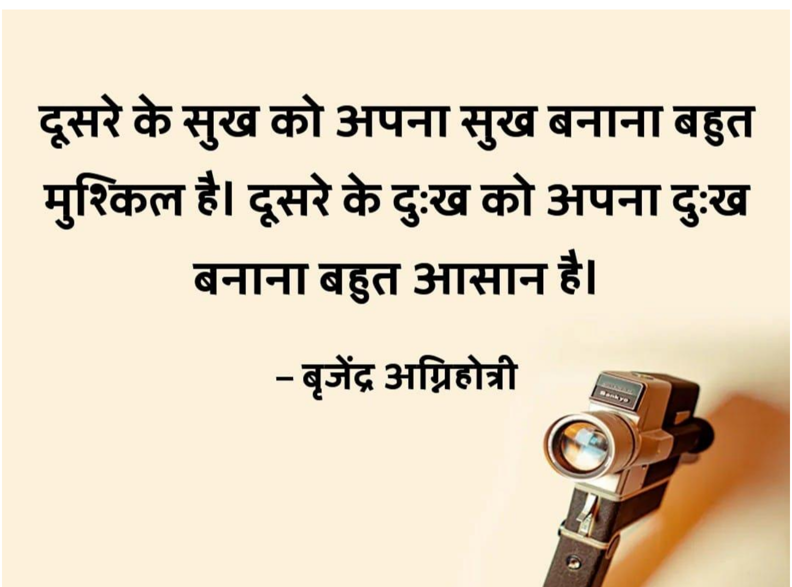

संस्मरण

सामाजिक सरोकारों का शायर राहत इन्दौरी

दीपक रूहानी

(दीपक रूहानी जाने–माने शायर और अनुवादक हैं। उर्दू से हिन्दी अनुवाद के कई महत्त्वपूर्ण कार्य कर चुके हैं। अभी पिछले बरस ही इनकी एक किताब "राहत साहब : मुझे सुनाते रहे लोग वाकिया मेरा" नाम से राहत इन्दौरी की जिन्दगी पर आयी, जो कि राहत–प्रेमियों में खासी चर्चित रही। अमेजन की वेबसाइट पर यह किताब तीन महीनों तक लगातार 'बेस्ट रीड' में रही। दीपक रूहानी आजकल बिहार प्रांत के मधुबनी जिले में हिंदी के सहायक प्रोफेसर हैं।)

यहाँ मैं राहत साहब की शायरी और उनके व्यक्तिगत जीवन से जुडी घटनाओं की कुछ चर्चा कर रहा हूँ। इन बातों से बहुत-सारे निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। ये निष्कर्ष प्रत्येक पाठक के अपने होंगे और वो अलग-अलग भी हो सकते हैं, यहाँ तक कि किसी एक ही बात पर परस्पर विरोधी निष्कर्ष भी निकाले जा सकते।

किसी भी शायर की मानसिकता के निर्माण में या उसकी अदबी मिजाज के बनने-बदलने में कब कौन-सी घटना का कितना हाथ है, ये अंदाजा लगाना जरा मुश्किल है। इंदौर में एक-दो बार बड़े स्तर पर दंगे हुए हैं, जिनका असर राहत साहब के जेहन पर भी पड़ा, लेकिन इस असर ने जो प्रतिक्रियाएँ दी हैं वो बहुत कलात्मक और प्रतीकात्मक हैं।

जून 1969 में एक दंगा हुआ था। राहत साहब के करीबी दोस्त शब्बीर कुरैशी साहब ने बातों-बातों में इंदौर में हुए उस दंगे के बारे में बताया। सन् 1969 में चंदगीराम ने एक दंगल का फाइनल जीता जिससे इन्हें उस वर्ष 'भारत केसरी' की उपाधि मिली थी। सत्तर के दशक के नामी पहलवान चंदगीराम (1937–2010) जिला हिसार हरियाणा के रहनेवाले थे। ये कुछ समय भारतीय सेना की जाट रेजीमेंट में भी रहे। देश का कोई ऐसा पहलवानी का खिताब न

था जो इन्हें न मिला रहा हो। फाइनल में इन्होंने मेहरदीन को हराया। पंजाब के रहनेवाले मेहरदीन भी कोई मामूली पहलवान नहीं थे। इन्होंने 1964 में ईरान में गोल्ड मेडल जीता था। इन्हें 'रुस्तमे-हिंद' की उपाधि प्राप्त थी। ये भी इंटरनेशनल चौम्पियन थे। दंगल और पहलवानी का माहौल उस वक्त इंदौर में जोरों पर था।

12 मई 1969 को 'भारत-केसरी' खिताब के लिए मेहरदीन और चंदगीराम में फाइनल मुकाबला हुआ। ये मुकाबला दिल्ली में हुआ था। मेहरदीन चंदगीराम की अपेक्षा शारीरिक रूप से बहुत तगड़े और मजबूत कद-काठी के थे, लेकिन वे दस मिनट की कुश्ती को 7 मिनट 45 सेकंड पर ही छोड़कर पीछे हट गये और अपनी हार स्वीकार कर ली। दारा सिंह इस फाइनल मुकाबले के निर्णायक (रेफरी) थे। इस जीत के बाद चंदगीराम का हिंदुस्तान के कई शह्रों में स्वागत एवं अभिनंदन आयोजनों के माध्यम से किया गया। इंदौर में दुग्ध-विक्रेता संघ ने ये आयोजन किया था।

यही स्वागत का क्रम जब इंदौर पहुँचा तो मामला कुछ-से-कुछ हो गया। शाम ढले चंदगीराम की ट्रेन इंदौर पहुँची तो एक बड़ा हुजूम उन्हें लेने स्टेशन पहुँचा। चंदगीराम शुद्ध शाकाहारी थे और मेहरदीन माँसाहारी थे, फितूर का एक मुद्दा ये भी बना। दूसरा चंदगीराम को हिंदू का प्रतीक मान लिया गया और मेहरदीन को मुस्लिम का प्रतीक माना गया। चंदगीराम के नाम के आगे अक्सर 'आर्य पहलवान चंदगीराम' भी लिखा जाता था। चंदगीराम का जुलूस 'बाम्बे बाजार' इलाके से गुजरा। ये मुस्लिम बाहुल्य इलाका था और यहाँ कई अच्छे नामचीन पहलवान थे, जैसे करामत पहलवान वगैरह। जुलूसवालों ने नारा लगाया- 'दाल-रोटी जीत गयी, गोश्त-रोटी हार गयी'। पहलवानी में रुचि लेना सीधे-सीधे शारीरिक बल में रुचि लेना है। कुल मिलाकर दंगा भड़क गया। चंदगीराम जान बचाकर भागे। इसके बाद शह्र भर में दंगा फैल गया। दंगे को रोकने के लिए महू कैंट से सेना को बुलाना पड़ा था। राहत साहब की उम्र उस वक्त उन्नीस बरस थी। इस घटना का इनके ऊपर गहरा असर पड़ा जिसे हम कई शे'रों में देख सकते हैं-

हम अपने शह्र में महफूज भी हैं, खुश भी हैं।
ये सच नहीं है, मगर ऐतबार करना है।।

मुझे खबर नहीं मंदिर जले हैं या मस्जिद।
मेरी निगाह के आगे तो सब धुआँ है मियाँ।।

महँगी कालीनें लेकर क्या कीजेगा।
अपना घर भी इक दिन जलनेवाला है।।

वैसे अब इंदौर में इस तरह के दंगे नहीं होते। इंदौर की अपेक्षा उसका पड़ोसी धार जिला साम्प्रदायिक रूप से अधिक संवेदनशील है। 1969 के उस दंगे के बारे में अगर विस्तार से जानना हो तो प्रतीप कुमार लाहिरी की किताब 'डिकोडिंग इनटह्लरेंस' पढ़ी जा सकती है। उस वक्त ये इंदौर के डी.एम. थे और दंगे को नियंत्रित करने में अहम भूमिका निभायी थी।

–०–

राहत साहब नौवीं क्लास में थे तो नूतन हायर सेकेंड्री स्कूल में पढ़ते थे। एक बार वहाँ मुशायरा होना तय हुआ। राहत साहब और स्कूल के ही कई लड़कों को तरह-तरह के कामों के लिए तैनात किया गया। राहत साहब भी शायरों की खिदमत में लगे थे। जाँ निसार अख्तर (जावेद अख्तर के वालिद) भी आये हुए थे। राहत साहब अपने एक-दो साथियों के साथ उनके पास अह्टोग्राफ लेने पहुँचे। राहत साहब ने उनसे कहादृ ''मैं भी शेर कहना चाहता हूँ, इसके लिए मुझे क्या करना होगा?'' जाँ निसार बोले- ''पहले कम-से-कम पाँच हजार शेर याद करो।'' राहत साहब बोले- ''इतने तो मुझे अभी याद हैं।'' तो वे बोले- ''तो फिर अगला शेर जो होगा वो तुम्हारा खुद का होगा।''

इसके बाद वो अह्टोग्राफ देने लगे। जाँ निसार साहब ने अपनी गजल का एक शेर लिखना शुरू किया- *'हमसे भागा न करो दूर, गजालों की तरह'.* .... ये पहला मिस्रा वो लिख ही रहे थे कि राहत साहब के मुँह से बेसाख्ता दूसरा मिस्रा निकल गया- *'हमने चाहा है तुम्हें चाहनेवालों की तरह'।* जाँ निसार साहब ने सर उठाकर हैरत और खुशी के मिले-जुले भाव से राहत साहब को देखा। उनकी मुस्कुराहट में राहत साहब के लिए दुआ थी। बाद में जब राहत साहब बाकायदा मुशायरों में जाने लगे तो जाँ निसार साहब से कभी-कभी मुलाकात भी हो जाती थी। राहत साहब उनका बहुत एहतराम करते थे।

–०–

राहत साहब के साथ किसी मुशायरे में फिराक साहब भी थे, जब इन्होंने शेर पढ़े तो फिराक साहब बोले- ''मियाँ, जब शे'र खुद ही अच्छा है तो चीखने की क्या जरुरत है।'' फिराक साहब का इतना कह देना राहत साहब के लिए

तारीफ जैसा था। राहत साहब फिराक गोरखपुरी के जबरदस्त मद्दाह हैं। सैकड़ों शेर याद हैं।

ये चीखना भी एक आर्ट है। मुशायरा एक 'परफार्मिंग आर्ट' बन गया है। ऐसी स्थिति में आवाज का खास रोल हो गया है। राहत साहब की आवाज की फ्रीक्वेंसी बहुत अधिक है। ये भी कह सकते हैं कि उनकी आवाज की 'रेंज' बहुत जियादा हैं। इसे आप सुनकर तो महसूस कर ही सकते हैं, साथ ही कभी इसे कम्प्यूटर स्क्रीन पर मापने की कोशिश करें तो भी आप देखेंगे कि जब इनकी आवाज शुरू होती है तो ग्राफ बहुत हाई फ्रीक्वेंसी तक जाने लगते हैं। टेक्निकली उनकी आवाज का माइक्रोफोन के साथ बेह्तर तालमेल बिठाना उनकी शानदार पेशकश को और भी अधिक शानदार बनाता है। यही नहीं, वे माइक्रोफोन का सटीक इस्तेमाल करना भी जानते हैं। राहत साहब की एक खास आदत है जिसे वो नेचुरल तौर पर करते हैं। करते क्या हैं, मेरे खयाल से ऐसा हो जाता होगा। गायन की भाषा में कहें तो वे अपनी आवाज को माइक्रोफोन के सहारे 'फेड इन' और 'फेड आउट' करते हैं। आजकल तो कम्प्यूटर और बहुत-सारे उपकरण आ गये हैं, जिनके सहारे गायन में 'फेड इन' या 'फेड आउट' कर दिया जाता है, लेकिन पहले के गायकों के सामने जब किसी मिस्रे में इस तरह के इफेक्ट लाने होते थे, तो वे अपने मुँह और माइक्रोफोन के बीच की दूरी को कम या जियादा करते थे। गाते हुए दूर से धीरे-धीरे मुँह माइक तक लाकर 'फेड इन' करते और 'फेड आउट' की जरूरत पड़ने पर मुँह को माइक्रोफोन से दूर ले जाते थे।

राहत साहब भी प्रायः ऐसा करते हैं। उनकी आवाज का वह्ल्यूम जरूरत के मुताबिक कम- जियादा होता रहता है, लेकिन अक्सर वो अपनी आवाज का वह्ल्यूम बराबर रखते हुए माइक से अपने मुँह की दूरी को संतुलित करते हैं। इस तरह वे अपने मिसरों को 'फेड आउट' या 'फेड इन' करते हैं। इससे एक खास कैफीयत पैदा होती हैं और सामईन पर एक खास असर पड़ता है।

-o-

राहत साहब की शायरी से गुजरना किसी दीर्घवृत्त (ellipse) की परिधि पर चलने जैसा है। जिस तरह दीर्घवृत्त में दो नाभि (विबने) होते हैं उसी तरह राहत साहब की शायरी में भी दो केंद्र हैं- एक तो वो जिसे हम खालिस अदबी कह सकते हैं और दूसरा वो है जिसे हम मुशायरों के फराइज अंजाम देनेवाला कह सकते हैं। पहले केंद्र के आसपास जाती तौर पर अपनी संवेदनशीलता से महसूस किये गये अनुभव हैं तो दूसरे केंद्र के पास सियासत और मजहब से पैदा हुए

मसाइल हैं। हमें राहत साहब की शायरी को पूरी तरह से समझने के लिए कम-से-कम इस दीर्घवृत्त एक पूरा तवाफ (परिक्रमा) जरूरी है।

राहत साहब की शायरी से असहमति रखनेवाले और खुले तौर पर इनका विरोध करनेवाले शुरू से ही कम नहीं थे। दरअस्ल राहत साहब की शायरी उर्दू-शायरी के तीन सौ बरसों के तमाम मिथकों को तोड़नेवाली शायरी है। इनकी गजलगोई गजल के रिवायती और जदीद (परंपरागत और आधुनिक), दोनों ही ढाँचों को तोड़ती है। न इन्होंने इश्क-माशूक, बुलबुल-सैयाद, गुल और चाँद के प्रतीकों को अपनी शायरी में शामिल किया और न ही जदीद शायरी की अमूर्तता ही इन्हें पसंद आयी। मुनासिबत और रिआयत की तर्तीब का बहुत ध्यान न रखकर इन्होंने सीधे-सीधे 'स्टेटमेंट' देने शुरू किये। इसे हिंदी आलोचना की शब्दावली में कहा जाये तो ये 'सपाटबयानी के कवि' के तौर पर सामने आये। ये भी कहा जा सकता है कि इन्होंने गद्य को मीटर-बह्र में करने का काम किया। इस लिहाज से ये कलावादियों को तो बिल्कुल ही नहीं पसंद आये। प्रतीकात्मक शैली में शेर कहनेवाले शायर जहाँ एक ओर अपने श्रोताओं को बखूबी साध लेते हैं, वहीं दूसरी तरफ अपने आकाओं या अपने राजनीतिक सरपरस्तों को भी नाराज नहीं होने देते। इस तरह की दोहरी तीरंदाजी करनेवालों ने राहत साहब को कभी पसंद नहीं किया और न ही राहत साहब ने ऐसे लोगों को पसंद किया।

-o-

राहत साहब की खुश किस्मती ये रही कि शुरू से ही उस वक्त के जितने बड़े और उम्दा शोअरा हजरात थे, उनकी दुआएँ इन्हें मिलती रहीं। खुमार बाराबंकवी, शमीम जयपुरी, कृष्णबिहारी नूर, फना निजामी, कैफ भोपाली जैसे लोगों की मुहब्बतें इन्हें शुरू से ही मिलती रहीं। ऐसे पायेदार शायरों के साथ ही इनका सफर शुरू हुआ। भुसावल के उस मुशायरे में कृष्णबिहारी 'नूर', निहाल ताबाँ, ताबाँ झाँसवी, खुमार साहब, कैफ भोपाली वगैरह शामिल थे। अपनी टूटी-फूटी तरन्नुम के साथ राहत साहब भी थे। तरन्नुम के शायर के रूप में थोड़ी-बहुत पहचान बन चुकी थी। उस मुशायरे के सफर के दौरान ही राहत साहब ने एक गजल कही, लेकिन उसका कोई तरन्नुम नहीं था। 'तरन्नुम नहीं था' का मतलब है कि राहत साहब उस अल्हड़पन के दौर में भी कभी गजल गुनागुनाकर नहीं कहते थे। शेर के मिस्रे उनके जेहन में तहत में उतरते थे और बाद में वे उसका तरन्नुम निकालते थे।

गजल हो गयी और वक्त कम होने के कारण तरन्नुम नहीं सेट हो पाया था। राहत साहब कृष्णबिहारी 'नूर' के पास पहुँचे और कहा- "सर मैंने एक गजल कही है, उसके कुछ शेर आपको सुनाना चाहता हूँ।" नूर साहब सोचे कि अभी ये तरन्नुम में ही सुनायेगा। राहत साहब ने तहत में ही वो गजल उन्हें सुनायी और उन्होंने बहुत दाद दी, बड़ी तारीफ की। नूर साहब ने कहा- "राहत आज सुनाओ इसे मुशायरे में।" राहत साहब बोले- "जरूर सुनाऊँगा, लेकिन अभी इसकी तरन्नुम नहीं सेट हो पायी है।" नूर साहब बोले कि- "ये गजल ऐसी है कि इसके लिए तरन्नुम की जरूरत नहीं है, तुम इसे तहत में ही सुनाओ। इस गजल के शेर ऐसे हैं कि इसमें गाने की गुंजाइश ही नहीं हैं।" उस गजल का एक शेर था-

जिन चरागों से तअस्सुब का धुआँ उठता है।
उन चरागों को बुझा दो तो उजाले होंगे।।

-o-

मुशायरों की परम्परा में बेशुमार पेचो-खम हैं। गजल पर जितना काम पिछले चार-पाँच सौ बरसों में हुआ है उतना हिन्दी-उर्दू मिलाकर किसी अन्य विधा पर नहीं हुआ। गजल पर हुए बेशुमार कामों ने इसमें इतनी चमक पैदा की है कि उर्दू की अन्य विधाएँ (अस्नाफ)इसके सामने फीकी पड़ जाती हैं। 'अदब' का एक मतलब 'लिहाज' भी होता है। मुशायरों में 'अदब' की हिफाजत होती थी, यानी 'लिहाज' की भी हिफाजत होती थी। एक मिसाल राहत साहब ने सुनायी-

किसी शेरी महफिल में जिगर मुरादाबादी और असगर गोंडवी मौजूद थे। जिगर मुरादाबादी असगर साहब को अपना उस्ताद मानते थे। असगर साहब कोई गजल पढ़ने लगे तो एक कीड़ा जिगर साहब की शेरवानी में घुस गया। उसने जख्म बनाना शुरू किया, लेकिन जिगर साहब टस-से-मस नहीं हुए। इसमें उस्ताद की बेहुर्मती थी। आखिरकार जब असगर साहब ने मक्ता पढ़ा तब जिगर साहब उठकर दूर गये और किसी तरह उस कीड़े को निकाला। तब तक वो काफी बड़ा जख्म बना चुका था। इसी तरह पहले के मुशायरों में नये शायरों को दाद देने तक की इजाजत नहीं रहती थी। उनसे ये उम्मीद की जाती थी कि पहले वो ठीक से सुनना सीखें, फिर उसे समझना सीखें तब दाद देने की कोशिश करें। पहले के मुशायरों में कोई नया शायर जिस तरह बैठ जाता था उसी तरह घंटों बैठा रहता था। बार-बार हाथ-पाँव इधर-उधर फैलाना-सिकोड़ना बेअदबी माना जाता था और कहा जाता था कि फलाँ साहब को तो महफिल में बैठने की भी तमीज नहीं, बार-बार पहलू बदलते रहते हैं। राहत साहब भी मुशायरों

की हर रिवायत को जितना मुमकिन हो सका निभाते आये हैं। अपने से बड़े शायरों का उन्होंने हमेशा खयाल रखा। अगर किसी मुशायरे में सामईन सीटी बजाने लगते तो राहत साहब फौरन उन्हें टोक देते और तरह-तरह की नसीहतें देकर उन्हें कायल करते। अगर सामईन सीनियर शायरों को बिना सुने जाने लगते तो राहत साहब खड़े होकर अपील करते और सामईन को कुछ देर और रोक लेते थे। जब तक हालात ऐसे नहीं हुए कि इन्हें पहली सफ में आकर बैठना पड़े तब तक बुजुर्गों के एहतराम में पिछली सफों में बैठना ही मुनासिब समझा। अभी ऊपर राहत साहब के एक शेर का जिक्र आया है-

जिन चरागों से तअस्सुब का धुआँ उठता है
उन चरागों को बुझा दो तो उजाले होंगे

इस शे'र पर राहत साहब को इतनी जियादा तारीफ क्यूँ मिली, इस बात पर गौर करना जरूरी है। बजाहिर तो दूसरे मिस्रे में 'चरागों को बुझाने पर उजाला' होने की बात की जा रही है, जो कि फित्री तौर पर बिल्कुल सही नहीं है। इस शेर की तहें इसके हवालों (सन्दर्भों) में हैं और उन हवालों की तरफ तरन्नुम से इशारा नहीं किया जा सकता। इस शेर का एक राजनीतिक अर्थ (सियासी मानी) भी है इसलिए उस अर्थ का गला गलेबाजी करके नहीं घोटा जा सकता। मुझे इस शेर के अर्थ की तरफ शब्बीर कुरैशी साहब ने इशारा किया था जो कि राहत साहब के करीबी दोस्त हैं।

जो लोग भारतीय जनता पार्टी का इतिहास जानते हैं, उन्हें पता है कि इसकी उत्पत्ति मूलतरू भारतीय जनसंघ (जिसे जनसंघ भी कहते हैं) से हुई। इस पार्टी की स्थापना (1951) श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने की। 1952 के संसदीय चुनाव में इसे दो या तीन सीटें मिली थीं। 1975–1976 में कांग्रेस सरकार द्वारा लागू किये गये आपातकाल के बाद भारत के अन्य राजनैतिक दलों और इस जनसंघ को मिलाकर जनता पार्टी बनी।

जनसंघ अपनी स्थापना के दिनों से ही साम्प्रदायिक विचारोंवाली पार्टी थी। फिलहाल, उन सब बातों का लम्बा इतिहास है, जिसकी यहाँ अभी जरूरत नहीं है। इसी जनसंघ पार्टी का चुनाव चिह्न था 'जलता हुआ दीपक' या 'दिया'। चूँकि ये 'जलता हुआ दिया' था, इसलिए इसमें से धुआँ उठने की बात प्राकृतिक रूप से तर्कसंगत लगती है। इस पार्टी की साम्प्रदायिक मानसिकता को देखते हुए 'तअस्सुब' (धार्मिक पक्षपात, बेजा तरफदारी) लफ्ज का इस्तेमाल भी एकदम सटीक ढंग से हुआ था। इन सब हालात के खुलकर सामने आने से अब दूसरे मिस्रे में चरागों को बुझाने पर उजाला होने की उलटबाँसी भी तर्कसंगत लग रही।

काँग्रेस पार्टी के लोग अपने कार्यक्रमों में राहत साहब के इस शेर का बहुत जोरदार ढंग से प्रयोग करने लगे। यहाँ तक कि इसी शेर से उनके कार्यक्रमों, चुनावी सभाओं और रैलियों की शुरूआत भी होने लगी थी। कांग्रेसवाले पहले भी जनसंघ के चुनाव चिह्न को लेकर कई नारे लगाया करते थेदृ जनसंघ के दीप में तेल नहीं, सत्ता चलाना कोई खेल नहीं। या इस दीपक में तेल नहीं, सरकार बनाना खेल नहीं।

जहाँ इस तरह के घिसे-पिटे तुकबंदीवाले नारे लगाये जाते थे, वहाँ राहत साहब का शेर बहुत प्रतीकात्मक था। अब जरा सोचिए कि इस शेर को पढ़ने पर जनसंघ के विपक्षियों में किस प्रकार की शोरअंगेजी होती रही होगी। एक बात इस सिल्सिले में साफ करना और जरूरी हैदृ राहत साहब ने जानबूझकर ये शेर जनसंघ पर नहीं कहा था। शेर की आमद हो गयी तो खयाल इस तरफ भी गया।

–o–

राहत साहब को सबसे अलहदा बनाती है, वो है इनके शेर पढ़ने का अंदाज। इनके शेर पढ़ने के अंदाज में संगीत का सहारा बिल्कुल नहीं है। शायरी की आंतरिक लय ही राहत साहब की लय है। तरन्नुम छोड़कर राहत साहब ने अपनी शायरी को तरन्नुम के दायरों से उठाकर बहसों-मुबाहिसों के दायरों में पहुँचा दिया। पढ़ने का अंदाज ही एक-एक शेर को सामईन के दिलो-दिमाग में पैवस्त कर देता है। जब से राहत साहब मंचों पर हैं तब से जाने कितने शोअरा आये और चले गये। पिछले पचास सालों में राहत साहब की आँखों के सामने एक युग की शुरूआत हुई और वो युग समाप्त भी हो गया, लेकिन वे आज भी उसी दमखम के साथ मंचों पर डटे हुए हैं। उनके लिए अब पैसा भी बहुत मायने नहीं रखता। बच्चे खुद सक्षम हैं कि वे अपना घर-परिवार चला सकें। पिछले कई सालों से राहत साहब ने शराब भी नहीं पी, लेकिन मुशायरों में बराबर जा रहे हैं। इससे ये भी सिद्ध होता है कि वे कभी शराब के मोहताज नहीं रहे। आज अगर राहत साहब मंचों पर डटे हैं, जमे हैं तो सिर्फ अपनी शायराना काविशों की बदौलत। शायरी ही सिर्फ एक जरीआ है, एक वसीला है जो उन्हें आज भी खराब तबीअत और खराब मौसम में इस मुशायरे से उस मुशायरे तक लेकर जा रही है। वे आजीवन शायरी को समर्पित शायर हैं। कभी उन्होंने दर-दर अपने इसी भटकने को लेकर कहा था–

तुम्हें पता ये चले घर की राहतें क्या हैं।
अगर हमारी तरह चार दिन सफर में रहो।।

ऐसा नहीं है कि राहत साहब से पहले उर्दू-गजल में एहतेजाज या विरोध का कोई पहलू नहीं था। परम्परागत उर्दू-शायरी में इंसान की आजादी के लिए जितनी काविशें-कोशिशें हैं उनको दरकिनार करके अगर हम जदीद दौर के सियासी एहतेजाज की बात करें तो भी ऐसे शायरों की कमी नहीं है जिनके यहाँ विरोध ओर विद्रोह की आवाज बुलंद है। जोश, साहिर, फैसला, फराज वगैरह जैसे और भी कई शायर मौजूद हैं। राहत साहब की शायरी इन सबसे अलग है, या यूँ कहें कि राहत साहब की स्थिति इन सबसे अलग है। 'संसद-भवन में आग लगा देनी चाहिए' जैसे मिस्रे अगर राहत साहब ने कहे तो इसे रिसालों और किताबों में छपवाने के लिए नहीं कहे। इसे जिस झुँझलाहट, जिस झल्लाहट में कहा गया था, उसी झुँझलाहट और झल्लाहट से मुशायरों में पढ़ा भी गया। आज भी पढ़ा जाता है। मुशायरे इस बात का जिन्दा सुबूत होते हैं कि शायर कितना जिन्दा है। आज की शायरी में वो माहौल नहीं है कि शायर धर्म और मजहब के कर्मकांडों का विरोध करे और लोग उसे हँस-हँसकर दाद दें। हमारे दौर में नासेह, वाइज, शेख, काबा, बुतखाना, काफिर, शराब वगैरह के हवाले से प्रतीकात्मक शायरी करने पर युवा पीढ़ी के सामईन शायद ही कुछ समझ पायें, लेकिन 'रवायतों की सफें तोड़कर बढ़ो वर्ना, जो तुमसे आगे हैं वो रास्ता नहीं देंगे' जैसे मिस्रे सीधे-सीधे जेहन में उतर जाते हैं। राहत साहब का पूरा शब्दकोश ही अलग है।

-o-

जुम्बिश

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-946859-3-7

संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

कलम को नमन

27 नवंबर 1907 को जन्में **हरिवंशराय बच्चन** हिंदी भाषा के एक कवि और लेखक हैं। ये हिंदी कविता के उत्तर छायावाद काल के प्रमुख कवियों में से एक माने जाते हैं। इनकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'मधुशाला' है। इनकी कृति 'दो चट्टानें' को 1968 में हिंदी कविता के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इसी वर्ष इन्हें सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार तथा एफ्रो एशियाई सम्मेलन के कमल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। बिड़ला फाउण्डेशन ने उनकी आत्मकथा के लिए इन्हें सरस्वती सम्मान दिया था। बच्चन जी को भारत सरकार द्वारा 1976 में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी का अध्यापन किया। बाद में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिंदी विशेषज्ञ रहे। अनंतर राज्य सभा के मनोनीत सदस्य रहे। बच्चन जी की गिनती हिंदी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में होती है। इनकी मृत्यु 18 जनवरी 2003 में साँस की बीमारी की वजह से मुंबई में हुई।

कविता

अँधेरे का दीपक

हरिवंश राय बच्चन

कल्पना के हाथ से कमनीय जो मंदिर बना था,
भावना के हाथ ने जिसमें वितानों को तना था,
स्वप्न ने अपने करों से था जिसे रुचि से सँवारा,
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों से, रसों से जो सना था,
ढह गया वह तो जुटाकर ईंट, पत्थर, कंकड़ों को
एक अपनी शांति की कुटिया बनाना कब मना है?
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

बादलों के अश्रु से धोया गया नभ-नील नीलम
का बनाया था गया मधुपात्र मनमोहक, मनोरम
प्रथम ऊषा की किरण की लालिमा सी लाल मदिरा
थी उसी में चमचमाती नव घनों में चंचला सम,
वह अगर टूटा मिलाकर हाथ की दोनों हथेली,
एक निर्मल स्रोत से तृष्णा बुझाना कब मना है?
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

क्या घड़ी थी, एक भी चिंता नहीं थी पास आई,
कालिमा तो दूर, छाया भी पलक पर थी न छाई,
आँख से मस्ती झपकती, बात से मस्ती टपकती,
थी हँसी ऐसी जिसे सुन बादलों ने शर्म खाई,
वह गई तो ले गई उल्लास के आधार, माना,
पर अथिरता पर समय की मुसकराना कब मना है?
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

हाय, वे उन्माद के झोंके कि जिनमें राग जागा,
वैभवों से फेर आँखें गान का वरदान माँगा,
एक अंतर से ध्वनित हो दूसरे में जो निरंतर,
भर दिया अंबर-अवनि को मत्तता के गीत गा-गा,
अंत उनका हो गया तो मन बहलने के लिए ही,
ले अधूरी पंक्ति कोई गुनगुनाना कब मना है?
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

हाय, वे साथी कि चुंबक लौह-से जो पास आए,
पास क्या आए, हृदय के बीच ही गोया समाए,
दिन कटे ऐसे कि कोई तार वीणा के मिलाकर
एक मीठा और प्यारा जिन्दगी का गीत गाए,
वे गए तो सोचकर यह लौटने वाले नहीं वे,
खोज मन का मीत कोई लौ लगाना कब मना है?
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

क्या हवाएँ थीं कि उजड़ा प्यार का वह आशियाना,
कुछ न आया काम तेरा शोर करना, गुल मचाना,
नाश की उन शक्तियों के साथ चलता जोर किसका,
किंतु ऐ निर्माण के प्रतिनिधि, तुझे होगा बताना,
जो बसे हैं वे उजड़ते हैं प्रकृति के जड़ नियम से,
पर किसी उजड़े हुए को फिर बसाना कब मना है?
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है?

आप किसी को कुछ नहीं सिखा सकते,
आप सिर्फ उसे सीखने में मदद कर सकते हैं!

कविता

दृश्यों में जीवन और जीवन के दृश्य

अशोक सिंह

भूखी-प्यासी औरतें
गा रही हैं
ईश्वर को छप्पन भोग लगाने के गीत

बुझा-बुझा सा मुरझाया चेहरा लिए
एक स्त्री बेच रही है
सड़क किनारे गजरा

बातों में मिठास घोलकर
नुक्कड़ पर चाय बेच रहे आदमी
के जीवन से
गायब हो चुकी है मिठास

फुटपाथ पर रंगों की दुकान लगाकर
रंग-बिरंगे गुलाल बेचने वाले
आदमी के चेहरे का रंग उड़ चुका है

त्योहारों में
मिट्टी के दीये बनाकर
हजारों घरों को रोशन करने वालों के घर
आज भी डूबे हैं अंधेरे में

पिताजी का हाथ देखकर
अक्सर

उनका भाग्य बाँचने वाले
पंडितजी का भाग्य बदले
हमने आज तीस सालों में कभी नहीं देखा

यह जो लड़का
अभी-अभी
सुबह-सुबह
हाथ में थमा गया है अखबार
उसकी कभी कोई खबर हमने
आज तक अखबार में नहीं पढ़ी

और
यह जो छोटी-सी प्यारी बच्ची
हाथ में छोटा सा तिरंगा लिए
छब्बीस जनवरी की सुबह-सुबह
हँसती-खिलखिलाती हुई
स्कूल की तरफ दौड़ी जा रही है...

वह नहीं जानती अभी
गणतंत्र किस चिड़िया का नाम है!

- जनमत शोध संस्थान, दुमका 814 101

मुझमें है देवत्व जहाँ पर
झुक जाएगा लोक वहाँ पर
पर न मिलेंगे मेरी दुर्बलता को दुलराने वाले!
-हरिवंशराय बच्चन

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

कैसे उसे पता

✍रजत सान्याल

खुद के लिए
कभी मुझे रोना नहीं आया
कभी आंसू नहीं भी निकले
खुद को प्यार किया मैंने चुपके से
एक नारसिसस पेड़ की तरह
जी भर कभी रोया नहीं खुद के लिए!

कभी मैं बहुत जोर-जोर से हँसता था
अगर कोई मेरी लिखने की तारीफ करता तो
इस मन की जो दुर्दशा है क्या कहूँ
शरीर एकदम झुक गया है, हड्डियों से मुड़ गया है
लेकिन कभी भी आँखों से अश्रु नहीं निकले
लगता था आँसूओं को रोक दिया है किसी ने!

आज जब सभी व्यस्त है गाड़ी सजाने में
और आमंत्रण पत्र के शब्द को सजाने में
तब लगता है मेरे कोई शहर में भारी बारिश हो रही है
कैफे में, चाय के अड्डे पर अटके है बहुत लोग
रास्ते में गाड़ी एकसाथ हो गई हैं
जैसे जनसंख्या रुक गई है
यह दृश्य देखकर
समझ नहीं आता कि दिन है या रात
एक दृष्टि से भी नहीं
कुछ दूर पर एक श्मशान घाट है, एक कब्रिस्तान है
इसके पत्थर भी भीग रहे हैं बरसात से
कैसे उसे पता चला इतनी दूर से...!!

-101 योगीसेवा 2, 12 ए सेवाश्रम सोसाइटी, बड़ोदा 390 023

कविता

मैं क्वारेनटीन में हूँ!

अनामिका अनु

मैं लिख रही हूँ तुम्हारे ही लिए
कमरा एसी है
सागवान की लकड़ी की अल्मारी में किताबें है
लैपटहृप है
और तुम्हारा ध्यान!

न्यूज में बता रहे हैं
तुम्हें स्टेशन पर से मार डंडे भगा देते हैं ?
तुम कहाँ जाते हो तब ?
स्टेशन की दूसरी तरफ, नाले के पास
रात भर मच्छर काटेंगे!
भोर से कुछ नहीं खाया पुलिस के डंडे के सिवा ?
पाँच सौ रुपये थे कोई सोते में जेब से निकाल ले गया
इतनी गंदगी और मच्छर में तुम सो कैसे गये ?
भैंस हो ?
बस आयी थी, बैठ जाते
छत का पाँच सौ, भीतर बैठने का एक हजार माँग रहे थे ?
खड़े रह गये!

दूसरा दिन है
आज खाना बँटा था
तब तुम चीख-चीख कर क्यों रोने लगे थे ?
पत्रकार पूछ रहे थे
तुम 'घर-घर' कह रो रहे थे।
चालीस किलोमीटर चले, पैंतीस और चलना है

माथे पर बिटिया बैठी है, बुखार है
बस एक सौ दो ?

मैं लिखने में लगी हूँ तुम्हारे वास्ते
जरा एसी ऑन कर लूँ
मेरे पास दस हजार किताबें हैं,
करोना से संबंधित
देश-विदेश में प्रकाशित सब लेख मैं पढ़ चुकी हूँ
मैं तुम्हारी तस्वीर लगाकर तथ्यपरक, बेहतर और प्रभावशाली भाषा
में लेख लिखूँगी
कविताएँ भी, कई कहानियाँ

रुको
मैंने आज चिकन बिरियानी बनाई है
रायता रह गया है
बना कर, खाकर आती हूँ
फिर लिखूँगी
तुम्हारी भूख, तुम्हारी पीड़ा, तुम्हारे तंग हाथ
और हाँ, घास खाते बच्चों की कहानी
मेरे शब्दकोश बड़े समृद्ध हैं, मैं बहुत पढ़ी लिखी हूँ
मैंने कई किताबें पढ़ी हैं, मैं तुम्हारे लिए लिखूँगी

काश! कि तुममें से कोई लिखता एक कविता
और ढा देता एसी में पेट भर खा कर लिखी गयी
मेरी कविताओं के बुर्ज खलीफा को
जो दुबई माल के बगल में ढीठ खड़ी है।

मैंने कहा था न मैं बहुत निर्मम हूँ
उससे भी वीभत्स है मेरा ज्ञान!!

–31, कावुलेन, त्रिवेंद्रम, केरल 689008

साहित्य का संबंध जीवन से है, इसलिए जो जीवन के लिए अच्छा नहीं है, वह साहित्य में भी अच्छा नहीं कहा जा सकता!

कविता

हत्या का आरोप

राहुल कुमार बोयल

वह गुस्से में आया
और मेरी किताबों के पन्ने
हवा में उड़ा दिए
उसे लगा
उसने मेरे वजूद को
धुआँ-धुआँ कर दिया
उसे लगता था
किताबें सर पे चढ़ के
नाचने लगती हैं
जबकि सच यही था
कि वह एक पेड़ की हत्या में
दूसरी बार शरीक था!

वह गुस्से में आया
और
मेरे कपड़ों के लीरे
हवा में उड़ा दिये
उसे लगा
उसने मेरी इज्जत को
तार-तार कर दिया
उसे लगता था सुंदर देहें
उसे बड़ा-सा ठेंगा दिखा के
इतराती रहतीं हैं
जबकि सच यही था
कि वह एक देह की हत्या में
कई-कई बार शरीक था!

इस तरह उस पर
एक पेड़ की दो बार
और एक देह की बार-बार
हत्या का आरोप था!

पेड़ों के समुदाय ने
उसे माफ कर दिया था
आखिरी समय में
उसके लहूलुहान जिस्म के साथ
बस एक पेड़ गया था!

उसे लहूलुहान करने में
एक देह का हाथ था
देहों का समाज
अभी इतना बड़ा नहीं हुआ
कि उसे क्षमा कर दे
(और होना भी नहीं चाहिए)

अकेली देह की बात होती
तो और बात थी
एक आत्मा भी थी
जिसकी वजह से
इस देह में नेह था
उस पर
देह के साथ
नेह की हत्या का भी आरोप था!

—पोस्ट ऑफिस लेन, राजेन्द्र कॉलोनी, बाली (पाली) राजस्थान

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।।
कबीरदास

कविता

हारता नहीं हूँ कभी मैं!

नरेश अग्रवाल

जब मैं एक फीट गड्ढा खोदता हूँ
उसकी तनख्वाह से
परिवार का एक सदस्य पलता है

दो फीट खोदने पर दो
शाम होते-होते पाँच फीट खोद डालता हूँ
और बुरी तरह थककर
बाहर निकलता हूँ

इस तरह अपने चार सदस्यों के अलावा
इस एक अतिरिक्त फीट की कमाई से
आपदा के लिए थोड़े पैसे बचा लेता हूँ
जो मेरी जमा-पूँजी है

मैं इसी तरह से
साल में तीन सौ फीट अतिरिक्त खुदाई करता हूँ
अगर कोई आपदा नहीं हुई घर में तो
आने वाले दिनों में
जरूर खरीद पाऊँगा एक घर
पक्का और मजबूत

यह अतिरिक्त खुदाई ही है
साधन मुझे बचाने और मेरे सपने पूरे करने का
इसलिए बुरी तरह से थक जाने पर भी
इस गहराई से हारता नहीं हूँ कभी!

—35, कागलनगर, सोनारी, जमशेदपुर 831 011

कविता

शब्दों की सत्यता

राजेश सिंह

कवि से
लोग पूछ रहे हैं
शब्दों की सत्यता के बारे में
और ये भी कि
क्यों... अब तुम्हारी कविता में
ये शब्द नजर नहीं आते।

कवि चुप है, क्या बताए लोगों को
कि शब्दों ने अपने अर्थ खो दिये हैं
कि शब्दों ने धोखा देना सीख लिया है।

'प्रेम' शब्द द्वारा
इस धरा पर
सबसे ज्यादा छली गयी हैं- स्त्रियाँ!
'भरोसे' ने
सबसे ज्यादा लूटा है मजलूमों को!
स्त्रियाँ को तो भरोसे पर ही भरोसा नहीं रहा
हर बार
उनकी इज्जत तार- तार की है, इस शब्द ने!

नेताओं के प्रयोग से 'आश्वासन' शब्द तो
छिलता जा रहा है, प्याज के छिलके की तरह
कवि मौन है प्रार्थना में
शब्द बेचैन हैं...
उनके अस्तित्व पर संकट मंडरा रहा है!!

—701, स्वाति फ्लोरेंस, निकट सोबो सेंटर, साउथ बोपल, अहमदाबाद 380 058

कविता

खरा विकास

सूर्य प्रकाश मिश्र

हुई किरकिरी मुखिया जी की
बुधुवा ने दरखास दिया है

खड़ा हुआ तहसील दिवस पर
रटा हुआ सब सुना रहा है
नहीं पता है बेचारे को
कोई उसको भुना रहा है

हार गये पिछले प्रधान ने
बकरा खोज के फाँस दिया है

हाकिम ठहरे बड़े अनुभवी
सारा किस्सा जान लिया है
कौन छिपा परदे के पीछे
कारण को पहचान लिया है

धुआँ हो रहे मुखिया जी से
नजर मिली तो खाँस दिया है

सुख-दुख अपने हमराही के
मजबूरी है साथ निभाना
अब मुखिया के समझ में आया
क्यों अच्छा है बाँट के खाना

पिटा ढिंढोरा पंचायत का
उसने खरा विकास किया है!

—बी 23/42, ए के, बसन्त कटरा (गाँधी चौक), वाराणसी 221 001

कविता

तुम्हारे लिए

रीता मिश्रा तिवारी

आज कई दशकों बाद
लिखने के लिए
मैंने कलम उठाई है!

वैसे तो
कलम कभी छूटी ही नहीं थी
मेरे हाथ से!

पहले भी लिखती थी
बच्चों की कहपियां
और क्लास के बोर्ड पर!
पर आज....
उठाई है कलम लिखने के लिए कुछ और!

दशकों पहले
लिखा करती थी
मन की भावनाओं को
कागज पर शब्दों का रूप देती!
आज फिर बरसों बाद दबी-सी...
एक आवाज आई!
'तन्हाइयों से बाहर आ... और लिख!'

पहले भी लिखा करती थी तुम्हारे लिए...
आज फिर से उठाई है कलम
सिर्फ... तुम्हारे लिए!!

— ravi.tewary94311@hotmail.com

कविता

स्वार्थ से परिपूर्ण बुद्धिमत्ता

सारिका शर्मा

हायब्रीड के पेड़ हो गए,
कंक्रीट के मकान।
मिट्टी को तरस गए,
अछूता हो गया
नीला तारों भरा आसमान।

बड़े-बड़े मालों में पड़ने लगे झूले,
टहनी की अटखेलियाँ हम कैसे भूलें ?
दे-देकर आलिंगन नापा करते थे पेड़ों को,
उछल-उछलकर तोड़ के खा जाते थे फलों को।
मिट्ठू का झूठा अमरूद दवा का काम करता था
कोयल की कूक से आमों में खुशबू का संचार होता था
सप्तऋषि और चंद्र-तारका गिना करते थे बिन दूरबीन के
जुगनु की क्रीड़ा से रंगमहल सजता था
झिंगुरों के स्वर से लय से लय मिलता था
रात की शीतल चांदनी हर लेती थी अँधियारे को,
अब तो कृत्रिम उजाले ने हर लिया है कीड़ों का जीवन।
खोज-खोज के थक गयी हूँ
ना मिलती है- मिट्टी की खुशबू
जिसकी सुगंध से मुँह में पानी भर आता था।
कहीं खो गई है-

रात की हवा में घुलनेवाली रातरानी
जो मदहोशी की चादर ओढ़े आती थी।

बिन ओस के प्यासे हो गये गमलों में लगे पेड़।
कैसे तृष्णा मिटेगी बिन शरद के चंद्रमा के ?
बँट गयी है प्राणवायु छोटी-छोटी बोतलों में।

पशु-पक्षियों की बुद्धिमत्ता का एहसास
आज हुआ,
खाकर फलों को
विष्टा से बड़े-बड़े बरगद, पीपल को जन्म जिन्होंने दिया।
स्वार्थ से परिपूर्ण बुद्धिमत्ता
इंसान ने खूब कमाई
इसीलिए तो
अब पिंजरों में
बंद रहने की सजा उसने पाई।

— sarikasanjeev3@gmail.com

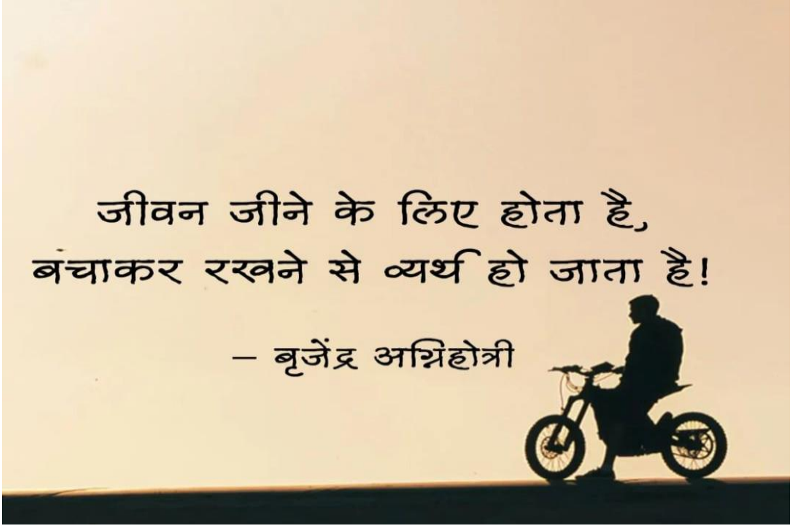

कविता

बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं

✍ घनश्याम शर्मा

दौड़ता समय-चक्र गति-से
तोड़ता मन-मोह मति से
नेत्र नम हो ताकते-से, खुद को जैसे खो रहे हैं।
बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं।

वक़्त जाना है सुनिश्चित
वक़्त उनको भी दो किंचित
जिनको जीवन देते आए, बाट उनकी जोह रहे हैं।
बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं।

कोई सपने अब न बाकी
हाय! अपने अब न बाकी
तुमको जो गोदी खिलाए, स्मृति सब संजो रहे हैं।
बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं।

चित्र ही होगा निशानी
झुर्रियों की अब पेशानी
उन चरण लौटो तथापि या कि बस दो पल रहे हैं।
बुजुर्ग बूढ़े हो रहे हैं।

–केंद्रीय विद्यालय, पठियाल धार, गोपेश्वर, चमोली, उत्तराखंड 246401

कविता

आषाढ़ का एक दिन : संदर्भ पुराने, अर्थ नए

डॉ. जयप्रकाश तिवारी

आया आषाढ़ बढ़ गया ताप
उठी हवाएँ गगन मे तेज तेज
मन मे हलचल उससे भी तेज
घिर आई घटाएँ चहुं ओर से
स्मृति पटल छाये घनघोर मेघ,
मन कितना चंचल मनचला है
जा पहुंचा अतीत की उस घड़ी में
जहां भीगे थे हम दोनों आषाढ़ में
बादलों की जलधारा में ही नहीं
भावों की वर्षा, शब्द फुहारों में।
बसी थी कितनी ही मोहक कल्पनाएं
संवेदनाओं की बलखाती लहरों में ॥

दशकों बाद...

इन स्मृतियों ने इतनी हलचल मचाई
अब लौट आया अतीत से वर्तमान में
रिमझिम फुहारें बड़ी बूंदों मे बदल गयी
बरसात ने पकड़ लिया जोर और मैं
भीग गया पूरा ही आषाढ़ की बरसात में,
ठीक उसी तरह जिस तरह भीगे थे तब
हो गया था तन-मन गीला हमारा
तब उस समय भी, और आज अब भी।
हाथ में मेरे वर्षा से बचाव का अस्त्र
यही कलम तब भी थी... अब भी है
लेकिन कलम वर्षा से बचाती कहाँ है
यह तो और भिगो देती है, अंदर तक॥

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

सहसा बिजली जोर से कौंधी-कड़की
इस चमक मे मुझे साया सी दिखी
वो साया... तुम थी, भला भूलता कैसे ?
दौड़कर तुझे पकड़ लिया, तू भाग न पाई
कृशकाय-बदन, धँसी-आँखें, पिचके कपोल
कुछ कहो या न कहो, खोल दी सारी पोल
एक अलगाव ने कितना बदल दिया तुम्हें
पूछने पर कुछ बताती नहीं, हो गयी हो मौन
ऊपर से दिखता नहीं, कोई घाव-चोट-मरहम
हैरान हूँ, विस्मित भी, कैसी हो गयी हो तुम
अब न तुझे वर्षा भिगो पाती, न ही कलम
यह कलम तो मदहोश थी तुम्हें लिखने में
कब सोचा इसने, देखने की तुम्हें वास्तव में ?

तुम्हें 'मल्लिका' का किरदार बहुत पसंद था
और समय ने सचमुच मल्लिका बना दिया
मैं मातृगुप्त बनकर राज-सुख भोगता रहा
'मेघदूत' और 'ऋतुसंहार'... ही लिखता रहा
कभी सुना था- इतिहास अपने को दुहराता है
सचमुच इतिहास अपने को दुहराता है...
ऐतिहासिक मातृगुप्त निभा नहीं पाया था
न राज-धर्म, न प्रिय-धर्म, न प्रेयसि-धर्म
लेकिन यह मातृगुप्त विधिवत निभाएगा
राज-धर्म भी, प्रिय-धर्म भी, प्रेयसि-धर्म भी
आज इतिहास अब ...एकदम बदल जाएगा
जब ऐश्वर्य की सिंदूरी रेखा माँग सजाएगा
और कभी अट्टहास करने वाला यही समय
अब भांति-भांति के मंगल गीत गाएगा॥

– dr.jptiwari@gmail.com

कविता

कभी सुध नहीं ली उन्होंने

खेमकरण 'सोमन'

कभी सुध नहीं ली उन्होंने
नदियों की
पानी अभी तक पहुँच पाया है महासागरों में या नहीं
नहरें हैं अभी भी जल से लबालब या नहीं
कुएँ हरे-भरे हैं या नहीं
तालाबों की स्थिति क्या है
या आज पड़ोस में किसका ब्याह है

कभी सुध नहीं ली उन्होंने
अपने साथियों की
जो हाइवे के आसपास से उजड़ते गए
जब कभी जाने-पहचाने चेहरे
सामने से गुजरते गए

कभी सुध नहीं ली उन्होंने
किसी चिट्ठी की
जिस मिट्टी में पैदा हुए उस मिट्टी की
पेड़ पौधों हवा धूप बरसात की
बंद चूल्हों की
तवा की
दिन या किसी अँधेरी रात की

कभी सुध नहीं ली उन्होंने
शहर में बस जाने के बाद गाँव की
गाँव वालों की
दुख में घिरे अपने माता-पिता बहन भाई की
साफ-साफ कह दिया था-
नहीं रखना है रिश्ता तुम गँवारों से
जिस दिन छोटी बहन की सगाई थी

कविता

एक स्त्री को समझते हुए

रोहित प्रसाद पथिक

लिखावट सी महीन
त्वचा सुंदरता से भरपूर
लिखती हो काजल की कालिख से कविताएँ
सच कहूँ तो
तुम स्त्री ही हो सकतीं हो।

विचारणीय होतीं हैं, तुम्हारी सोची हुई हर बातें
क्योंकि
हर बात में उपस्थित हो
तुम, तुम्हारी जीभ, आवाज और होठों से निकली भांप

सच कहूँ तो
लगता है कि इसी भांप से
तुम सेंकती हो तपती भट्टी पर रोटियाँ

हाँ! तुम ही हो जन्मदात्री
जिसने इस पृथ्वी को जन्म दिया है
जन्म दिया है
हमेंए वनस्पति व जीवों को
इस धरती के सुख-दुखों को

पहचाना मैं
भूल गया था तुम्हें
जान पाया हूँ

अर्द्ध उम्र के बाद...

सच कहूँ तो
अवश्य मैं तुम्हें
और भी जानना चाहता हूँ कि
तुम अभी भी कहीं न कहीं
शेष बची हो,

मेरे अंदर
इस धरती के अंदर
ब्रह्माण्ड के अंदर
चारो धामों के अंदर
सिंदूर से लेकर सफेद रंगों के अंदर...!

जिसे मैं जानना चाहता हूँ कि
एक स्त्री को पहचानने के लिए
क्या हर पुरुष को भी कभी स्त्री होना चाहिए!

– poetrohit2001@gmail.com

...
और
अब छीनने आये हैं वे
हमसे हमारी भाषा
यानि हमसे हमारा रूप
जिसे हमारी भाषा ने गढ़ा है!
–सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

कविता

अधूरा चुंबन

तान्या सिंह

एक कवि की पहली किताब में
रूठे दोस्त का जिक्र
उस पर कई नज़्में
और आखरी किताब में
उस किरदार की कहानी का विस्तार,
इन सबके बीच प्रतीक्षा करता हुआ,
दोनों के समय अंतराल में
यात्रा करता है- अधूरा चुंबन

गहरा प्रेम करती स्त्री
उसके प्रेम को कामवासना में
तौलता हुआ पुरुष,
दोनों अलग ग्रहों के निवासी
फिर उनका जिस्मानी मिलन,
ऐसी परिस्थितियों के बीच
तैरता है- अधूरा चुंबन

पहले चुंबन के बाद
मिले कई चुंबन
लेकिन पहलेपन का
वो अहसास शेष नहीं।
फिर भी संघर्ष में डूबते प्रेम को
निचोड़कर ओढ़ लेनाए
तब देह पर मैल की तरह
उपस्थित रहता है- अधूरा चुंबन

जिया हुआ प्रेम
जो अमृता ने साहिर से

इमरोज ने अमृता से किया
वो संतृप्ति नहीं थी
वहां न तृप्त होने की ख्वाहिश थी
न दर्द बढ़ने की गुंजाइश
वहीं सूखकर अमर हुआ- अधूरा चुंबन

– a.tnya.it@gmail.com

बात तब की है जबकि जापान विकासोन्मुख था। जापान में ट्रेनों की दशा अच्छी नहीं थी। हमारे देश के एक सज्जन भी उस ट्रेन में सवार थे। ट्रेन की सीट फटी हुई थी। एक जापानी नागरिक, जो कि उसी ट्रेन से कहीं जा रहा था, ने अपने बैग से सुई–धागा निकाला और सीट को सिलने लगा। भारतीय सज्जन ने पूछा, 'क्या आप रेल–कर्मचारी हैं?'

उत्तर मिला, 'नहीं, मैं एक शिक्षक हूँ। मैं इस ट्रेन से प्रतिदिन आवागमन करता हूँ। इस सीट की यह दशा देखकर सुई–धागा घर से ले आया हूँ। कई दिनों से इस सीट को देखकर मुझे लगता था कि यदि कोई विदेशी व्यक्ति इसे देखेगा, तो मेरे देश की कितनी बदनामी होगीय ऐसा सोचकर ही सीट को सिल रहा हूँ।'

धन्य है ऐसा देश और वहाँ के शिक्षक, जो देश के सम्मान को अपना सम्मान समझते हैं। यही कारण है कि परमाणु बमों की त्रासदी झेलने के बाद भी जापान आज इतना विकसित हो गया है कि हमारे देश को उससे बुलेट ट्रेन खरीदनी पड़ रही है और नगर–विकास में भी उसकी मदद लेनी पड़ रही है। दूसरी ओर हमारे शिक्षकों का एक वर्ग भटक गया है, जिसके कारण हमारे विद्यार्थी सच्ची शिक्षा–संस्कृति से दूर होकर देश को ही बर्बाद करने की बातें करने लगे हैं। केवल ट्रक के पीछे 'मेरा भारत महान' लिख देने से कोई देश महान नहीं बन जाता है, शिक्षा और संस्कारों से देश के भावी नागरिकों की सोच को भी सही दिशा देनी होती है और अपना आचरण उत्कृष्ट रखना पड़ता है। देशवासियों और विशेष रूप से देश के शिक्षकों की उच्चस्तरीय सोच ही देश को महान बनाती है। प्रवचन के साथ–साथ आत्मनिरीक्षण करते हुए समाज और देश के लिए अच्छी सोच रखना भी देश को महान बनाने के लिए अनिवार्य है, दिखावा और पाखंड से कुछ हासिल होने वाला नहीं है।

कविता

मौन की उड़ान

स्नेहलता

उस पंछी के 'पर' दो हैं,
पर उड़ना उसने सीखा नहीं।
चहकती रहती मौन ही मौन,
पर बोलना उसके बस का नहीं।

सरल, सुशील, जटिल कभी,
और अंदर-बाहर मोह में फंसी।
कभी ऊचें सपनो की उड़ान भरे,
पर बदले उसके कौन त्याग करे।

मिली उसे एक नाम 'स्त्री'
स्त्री की एक कपोत सखी,
पीड़ा उसकी भी एक जैसी।
एक मौन पिंजरे में कैद,
तो दूसरी स्वतंत्र नहीं।

छोड़कर पिंजर वो कैसे जाय,
जग के रस्म जब यहीं निभाय।
कहने को तो आधुनिक समय के साथ चले,
पिंजरे की खिड़की खोल खड़े।
दोनो की कुण्ठा क्यूँ एक-सी,
पूछे ये सवाल हर एक 'स्त्री'।

-ssneha.di@gmail.com

कविता

स्त्रीवादी कविता

✍ संगीता पाण्डेय

कविता बदलने लगी अपना कलेवर,
अपना भाव अपने शब्द,
साथ ही बदलने लगी कवियों की मानसिकता।

स्त्रीवादी कविता के लिए होड़ लगी है स्त्रियों में ही
कितनी नग्नता परोस सकती हैं वो
खुद पर होने वाले शोषण को
लिखकर लेखनी के माध्यम से
शरीर के भूगोल और उच्चावच को मापने में भूल गयी
वो प्रदर्शनी नहीं, न ही बाजार में बिक रही वस्तु
भौंडे, अश्लील द्विअर्थी बातों से
नहीं बदल पाएगी सदियों से चली आ रही स्त्री दासता
पुरुषों के द्वारा लिखा गया उनका भाग्य।

शरीर के अवयवों की प्रदर्शनी लगाने और
उनकी उन्मुक्त परिभाषा से
स्त्रियां बस छली जाएंगी, और
और उन अबोध, अशिक्षित अबलाओं पर
बढ़ता जाएगा भार दासता और शोषण का।

समाज के सदियों से बंधे नियमों की जंजीर खोलने को
बनाना पड़ेगा एक हथौड़ा
जो बना होगा स्त्री के अधिकारों के अलख से
हथौड़े को बनाने के लिए
जलानी पड़ेगी मशाल शिक्षा की
जिसकी रोशनी में सदियों से दबी कुचली स्त्रियों
के हक की बात की जाएगी।

बनाओ मशाल जन जागृति की
पलीता लगाओ उसमे सदियों से एक ही बिंदु पर
रुक चुकी स्त्री की बंदिशों की,
जब जलेगी आग उसमे शिक्षा की
इस नव अलख की मशाल
जला देगी सदियों से स्त्रियों के लिए बनी ऊंची
कठोर नियमों के लकड़ी की बनी दहलीज
टूट जाएंगी जीर्ण-शीर्ण परम्पराएं
खुली हवा में सांस लेंगी स्त्रियां
लैंगिग असमानता से परे
बस मनुष्यता होगी
प्रेम होगा, और होगी
धवल, निर्मल, मुक्त
स्नेह की सृष्टि।

-ranusangeeta22@gmail.com

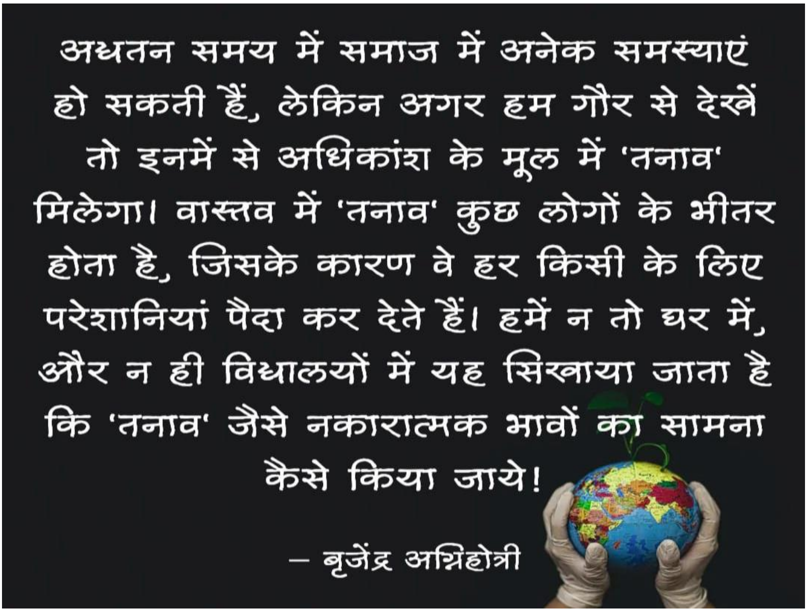

कविता

यादें

✍सवि शर्मा

सुनो, क्या तुमने भी किसी पुराने संदूक में
यादों को सजा रखा है सीप में बंद सा,
पर हर बूँद मोती नहीं बन पाती
वो सड़ीं गली यादें निकल जब तब
तुम्हारी रूह की पेरहन पर
पाँव रख घसीट लेती है
ना जाने कितने साल पीछे और
छलनी करती तुम्हें
तुम्हारी हर साँस पर भारी जैसे
कोई कर्ज रखा हो
कितनी रातें छटपटाहट में गुजारते हो
अधखुली आँख में भीनी हँसी
जो झाँकती है दुर्ग से
वो भी सिमट डर जाती है
क्यूँ नहीं उतार देते अपनी आत्मा से ये कर्ज
खोल दो उस संदूक का ताला
निकल जाने दो उन बेबस यादों को
मुक्त कर दो, माफ कर दो इनके साथ जुड़ी हर एक तिड़कन
देखो कितना हल्का महसूस होगा
और माफी माँग लो उन सबसे जिनके दिलों को
कभी तुमने घायल किया था
और दिल के दरवाजे पर दस्तक देती मुस्कराहट का
स्वागत करो, मुस्कुराओ
जीवन मुस्कुराने के लिए है, नहीं मिलता दोबारा
खोल दो गिरह दिल की, आत्मा मुक्त कर दो
देखो नया व्योम जो प्रतीक्षा में खड़ा है बाँह पसारे
बढ़ चलो उस ओर!

कविता

बहुत कुछ लिखना शेष है!

देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

बहुत कुछ लिखना शेष है!
चाहता हूँ उन सब पर लिखूँ
जो कभी मखमली चद्दर पर न सोएं हो
न ही उन्हें रातों में आते हो रेस्त्रां में खाने के सपने।

मेरे शब्दों में समाया हो
सत्य का प्रतिमान
शब्दों से करना चाहता हूँ
आह्वान
उन दबे कुचले लोगों का
लिखना चाहता हूँ दास्तान
कहना चाहता हूँ शब्दों से
उनका भूत भविष्य व वर्तमान
जिनके पैर पत्थरों से कुचलकर
बना दिए जाते हैं पंगु।

जिनके मस्तिष्क में अभिशप्त लावा
ढूँस-ढूँस कर भर दिया जाता है
कि आने वाले कई वर्षों तक
वैसे ही बने रहे लाचार
सिर्फ अपने वोट देकर बनाते रहें सत्ता
परिवर्तन के कभी न आए उन्हें विचार।

मैं जब तक रहूँगा,
लिखता रहूँगा
अपने शब्दों से उनके अंदर

जगाऊँगा ज्वालामुखी
जो फटकर कर दे तहस–नहस
और हो जाए परिवर्तन।

उस निरंकुशता व अन्नाय के खिलाफ
जो सदा ही रोकते हैं रास्ते
उन दीन–हीन–वंचित लोगों को आगे बढ़ने से
न कर सका ऐसा तो निश्चित ही
अगले जन्म में फिर कवि ही बनूँगा
फिर से उनके लिए लड़ाई लड़ूँगा

चाँद के अक्स पे
थाली में सिंदूर लगाकर
माँ ने दोनों हाथ जोड़कर आँखें मूंदी,
प्रार्थना की!
मन ही मन मैं मुस्काया- माँ के भोलेपन पर!
अभी अभी तो टीवी पर देखा था,
चंद्रमा पर लोग उतरें हैं!
माँ की बुदबुद हल्की-सी कानो में आयी,
"अपनी रक्षा करना चंद्रमा तुम,
धरती से कुछ लोग गए हैं!"

**गुलज़ार*

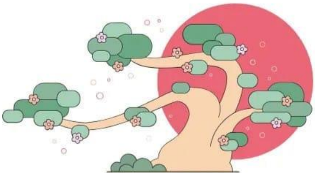

कविता

रावण

नीना सिन्हा

मैं पुलस्त्य ऋषि का पौत्र,
पुत्र विश्रवा ऋषि का।
परम शिव भक्त,
था महाप्रतापी योद्धा।
शास्त्रों का प्रखर
विद्वान पंडित एवं महाज्ञानी।
शासनकाल में मेरे,
लंका का वैभव था चरम पर,
लंका को सोने की लंका कहें।

वाल्मीकि ने कहा अधर्मी,
धर्म व्यवस्था तोड़ने वाला।
देव, असुर, मनुष्य-कन्याओं
को हरने वाला।
तुलसीदास जी ने कहा
अहंकार मेरा अवगुण था।
रावण ने हठ पूर्वक
बैर मोल लिया,
पता था, प्रभु (विष्णु) ने ही
अवतार लिया,
उनके बाणाधात से प्राण त्याग
भव बंधन से मुक्त हुआ।
विभिन्न लोगों ने विभिन्न बातें कहीं।
क्यों मुझे सजा मिली, इतनी बड़ी ?

प्रत्येक वर्ष कागज का रावण

बना, देते हो फूँक।
अपने मन में बैठे रावण को
मारने में जाते हो चूक।
करते छल इतने, करते पाप
और भरते हो दंभ।
नीचता इतनी मनुष्यों में,
कर सकूँ खुद पर गर्व।

हर साल जला कर,
क्यों देते हैं मुझे कष्ट।
जला दी समस्त संसार की
बुराई, मनाते ऐसा जश्न।
क्या खुद को समझते हो
मर्यादा पुरुषोत्तम राम?
अवगुण अहंकार की
मिली, इतनी बड़ी सजा।

ये भ्रष्ट नेता, करते मेरा
दहन, कौन दूध का धुला?
मुझे जलाते, ये लोग
कितना कुकर्म स्वयं किये।

-maurya.swadeshi@gmail.com

प्राचीन बातें ही भली हैं, यह विचार अलीक है।
जैसी अवस्था हो जहाँ, वैसी व्यवस्था ठीक है।।
-मैथिलीशरण गुप्त

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

विज्ञान व्रत

हर रस्ते की मंजिल है क्या
अंबर का भी साहिल है क्या

तुझको पाकर खोया खुद को
ये ही मेरा हासिल है क्या

तू अब पास नहीं आता है
मुझसे मिलना मुश्किल है क्या

कोई तो है तेरा कातिल
तू खुद अपना कातिल है क्या

कब से घूर रहा है मुझको
आईना कुछ गाफिल है क्या

एक नशा है मुझ पर तारी
तू मुझमें अब दाखिल है क्या!

वो जो इतना चुप-चुप-सा है
आखिर उसको कहना क्या है

मुझको जो किरदार मिला है
तुझको ही हर बार जिया है

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

किसकी बोली बोल रहा है
उस पर ये किसका कब्जा है

अब वो मुझको समझाएगा
मैंने जो कुछ समझाया है

प्रश्न सरीखा है उत्तर भी
क्या बतलाऊँ उत्तर क्या है

मुझको देखे जाता है वो
जाने मुझमें क्या देखा है!

आज तक जो कुछ कहा
क्या कभी खुद भी सुना।

जन्म से मुझमें रहा
मैं नहीं तो कौन था!

मैं फसाना क्यों हुआ
काश तू ये जानता !

जिन्दगी-भर का सिला
सिर्फ तू हासिल रहा !

वो जो नजरों में रहा
काश मुझको दीखता!

मैं किसी का क्यों हुआ
ये गिला है आपका!

था जमाना साथ में

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

साथ में जब तू न था!
क्या-क्या सोचा था न हुआ
मिलकर भी मिलना न हुआ।

वो मेरा चेहरा न हुआ
उससे ये रिश्ता न हुआ।

बरसों से जो मुझमें है
क्यों मेरा अपना न हुआ!

बोलूँ उसकी भाषा क्यों
मैं उसका तोता न हुआ।

मैंने सिर्फ पढ़ा है वो
खत में जो लिक्खा न हुआ।

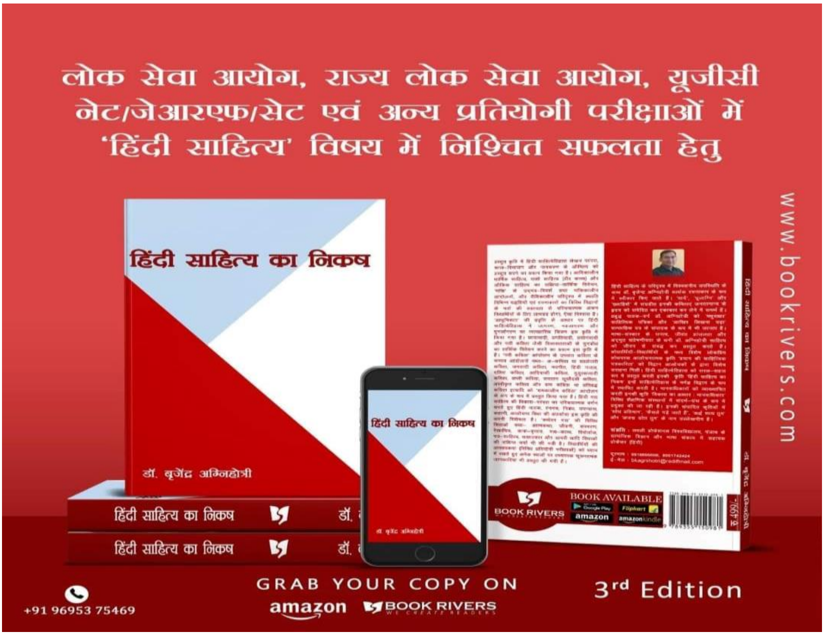

केशव शरण

शोरूम यहाँ और वहाँ बॉर रहेगा
संस्थान रहेगा न सभागार रहेगा

आवास रहे टूट गुफा-खोह सरीखे
ये क्योंकि नगर साफ हवादार रहेगा

वो बात नहीं आज कि निर्दोष निडर हो
हर दण्ड उसे जो न खतावार रहेगा

कुछ लोग गिरफ्तार हुए धूम्र उड़ाते
कुछ रोज यही एक समाचार रहेगा

बरबाद करें देश गदर-लूट मचाकर
पड़ना न उन्हें फर्क जनाधार रहेगा

ऐसा न कहो यार कि बदलाव न होगा
घनघोर कलह-कष्ट लगातार रहेगा

वो चोर-उचक्के कि सरेआम टहलते
तू जान अगर तू न खबरदार रहेगा।

इक लक्ष्य दिखाकर न दिखा यार अभी तक
मैं राह रहा जोह लगातार अभी तक

हम रोज मिले रोज मिले और गले भी
अफसोस कि पैदा न हुआ प्यार अभी तक

अरमान बहुत और बहुत ख़्वाब हमारे
इक ने न लिया रूप व आकार अभी तक

छोटी न घड़ी एक, बड़ी रात अँधेरी
कोई न प्रकट चाँद न भिनसार अभी तक

जो देख लिया हुस्न गुनहगार हुआ मैं
ये और मजेदार गिरफ्तार अभी तक

संघर्ष किये खूब कि था राज बचाना
नृप ने न दिया एक पुरस्कार अभी तक

जो रोज नये खोज समाचार कभी दे
उसका न मिला एक समाचार अभी तक।

—एस 2/564 सिकरौल, वाराणसी 221002

चिंता करता हूँ मैं जितनी
उस अतीत की, उस सुख की
उतनी ही अनंत में बनती
जाती रेखाएं दुःख की?

—जयशंकर प्रसाद

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

गजलें

नवीन माथुर पंचोली

मकाँ होकर भी वो ठहरा नहीं है।
अकेला है मगर तन्हा नहीं है।

सितारे खूब उसके दरमियाँ हैं,
कोई उससे मगर मिलता नहीं है।

जहाँ को मिल रही है रोशनी सब,
वहाँ अब तक कोई पहुँचा नहीं है।

मुसाफिर है वो अपने आसमाँ का,
वो लगता है मगर चलता नहीं है।

बसाया है उसे कब, दूर किसने,
नजर ने ये कभी पूछा नहीं है।

सुनकर जिससे हल निकलेगा।
फिकरा वो ही चल निकलेगा।

जब भीतर की गाँठ खुलेगी,
तब बाहर का सल निकलेगा।

आज बिताया हमनें जैसा,
वैसा अपना कल निकलेगा।

टकसालें जो सूरत देगी,
सिक्का वैसा ढल निकलेगा।

खून-पसीना, काम के जरिए,
अक्सर मीठा फल निकलेगा।

रस्सी आखिर जल जाएगी,
फिर भी उसमें बल निकलेगा।

भूली-बिसरी यादों के संग,
कैसे लम्हा-पल निकलेगा ।

मन में जो पलता रहता है।
चेहरे पर चलता रहता है।

मन को जो भी रास न आया,
आँखों को खलता रहता है।

मिट्टी से रिश्ता है उसका,
अक्सर जो फलता रहता है।

चाँद, सितारे रात सजायें,
सूरज जब ढलता रहता है।

हो किस्मत का साथ नहीं तो,
मौका हर टलता रहता है।

हाल-वक़्त पर चूका फिर वो,
हाथों को मलता रहता है।

जितने हैं समझाने वाले।
थोड़े हैं अपनाने वाले।

सुनते हैं बस कानों तक,
बातों को झुठलाने वाले।

कैसे मंजिल तक जायेंगे,
रस्ते भर सुस्ताने वाले।

मिलते हैं अपने मतलब से,
कितने आज जमाने वाले।
सा रे गा मा पर अटके हैं,
ऊँचे सुर में गाने वाले।

औरों का फन क्या समझेंगे,
अपने गाल बजाने वाले।

ये दिलदारी पहले से है।
फन से यारी पहले से है।

आग लगाने वाली तन में,
ये चिंगारी पहले से है।

हम-आपस के व्यवहारों में,
दुनियादारी पहले से है।

आज रही मजबूरी थोड़ी,
कुछ लाचारी पहले से है।

दिखती है जो सबमें हमको,
वो अय्यारी पहले से है।

वो ही है सबसे आखिर में,
जिसकी बारी पहले से है।

बोझ किसी के अहसानों का,
सिर पर भारी पहले से है।

मंजिल तक तो इन राहों की,
सब दुश्वारी पहले से है।

आज निभाई जितनी हमनें,
जिम्मेदारी पहले से है।

जो बातों के सच्चे हैं।
चुप्पी साधे बैठे हैं ।

बड़ बोली आदत वाले,
बिन सोचे सब कहते हैं।

ये बतलाना मुश्किल है,
ऐसे हैं या वैसे हैं ।

धोखें हैं सब आँखों के,
जो राहों पर देखे हैं।

तन हैं भीगे-भीगे पर,
मन तो रीते-रीते हैं।

नीम चढ़े मीठे फल भी,
लगते थोड़े कड़ुवे हैं।

दिखलावे और झुठलावे,
सबने उनसे सीखे हैं।